शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

महाराष्ट्र

दूरशिक्षण केंद्र

सत्र–5 पेपर 8 (DSE- E7)

साहित्यशास्त्र

सत्र–6 पेपर 13 (DSE- E132)

साहित्यशास्त्र और हिंदी आलोचना

(शैक्षिक वर्ष 2021-22 से)

बी. ए. भाग–3 हिंदी

© **कुलसचिव,** शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर (महाराष्ट्र)
प्रथम संस्करण : 2021
बी. ए. भाग 3 (हिंदी : बीजपत्र-8 और 13)
सभी अधिकार विश्वविद्यालय के अधीन। शिवाजी विश्वविद्यालय की अनुमति के बिना किसी भी सामग्री की नकल न करें।

प्रतियाँ : 300

■

प्रकाशक :
डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्रभारी कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

मुद्रक :
श्री. बी. पी. पाटील
अधीक्षक,
शिवाजी विश्वविद्यालय मुद्रणालय,
कोल्हापुर - 416 004.

■

ISBN- 978-93-92887-25-3

★ दूरशिक्षण केंद्र और शिवाजी विश्वविद्यालय की जानकारी निम्नांकित पते पर मिलेगी-
शिवाजी विश्वविद्यालय, विद्यानगर, कोल्हापुर-416 004. (भारत)

दूरशिक्षण केंद्र, शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

सलाहकार समिति

प्रा. (डॉ.) डी. टी. शिर्के
मा. कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) पी. एस. पाटिल
प्र-कुलगुरू,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एम. एम. साळुंखे
माजी कुलगुरू,
यशवंतराव चव्हाण महाराष्ट्र मुक्त विश्वविद्यालय, नाशिक

प्रा. (डॉ.) के. एस. रंगाप्पा
मा. कुलगुरू,
म्हैसुर विश्वविद्यालय, म्हैसुर

प्रा. पी. प्रकाश
अतिरिक्त सचिव-II
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नवी दिल्ली

प्रा. (डॉ.) सीमा येवले
गीत-गोविंद, फ्लॅट नं. २, ११३९ साईक्स एक्स्टेंशन,
कोल्हापुर-४१६००१

प्रा. (डॉ.) आर. के. कामत
प्रभारी अधिष्ठाता, विज्ञान और तंत्रज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) एस. एस. महाजन
प्रभारी अधिष्ठाता, वाणिज्य और व्यवस्थापन विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्य (डॉ.) आर. जी. कुलकर्णी
प्रभारी अधिष्ठाता, मानवविज्ञान विद्याशाखा,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्राचार्या (डॉ.) श्रीमती एम. व्ही. गुळवणी
प्रभारी अधिष्ठाता, आंतर-विद्याशाखीय अभ्यास
विद्याशाखा
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

डॉ. व्ही. एन. शिंदे
प्रभारी कुलसचिव,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. जी. आर. पळसे
प्रभारी संचालक, परीक्षा व मूल्यमापन मंडळ,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

श्री. ए. बी. चौगुले
प्रभारी वित्त व लेखा अधिकारी,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

प्रा. (डॉ.) डी. के. मोरे
(सदस्य सचिव)
संचालक, दूरशिक्षण केंद्र,
शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर

हिंदी अध्ययन मंडल

डॉ. राजेंद्र पिलोबा भोसले
कला व वाणिज्य कॉलेज, पुसेगांव, जि. सातारा

- **प्रो. डॉ. अर्जुन चव्हाण**
  हिंदी विभाग,
  शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर
- **डॉ. भारत खिलारे**
  कला व वाणिज्य कॉलेज, पुसेगांव, जि. सातारा
- **डॉ. संजय कांबळे**
  तुकाराम कृष्णाजी कोळेकर कला व वाणिज्य कॉलेज, नेसरी, ता. गडहिंग्लज, जि. कोल्हापुर
- **डॉ. बबन शंकर सातपुते**
  मिरज महाविद्यालय, मिरज, जि. सांगली
- **डॉ. क्षितिज यादवराव धुमाळ**
  कला व वाणिज्य कॉलेज, वडूज, जि. सातारा
- **डॉ. संजय पिराजी चिंदगे**
  देशभक्त आनंदराव बळवंतराव नाईक कला व विज्ञान कॉलेज, चिखली, ता. शिराळा, जि. सांगली
- **प्रा. (डॉ.) सुनील बापू बनसोडे**
  जयसिंगपुर कॉलेज, जयसिंगपुर, जि. कोल्हापुर
- **प्रा. (डॉ.) एकनाथ श्रीपती पाटिल**
  राधानगरी महाविद्यालय, राधानगरी,
  जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. विष्णु रानबा सरवदे**
  प्रोफेसर, केंद्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद
- **डॉ. मोहन मंगेशराव सावंत**
  श्री. आण्णासाहेब डांगे कला, वाणिज्य व विज्ञान कॉलेज, हातकणंगले, जि. कोल्हापुर
- **प्रो. डॉ. प्रकाश शंकरराव चिकुर्डेकर**
  यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, वारणानगर,
  जि. कोल्हापुर
- **डॉ. मधुकर शंकरराव खराटे**
  कला, वाणिज्य व विज्ञान कॉलेज, बोदवड,
  जि. जळगाव
- **डॉ. श्रीमती सरोज संग्राम पाटिल**
  श्री शहाजी छत्रपति महाविद्यालय, कोल्हापुर

अपनी बात

शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की दूरशिक्षा योजना के अंतर्गत बी. ए. भाग–3 हिंदी विषय के छात्रों के लिए निर्मित अध्ययन सामग्री नियमित रुप से प्रवेश न ले पाने वाले छात्रों की असुविधा को दूर करने के संकल्प का सुफल है। इसमें एक ओर विश्वविद्यालय की सामाजिक संवेदनशीलता दिखाई देती है, तो दूसरी ओर शिक्षा से वंचित छात्रों को अध्ययन सामग्री सुविधा प्रदान करने की प्रतिबद्धता। बी. ए. 1, 2 तक की अध्ययन सामग्री से दूरशिक्षा योजना के छात्र जिस तरह लाभान्वित हुए हैं, उसी तरह बी. ए. 3 के छात्र भी प्रस्तुत स्वयं–अध्ययन सामग्री से लाभान्वित होंगे, यह विश्वास है।

दूरशिक्षा के छात्रों का महाविद्यालयों तथा अध्यापकों से प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से कोई संबंध नहीं आता। उनकी इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए अध्ययन सामग्री को सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही पाठ्यक्रम, प्रश्नपत्र का स्वरुप तथा अंक–वितरण को ध्यान में रखकर अध्ययन–सामग्री को आवश्यकतानुसार विस्तृत तथा सूक्ष्म रुप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। हमें आशा ही नहीं, बल्कि विश्वास भी हैं कि प्रस्तुत अध्ययन सामग्री बी. ए. 3 के छात्रों के लिए उपादेय सिद्ध होगी।

प्रस्तुत सामग्री सामूहिक प्रयास का फल है। इकाई लेखकों ने अपनी–अपनी इकाईयों का लेखन समय पर पूरा कर इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। शिवाजी विश्वविद्यालय के मा. कुलगुरू, कुलसचिव, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय विकास मंडल के संचालक, दूरशिक्षा विभाग के संचालक एवं उनके सभी सहयोगी सदस्यों ने समय–समय पर आवश्यक सहयोग दिया। अतः इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

धन्यवाद।

– संपादक

	सत्र 5	सत्र 6
★ **प्रा. नितीन विठ्ठल पाटिल** विठ्ठलराव पाटील महाविद्यालय, कळे, ता. पन्हाळा, जि. कोल्हापुर	**1**	**-**
★ **प्रा. डॉ. सिद्राम कृष्णा खोत** चंद्राबाई शांताप्पा शेंडूरे कॉलेज, हुपरी	**2**	**-**
★ **प्रा. डॉ. मिलिंद नामदेव साळवे** विश्वासराव नाईक कला, वाणिज्य आणि बाबा नाईक विज्ञान महाविद्यालय, शिराळा	**2**	**-**
★ **प्रा. मारुफ समशेर मुजावर** कला व वाणिज्य महाविद्यालय, पुसेगांव, ता. खटाव	**3**	**-**
★ **डॉ. संदिप किर्दत** छत्रपती शिवाजी कॉलेज, सातारा, जि. सातारा	**4**	**-**
★ **डॉ. आरिफ शौकत महात** विवेकानंद कॉलेज, कोल्हापुर	**-**	**1**
★ **प्रा. सुवर्णा नरसू कांबळे** आर्टस अॅण्ड कॉमर्स कॉलेज, शुक्रवारपेठ, सातारा, जि. सातारा	**-**	**2**
★ **डॉ. मानसी शिरगावकर** कन्या महाविद्यालय, शिवाजी रोड, शिवाजीनगर, मिरज, जि. सांगली	**-**	**3**
★ **डॉ. गोरखनाथ किर्दत** यशवंतराव चव्हाण महाविद्यालय, उरुण इस्लामपूर, जि. सांगली	**-**	**4**

■ **सम्पादक** ■

डॉ. सरोज एस. पाटिल
श्री शहाजी छत्रपती महाविद्यालय,
दसरा चौक, कोल्हापुर

डॉ. बबन एस. सातपुते
मिरज महाद्यिालय, मिरज,
ता. मिरज, जि. सांगली

अनुक्रमणिका

इकाई	पाठ्यविषय	पृष्ठ
	सत्र-5 पेपर 8 : साहित्यशास्त्र	
1.	काव्य/साहित्य : स्वरूप, तत्त्व, प्रयोजन	1
2.	काव्य के प्रकार, काव्य-गुण, काव्य-दोष	28
3.	रस : स्वरूप, रस के अंग, रस के भेद	44
4.	अलंकार : शब्दालंकार, अर्थालंकार	73
	सत्र-6 पेपर 13 : साहित्यशास्त्र और हिंदी आलोचना	
1.	काव्यभेद : महाकाव्य, प्रगीत, गजल	92
2.	गद् विधाएँ : एकांकी, कहानी और उपन्यास	123
3.	गद्य विधाएँ : रेखाचित्र, आत्मकथा, यात्रावृत्त	147
4.	आलोचना : स्वरूप, गुण, प्रकार	176

हर इकाई की शुरूआत उद्देश्य से होगी, जिससे दिशा और आगे के विषय सूचित होंगे–

(१) इकाई में क्या दिया गया है।

(२) आपसे क्या अपेक्षित है।

(३) विशेष इकाई के अध्ययन के उपरांत आपको किन बातों से अवगत होना अपेक्षित है।

स्वयं–अध्ययन के लिए कुछ प्रश्न दिए गए हैं, जिनके अपेक्षित उत्तरों को भी दर्ज किया है। इससे इकाई का अध्ययन सही दिशा से होगा। आपके उत्तर लिखने के पश्चात् ही स्वयं–अध्ययन के अंतर्गत दिए हुए उत्तरों को देखें। आपके द्वारा लिखे गए उत्तर (स्वाध्याय) मूल्यांकन के लिए हमारे पास भेजने की आवश्यकता नहीं है। आपका अध्ययन सही दिशा से हो, इसलिए यह अध्ययन सामग्री (Study Tool) उपयुक्त सिद्ध होगी।

इकाई 1

काव्य/साहित्य : स्वरूप, तत्त्व, प्रयोजन

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय – विवेचन

1.3.1 काव्य / साहित्य : स्वरूप

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य–लक्षण

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य–लक्षण

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य–क्षण

1.3.1.4 पाश्चात्य विद्वानों के काव्य–लक्षण

1.3.1.5 निष्कर्ष

1.3.2 काव्य / साहित्य : तत्त्व

1.3.2.1 भाव तत्त्व

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व

1.3.2.3 बुद्धि तत्त्व

1.3.2.4 शैली तत्त्व

1.3.2.5 निष्कर्ष

1.3.3 काव्य : प्रयोजन

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य प्रयोजन

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य प्रयोजन

1.3.3.3 आधुनिक हिंदी विद्वान : काव्य प्रयोजन

1.3.3.4 पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य प्रयोजन

1.3.3.5 निष्कर्ष

1.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. काव्य (साहित्य) शब्द के अर्थ और स्वरूप से परिचित होंगे।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बताए गए काव्य (साहित्य) के लक्षणों को पढकर साहित्य का स्वरूप समझने में सक्षम होंगे
3. काव्य (साहित्य) के विभिन्न तत्त्वों से परिचित होंगे।
4. काव्य प्रयोजनों से परिचित होंगे।
5. काव्य (साहित्य) के महत्त्व को समझ सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना :

साहित्य के सम्यक अनुशीलन का कार्य साहित्यशास्त्र के अंतर्गत होता है। जिसमें साहित्य की विभिन्न विधाओं का शास्त्रीय दृष्टि से सांगोपांग विवेचन किया जाता है। 'शास्त्र' शब्द संस्कृत 'शास्' धातु से बना हुआ है, जिसका अर्थ है अनुशासन। साहित्यशास्त्र हमें साहित्य के विषय में अनुशासित करता है। साथ ही साहित्य निर्माण के नियमों की जानकारी भी प्रदान करता है। साहित्यशास्त्र के लिए 'काव्यशास्त्र', काव्यालोचन और काव्यमीमांसा जैसे शब्द भी प्रचलित है। प्राचीन काल में तो इसके लिए 'अलंकार शास्त्र' का भी प्रयोग होता था। कालांतर में इस शब्द की व्याप्ति संकुचित होती गयी और इसी स्थान पर साहित्यशास्त्र नाम रूढ होता चला गया।

विश्व की लगभग सभी भाषाओं के साहित्य में काव्यशास्त्र पर विचार हुआ है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इसके भारतीय तथा पाश्चात्य दो भेद किए जाते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा में उपलब्ध ग्रंथों के आधार पर भरतमुनि को काव्यशास्त्र का प्रथम आचार्य माना जाता है। उनका 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ भारतीय काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। अत: इसमें काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगों का विवेचन–विश्लेषण मिलता है।

मनुष्य को उचित दिशा निर्देशन करने का काम काव्य के माध्यम से ही होता है। काव्य समाज की विभिन्न उलझनों को वाणी प्रदान करने का काम करता है। लेकिन किसी भी रचना को जन्म देते समय रचनाकार को साहित्यशास्त्र के नियमों का पालन करना अत्यंत आवश्यक होता है। आज हमारी भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपरा अत्यंत समृद्ध और विकसित नजर आती है। इस परंपरा को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से विभिन्न कालों में विभाजित किया गया है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा भी बहुत ही पुरानी हैं। आरंभ में उसका विकास यूनान में हुआ और फिर रोम में । प्लेटो, अरस्तू, लौंजाइनस, होरेस तथा क्विंटीलियन इस प्राचीन परंपरा के निर्माता रहे हैं।

प्राचीन भारतीय ग्रंथों में काव्य के लिए 'वाङ्मय' शब्द का प्रयोग मिलता है। काव्य शब्द 'कवि' से प्रचलित है। साथ ही वह अंग्रेजी शब्द 'Poetry' का अनुवाद है। साहित्य अंग्रेजी शब्द 'Literature' का पर्यायवाची माना जाता है। जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द Letter से हुई है। साहित्य शब्द का प्रयोग सातवीं–आठवीं शताब्दी से मिलता है। इससे पूर्व साहित्य शब्द के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था। आज 'काव्य' शब्द केवल पद्य रचनाओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है।

काव्य के सृजन में भाव तत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व का योगदान महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत के आचार्यों से लेकर आज तक के आचार्यों ने अपने–अपने विचारों के अनुसार काव्य के विभिन्न रूपों का उल्लेख किया है। काव्य निर्माण के पीछे कवि का कोई न कोई उद्देश्य निहित रहता ही है। बिना उद्देश्य के किसी रचना का का सृजन होता ही नहीं है। केवल समय के अनुसार उद्देश्य बदलते रहते हैं।

पाठ्यक्रम में साहित्य का स्वरूप, तत्त्व और प्रयोजनों का समावेश किया गया है। इसके अंतर्गत हमें विभिन्न विद्वानों की परिभाषाओं के द्वारा काव्य के स्वरूप को समझ लेना है। साथ ही काव्य के विभिन्न तत्त्वों की जानकारी लेते हुए विभिन्न विद्वानों के काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों का अध्ययन करना है।

1.3 विषय – विवेचन :

अब हम काव्य के स्वरूप, काव्य के तत्त्व और काव्य के प्रयोजन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

1.3.1 काव्य / साहित्य का स्वरूप :

साहित्यशास्त्र के अंतर्गत काव्य और साहित्य एक ही अर्थ में प्रयुक्त किए जाते हैं। प्राचीन काल में केवल काव्य रचनाओं का ही सृजन किया जाता था। उस समय गद्य का विकास नहीं हुआ था। गद्य का विकास आधुनिक काल की देन मानी जा सकती है। इसके बाद विभिन्न विधाओं का जन्म होने लगा। अब सभी विधाओं के लिए 'साहित्य' शब्द प्रयुक्त होने लगा है। 'काव्य' शब्द केवल पद्य रचनाओं तक सीमित रह गया। आज 'साहित्य' शब्द बहुप्रचलित और व्यापक बन गया है। लेकिन कई लोग वर्तमान समय में भी 'साहित्य' शब्द की जगह 'काव्य' शब्द का इस्तेमाल करते हुए नजर आते हैं। यहाँ हम 'काव्य' शब्द का अर्थ साहित्य की सभी विधाओं के प्रतिनिधि के रूप में ले रहे हैं। इस प्रकार जो 'साहित्य' का लक्षण है, वही 'काव्य' का लक्षण भी माना जाएगा।

मनुष्य को आनंदानुभूति प्रदान करने में काव्य का योगदान महत्त्वपूर्ण होता है। कवि कल्पनाओं और भावनाओं का आधार लेकर मानव जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को अलग-अलग रूप में अंकित करने की कोशिश करता है। काव्य जितना व्यापक है, उतना सूक्ष्म भी है। प्राचीन काल से ही काव्याचार्य काव्य के स्वरूप एवं लक्षण को निरूपित करने का प्रयास करते रहे हैं। 'काव्य लक्षण' या काव्य स्वरूप का आशय उस परिभाषा से है, जो सब ओर से सुसंगत तथा काव्य की विशिष्टता की परिचायक हो। इस संबंध में प्रत्येक काल में आचार्यों के चिंतन तथा दृष्टिकोण में पर्याप्त अंतर रहा है। आज मनुष्य का जीवन गतिमय बन चुका है। वह भौतिक सुख-सुविधाओं के पिछे अंधी दौड लगाता हुआ नजर आने लगा है। लेकिन ऐसे समय में भी साहित्य का महत्त्व थोडा-सा भी कम नहीं हुआ है। आज भी मनुष्य आंतरिक भावनाओं के प्रकटीकरण के लिए काव्य का ही सहारा लेता हुआ नजर आने लगा है।

काव्य मनुष्य जीवन की भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करने का काम करता है। काव्य मनुष्य को हर समय उचित दिशा-निर्देशन करता रहता है। वह इन्सान में जीवन जीने की एक ललक और उमंग पैदा करता है। बुद्धि तथा हृदय का समन्वय काव्य में होता है। साहित्य का आधार सत्यम्, शिवम और सुंदरम् होता है। संसार में एकता स्थापित करने का कार्य साहित्य के माध्यम से ही होता है। वह मानव के बाह्य और आंतरिक जगत् का वर्णन करता है। काव्य के स्वरूप को स्पष्ट रूप में समझने के लिए हमें भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों के काव्य लक्षणों को देखना बहुत ही जरूरी है।

1.3.1.1 संस्कृत आचार्यों के काव्य-लक्षण :

◆ **आचार्य भरतमुनि**

भरतमुनि को संस्कृत काव्यशास्त्र का आदि आचार्य माना जाता है। उनका 'नाट्शास्त्र' ग्रंथ संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ है। आचार्य भरतमुनि ने इस ग्रंथ में नाटक में काव्य की स्थिति का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है -

''मृदु ललित पदाढ्यं गूढं शब्दार्थहीन,
जनपद सुख बोध्यं युक्ति मन्नृत्ययोज्यम्
बहुकृतरसमार्ग संधिसन्धानयुक्त
स भवति शुभ काव्य नाटक प्रेक्षकाणाम्।।''

अर्थात, नाटक को देखने वालों के लिए शुभ काव्य वह होता है, जिसकी रचना कोमल ललित पदों में की गई हो, जिसमें शब्द और अर्थ गूढ न हो, जिसको जनसाधारण सरलता से समझ सके, जो तर्कसंगत हो, जिससे नृत्य की योजना की जा सके, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के रस स्वीकार किए गए हो और जिसमें कथानक संधियों का पूरा निर्वाह किया गया हो।

इसमें नाटक के तत्त्वों का उल्लेख है, लेकिन भरतमुनि ने लालित्य, प्रसाद, रस आदि तत्त्वों को काव्य रूप में स्वीकार किया है।

◆ **अग्निपुराण :**

अग्निपुराण के निर्माण के समय के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि काव्य का लक्षण सर्वप्रथम अग्निपुराण में ही उपलब्ध होता है।

''संक्षेपाद्वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली।
काव्य स्फुरदलंकार गुणवद्दोषवर्जितम्।।''

अर्थात, अभीष्ट अर्थ को संक्षेप में प्रकट करनेवाली पदावली काव्य कहलाती है। जिसमें अलंकार प्रकट हो और जो दोषरहित और गुणयुक्त हो। इसमें काव्य को बाह्य सीमाओं में बाँधने का प्रयत्न किया गया है, पर उसका मुख्य प्रभावकारी स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाता है।

◆ **आचार्य भामह :**

इनका काल छठी शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है। भामह ने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में काव्य-लक्षण देते हुए लिखा है -

''शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्''

अर्थात, शब्द और अर्थ का सहित भाव काव्य या साहित्य है। यह परिभाषा अत्यंत व्यापक है क्योंकि इसके क्षेत्र में काव्य के अतिरिक्त शास्त्र, इतिहास, वार्तालाप आदि सभी आ जाते हैं। इसमें अतिव्याप्ति दोष के साथ-साथ काव्य के बाह्य स्वरूप का ही स्पष्टीकरण है। यह परिभाषा उचित नहीं है।

◆ **आचार्य दण्डी :**

दण्डी का काल सातवीं शताब्दी माना जाता है। इन्होंने 'काव्यादर्श' ग्रंथ में लिखा है -

''शरीर तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली''

इन्होंने इष्ट का वर्णन करने के लिए अभिप्रेत अर्थ से युक्त शब्द को काव्य का शरीर कहा है।

अग्निपुराण की परिभाषा की तरह इसमें भी इष्ट अर्थ अपेक्षित है, जो अस्पष्ट और व्याख्यासापेक्ष है। अत: यह परिभाषा भी अस्पष्ट है।

◆ **आचार्य रूद्रट :**

'काव्यालंकार' में रूद्रट ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार की है -

''ननु शब्दार्थौ काव्यम्''

अर्थात, रूद्रट ने शब्द और अर्थ के संबंध को ही काव्य माना है।

प्रस्तुत परिभाषा भामह की परिभाषा की तरह अतिव्याप्ति दोष से युक्त है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

◆ **आचार्य मम्मट :**

आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में कविता का लक्षण इस प्रकार दिया है –

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।''

यहाँ पर काव्य दोषहीन, गुणयुक्त और कभी–कभी अलंकार से रहित शब्दार्थ काव्य है, ऐसा कहा गया है। प्रस्तुत परिभाषा में प्रयुक्त 'अदोषौ' शब्द सार्थक नहीं है, क्योंकि सर्वथा निर्दोष रचना असंभव है। 'सगुण' शब्द भी काव्य की कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रकट नहीं करता, क्योंकि गुण बडा व्यापक अर्थ देनेवाला शब्द है। अतः यह लक्षण अस्पष्ट है।

◆ **आचार्य विश्वनाथ :**

रस संप्रदाय के आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रंथ 'साहित्यदर्पण' में काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है–

''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्''

अर्थात, रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

विश्वनाथ जी रसवादी आचार्य होने के कारण रस को प्रमुखता दी है, किंतु रस की सत्ता स्वीकार कर लेने के बाद अन्य सभी तत्त्व गौण हो जाते हैं।

◆ **आचार्य पंडितराज जगन्नाथ :**

आचार्य पंडितराज जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्र परंपरा के अंतिम आचार्य है। उन्होंने अपना काव्य लक्षण इस प्रकार दिया है –

''रमणीयार्थ प्रतिपादक : शब्द : काव्यम्।''

अर्थात, रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द 'काव्य' है।

शब्द में सदैव अर्थ की रमणीयता होना असंभव है। कुछ विद्वान शब्द की जगह वाक्य का प्रयोग करना चाहते हैं। अतः रमणीय अर्थ देनेवाला वाक्य, काव्य होना चाहिएं यह लक्षण पर्याप्त सरल और सुबोध है।

1.3.1.2 प्राचीन हिंदी आचार्यों के काव्य–लक्षण :

संस्कृत के आचार्यों की तरह प्राचीन हिंदी आचार्यों ने भी काव्य–लक्षण बतलाने का प्रयास किया है, लेकिन हिंदी के सभी प्राचीन आचार्यों पर किसी–न–किसी प्रकार संस्कृत आचार्यों का ही प्रभाव दिखाई देता है।

◆ **आचार्य केशवदास :**

केशवदास अलंकारवादी आचार्य थे। अलंकारविहीन काव्य को वे शोभारहित नारी के समान मानते थे। उन्होंने काव्य–लक्षण इस प्रकार दिया है –

''जद्यपि सुजाति सुलच्छनी; सुबरन सरस सवृत्त।
भूषण बिनु न विराजयी, कविता बनिता मित्त।।''

अर्थात, कविता और नारी बिना आभूषण (अलंकार) के सुशोभित नहीं हो पाती। चाहे उसमें कितने भी अच्छे गुण हो। केशव के विचार से रस, छंद और शब्द-सौंदर्य के साथ अलंकार का होना आवश्यक है। इनकी परिभाषा अव्याप्ति दोष से युक्त है।

◆ **आचार्य श्रीपति :**

आचार्य श्रीपति ने अपने 'काव्य-सरोज' में लिखा है -

''शब्द अर्थ बिन दोष गुण अलंकार रसवान।
ताको काव्य बखानिए श्रीपति परम सुजान।।''

अर्थात, दोष रहित, गुण सहित, अलंकारों से विभूषित सरल शब्दार्थ को काव्य कहते हैं।

प्रस्तु परिभाषा पर संस्कृत आचार्य मम्मट का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इस परिभाषा में प्रस्तुत 'बिन-दोष' शब्द निषेधात्मक है।

◆ **आचार्य चिंतामणि :**

अपने ग्रंथ 'कवि कुलकल्पतरू' में काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है -

''सगुन अलंकारन सहित, दोष रहित जो होई।
शब्द अर्थ ताको कवित्त कहत बिबुध सब कोई।।''

अर्थात, सगुण, सालंकार और दोष रहित शब्दार्थ को काव्य कहते हैं। यह मम्मट की परिभाषा का ही हिंदी रूपांतर है। केवल इस परिभाषा में अलंकार अनिवार्य माने गए हैं। काव्य सर्वथा दोष रहित नहीं हो सकता। अत: यह परिभाषा असंगत है।

◆ **आचार्य कुलपति मिश्र :**

कुलपति मिश्र ने 'रस रहस्य' में मम्मट तथा विश्वनाथ दोनों के काव्य-लक्षण का खंडन करते हुए अपना निजी काव्य-लक्षण इस प्रकार दिया है -

''जगते अद्‌भुत सुख सदन, शब्दरू अर्थ कवित्त।
यह लच्छन्न मैंने कियो, समुझि ग्रंथ बहु चित्त।।''

अर्थात, अलौकिक आनंद देनेवाले शब्द और अर्थ को काव्य कहते हैं।

कुलपति ने विलक्षण आनंद या सुख देनेवाली रचना को काव्य कहा है। लेकिन संसार से विलक्षण आनंद कैसे समझा जाए? यह प्रश्न है। अत: यह लक्षण अस्पष्ट है।

◆ **महाकवि देव :**

देव ने अपने 'काव्य-रसायन' ग्रंथ में काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है -

'सब्द जीव तिहि अरथ मन, रसमय सुजस सरीर।
चलत वहै जुग छंद गति, अलंकार गंभीर।।''

अर्थात, शब्द जीव है, अर्थ मन है, रस से युक्त यशस्वी उसका शरीर है। दोनों प्रकार छंद उसकी गति है और अलंकार उस गति की गंभीरता है।

देव की धारणा विलक्षण है, जिसमें शब्द को शरीर न मानकर रस को शरीर माना है। गति की गंभीरता भावों पर निर्भर करती है अलंकारों पर नहीं। अत: गंभीरता को अलंकार पर आश्रित करना भी युक्तिसंगत नहीं। अत: काव्य के स्वरूप को समझने में इससे कोई विशेष सहायता नहीं मिलती है।

◆ **आचार्य सोमनाथ :**

आचार्य सोमनाथ ने काव्य-लक्षण देते हुए लिखा है -

''सगुन पदारथ दोष विनु, पिंगल मत अविरूद्ध।
भूषण जुत कवि कर्म जो, सो कवित्त कहि बुद्ध।।''

अर्थात, काव्य वह कवि कर्म है जिसमें शब्द और अर्थ गुण सहित, दोष रहित और पिंगल (छंद) के अनुसार हो।

इन्होंने काव्य की परिभाषा में छंद का समावेश किया है। प्रस्तुत परिभाषा पर मम्मट का प्रभाव है।

1.3.1.3 आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण :

आधुनिक हिंदी विद्वानों के काव्य-लक्षण काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए सहायता करते हैं। इनके काव्य-लक्षण अधिकांश रूप में संस्कृत तथा पाश्चात्य काव्य लक्षणों से प्रभावित है।

◆ **महावीरप्रसाद द्विवेदी :**

''मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते है, वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।''

इससे स्पष्ट है, समस्त मनोभावों का प्रकाशन कविता में हो जाता है, चाहे किसी भी प्रकार से प्रकट हो। अत: यह लक्षण उपयुक्त नहीं है।

◆ **आचार्य रामचंद्र शुक्ल :**

हिंदी के प्रसिद्ध आलोचक और निबंधकार रामचंद्र शुक्ल ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-

''जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।''

इस परिभाषा में आचार्य शुक्ल ने 'रस तत्त्व' को सर्वोपरि महत्ता प्रदान की है। यह परिभाषा पर्याप्त प्रसिद्ध रही है।

◆ **जयशंकर प्रसाद :**

छायावाद के आधारस्तम्भ जयशंकर प्रसाद ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है –

''काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है।''

इस परिभाषा में आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति में स्पष्टता नहीं है। विज्ञान से संबंध न बताते हुए भी आगे प्रसाद जी ने काव्य को अनुभूति ही माना, जबकि वास्तव में वह अभिव्यक्ति है।

◆ **महादेवी वर्मा :**

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है –

''कविता कवि–विशेष की भावनाओं का चित्रण है और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनाएँ किसी दूसरे के हृदय में अविर्भूत होती है।''

यह परिभाषा गीतिकाव्य तक ही सीमित रह जाती है। कवि मन में उठनेवाली भावनाएँ दूसरे के मन में भी उत्पन्न हो यह आवश्यक नहीं है। साथ ही इसमें बुद्धि तथा कल्पना तत्त्व की उपेक्षा की गई है।

◆ **सुमित्रानंदन पंत :**

प्रकृति के सुकुमार कवि पंत ने लिखा है –

''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।''

प्रस्तुत परिभाषा में परिपूर्ण क्षण किस वक्त को कहे इसके स्पष्ट संकेत नहीं मिलते हैं। अत: यह परिभाषा अस्पष्ट है।

◆ **डॉ. श्यामसुंदर दास :**

डॉ. श्यामसुंदर दास ने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है–

''काव्य वह है जो हृदय में अलौकिक आनंद या चमत्कार की सृष्टि करें।''

इस परिभाषा में रस, ध्वनि और अलंकार को समाहित करने का प्रयास किया गया है।

1.3.1.4 पाश्चात्य विद्वानों के काव्य–लक्षण :

काव्य–लक्षण के संबंध में पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक विचार प्रकट किए हैं। इन्होंने काव्य के लिए कल्पना, बुद्धि, भाव और शैली तत्त्व की आवश्यकता को स्वीकार करके काव्य या साहित्य के लक्षण निर्धारित किए हैं। वे अन्य कलाओं के सदृश्य कविता को भी अनुकृत मानते हैं। पाश्चात्य विद्वानों के काव्य–लक्षण निम्न प्रकार के हैं–

◆ **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका** (Encyclopedia Britanika) **:**

"Poetry is articulate music"

अर्थात, कविता सुस्पष्ट संगीत है।

यह परिभाषा सर्वत्र सत्य नहीं। संगीत, कविता का एक पक्ष है, परंतु संगीत तत्त्व काव्य का अनिवार्य अंग नहीं। सभी कविताओं में तो संगीत नहीं रहता। यह परिभाषा अव्याप्ति दोष से युक्त है।

◆ **वर्डस्वर्थ :**

अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि वर्डस्वर्थ ने लिखा है –

"Poetry is the spontaneous overflow of Powerful feelings, it takes its origin from emotions recollected in tranquillity."

अर्थात, कविता प्रबल अनुभूतियों का सहज उद्रेक है, जिस का स्त्रोत शांति के समय में स्मृत मनोवेगों से फूटता है।

वर्डस्वर्थ की परिभाषा तथ्यपूर्ण है; क्योंकि यह भावानुभूति और अभिव्यक्ति की प्रक्रिया को स्पष्ट करती है। इस लक्षण में भी आपत्ति उठाई जा सकती है। शांति के समय में भी अपने मनोवेगों को स्मरण करते हैं और अपने प्रबल भावों को प्रकट भी करते हैं; क्या वह सब काव्य हो जाता है? यहाँ पर अभिव्यक्ति कला और उसके प्रभाव का उल्लेख नहीं है। हम अपने सुख-दुःखपूर्ण क्षणों का स्मरण कर हँसते हैं और रोते हैं, पर सभी का वह उल्लास और विलाप सदैव कविता नहीं बन जाता। कविता के लिए उस सहज अभिव्यक्ति में सौंदर्य, संयम और प्रभाव की आवश्यकता है; परंतु इसमें संदेह नहीं कि प्रतिभा और अभिव्यक्ति-कौशल से युक्त कवियों की काव्याभिव्यक्ति की प्रक्रिया यहाँ पर अवश्य स्पष्ट हुई है।

◆ **कॉलरिज :**

"Poetry is the best words in their best order."

अर्थात, सर्वोत्तम शब्द अपने सर्वोत्तम क्रम में कविता है।

इस परिभाषा में कुछ बातें अस्पष्ट प्रतीत होती है। सर्वोत्तम शब्द कौनसे हैं और उनका सर्वोत्तम क्रम कौनसा है? स्वर्ग, सोना, पुष्प, सौंदर्य, अमृत आदि शब्द उत्तम होने चाहिए। ऐसी दशा में मृत्यु, कीचड, नरक आदि शब्द बुरे होंगे और काव्य के क्षेत्र से उन्हें निकाल देना पडेगा। पर इन शब्दों और उनके पर्यायों का उत्तम काव्य में खूब व्यवहार होता है। दूसरी बात शब्दों के क्रम की, शब्दों का कभी एक क्रम और कभी दूसरा क्रम काव्य की पंक्तियाँ बन जाता है। इसलिए यह लक्षण अस्पष्ट और भ्रामक है।

◆ **शैली** (Shelley) **:**

काव्य के लक्षण पर विचार करते हुए इन्होंने लिखा है –

"Poetry is the record of the best and happiest moments of the happiest and best minds."

अर्थात, सर्वसुखी और सर्वोत्तम मनों के सर्वोत्तम और सर्वाधिक सुखपूर्ण क्षणों का लेखा कविता है।

यहाँ पर यह प्रश्न पडता है कि सबसे सुखी और सबसे उत्तम मनों को परखने की कसौटी क्या है? दूसरे उनके सर्वोत्तम और सबसे सुखी क्षण कौनसे हैं? उनका लेखा सदैव कविता होगी, यह संदिग्ध है। सुखपूर्ण क्षणों से अधिक काव्य के बीज तो विषादपूर्ण क्षणों में उगते हैं, जैसे कि स्वयं शैली का ही विचार है कि हमारे सबसे मधुर गान वे हैं जिनमें विषादपूर्ण भाव व्यक्त किए जाते हैं। अत: यह परिभाषा भावुकतापूर्ण ही है। काव्य को लेखा कहना उचित नहीं, क्योंकि इससे कल्पना और भावना की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है, तटस्थ लेखा नहीं।

◆ **डॉ. जॉनसन** (Dr. Johnson) **:**

डॉ. जॉनसन कविता को कला के रूप में स्वीकार करते हुए लिखते हैं –

"Poetry is the art of uniting pleasure with thruth by calling imagination to the help of reason."

अर्थात, कविता वह कला है जो कल्पना की सहायता से युक्ति के द्‌वारा सत्य को आनंद से समन्वित करती है।

इस परिभाषा में डॉ. जॉनसन ने काव्य का प्रधान स्वरूप स्पष्ट किया है। सत्य के प्रकाशन में आनंद का समावेश, रमणीयता और रोचकता के गुण का संकेत करता है और कल्पना का तो इस प्रकार के कार्य में प्रमुख हाथ रहता ही है। युक्तिसंगत होना, सत्य के स्वरूप का आधार है। वास्तविकता का आभास और विश्वसनीयता, कविता के प्रभावशाली होने के लिए अत्यंत आवश्यक है। ऐसी दशा में डॉ. जॉनसन की धारणा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है; परंतु इसमें कविता के कलात्मक पक्ष पर अधिक जोर है।

◆ **मैथ्यू आरनॉल्ड** (Mathew Arnold) **:**

मैथ्यू आरनॉल्ड कविता को परिभाषित करते हुए लिखते हैं–

"Poetry is at bottom, a criticism of life."

अर्थात, कविता अपने मूल रूप में जीवन की आलोचना है।

इस परिभाषा में उत्तम काव्य की विशेषता स्पष्ट हुई है। परंतु यह कोई विशिष्ट लक्षण नहीं माना जा सकता। जीवन की समीक्षा साहित्य के अन्य रूपों में भी हो सकती है, केवल कविता में ही नहीं। अत: यह आरनॉल्ड के निजी काव्यादर्श का संकेत करनेवाली उक्ति है, कविता की परिभाषा नहीं।

◆ **चैम्बर्स कोश** (Chambers Dictionary) **:**

"Poetry is the art of expressing in melodious words thoughts which are the creations of imagination and feelings."

अर्थात, कल्पना और अनुभूति से उत्पन्न विचारों को मधुर शब्दों में अभिव्यक्त करने की कला कविता है।

इस परिभाषा में काव्य के समस्त तत्त्वों का उल्लेख हुआ है। काव्य के भीतर अभिव्यंजना कौशल रहता

ही है। साथ ही कल्पना और अनुभूति तथा विचार तत्त्व भी काव्य में आवश्यक है। इस परिभाषा में केवल एक दोष है अव्याप्ति का। काव्य के लिए आवश्यक नहीं कि वह सदैव संगीतमय मधुर शब्दों के रूप में ही हो। काव्य में वीरता, क्रोध, भय आदि भाव भी प्रकट होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पाश्चात्य विद्वानों का एक वर्ग काव्य को जीवन से अलग मानता है, तो दूसरा वर्ग कविता को जीवन की ही अभिव्यक्ति मानता है। इन विद्वानों द्वारा काव्य परिभाषाओं में काव्य के तत्त्वों की ही चर्चा मिलती है। वास्तव में श्रेष्ठ काव्य वही है, जिसमें काव्य के सभी तत्त्वों का सुंदर सामंजस्य निहित होगा।

1.3.1.5 निष्कर्ष :

इस तरह काव्य को परिभाषित करने के प्रयास अनवरत और अविच्छिन्न गति से चलते आ रहे हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने-अपने तरीके से काव्य-लक्षण प्रस्तुत करते हुए काव्य के स्वरूप को बेहतर रूप में पेश करने की कोशिश की है। साथ ही काव्य में उपयुक्त तत्त्वों की चर्चा करते हुए काव्य को सुंदर बनाने के संकेत भी दिए हैं। इन सभी विद्वानों में एक नए विचार तथा धारणा को प्रस्तुत करने की प्रबल इच्छा दिखाई देती है। अंत में हम कह सकते हैं कि मनुष्य जीवन के अंतरंग और बहिरंग को अभिव्यक्त करनेवाला माध्यम ही कविता है।

1.3.2 काव्य / साहित्य – तत्त्व :

साहित्य को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए उनके तत्त्वों की जानकारी लेना अत्यंत आवश्यक है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उनके तत्त्वों का उल्लेख भी किया है। जिसमें उन्होंने भाव तत्त्व, कल्पना तत्त्व, बुद्धि तत्त्व और शैली तत्त्व पर जोर दिया है। काव्य के सृजन में तथा उसके अस्तित्व से जुडे जो तत्त्व होते है; उन्हें ही काव्य के तत्त्व कहा जाता है। पाश्चात्य विद्वान विचेंस्टर ने पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में काव्य के मूल विधायक तत्त्वों का सर्वप्रथम उल्लेख किया था।

1.3.2.1 भाव तत्त्व (The Element of Emotion) :

साहित्य में सबसे प्रमुख तत्त्व के रूप में भाव तत्त्व को जाना जाता है। भाव तत्त्व साहित्य में सबसे अधिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाला साहित्य का प्राण तत्त्व है। भाव ही कवि की कल्पना शक्ति को जागृत करते हैं। भाव के कारण ही कविता योग्य आकार ग्रहण करती है। भाव कविता को शक्ति प्रदान करने का काम करते हैं। भाव तत्त्व के अभाव से काव्य निष्प्राण एवं नीरस होता है। शब्द, अर्थ और कल्पना भाव को साकार रूप देते हैं। कवि अपने हृदयगत भावों को कविता में अभिव्यक्त करता है। उसमें उत्पन्न होनेवाले तीव्र भावों से ही काव्य का जन्म होता है। सुप्रसिद्ध अंग्रेजी कवि वर्डस्वर्थ ने भावों का योगदान स्पष्ट करते हुए लिखा है – ''काव्य प्रबल संवेदना का सहज उद्रेक है।'' भावों की सृष्टि कवि करता है, इसलिए कवि काव्य जगत् का विधाता है।

आचार्य विश्वनाथ जी ने काव्य में रस के महत्त्व को अंकित करते हुए लिखा है – ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।'' इस काव्य-लक्षण में विश्वनाथ जी ने रस का संबंध भावों से जोड दिया है। स्पष्ट है कि भावों के

बिना रस नहीं और रस के बिना काव्य नहीं। चित्त की स्थायी और अस्थायी वृत्तियों का नाम भाव है। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी भी इस संबंध में लिखते हैं कि, ''अंत:करण की वृत्तियों के चित्र का नाम कविता है।'' यहाँ पर उन्होंने अंत:करण की वृत्तियों का संबंध भावात्मकता से जोड दिया है। भावों की गहराई ही कविता को उच्च स्तर पर ले जाती है। कविता के मूल में संवेदना है, राग तत्त्व है। सुमित्रानंदन पंत जी कविता का जन्म वियोग तथा दु:ख से मानते हैं। इस संदर्भ में वे लिखते हैं –

''वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान,
निकल कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान।''

इन पंक्तियों में मनुष्य के हृदय में स्थित दु:खगत भावों से ही कविता का जन्म माना है। हृदय की पुकार ही कविता है। मन में उठने गिरनेवाली असंख्य धाराएँ ही कविता का सागर बन जाती है। काव्य में सरसता, स्पष्टता और व्यापकता भावों के कारण ही आती है।

भाव तत्त्व से ही काव्य में प्रभावात्मकता और संप्रेषणीयता आ जाती है। लेकिन काव्य को पूर्ण रूप से प्रभावी बनाने के लिए भावों में विविधता का होना अत्यंत आवश्यक है। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में भावों को स्थायी भाव और संचारी भाव में विभाजित किया है। भाव तत्त्व साहित्य का अनिवार्य तत्त्व होते हुए भी उसकी स्थिति प्रत्येक विधा में अलग प्रकार से प्रकट होगी। प्रगीत में भाव तत्त्व प्रखर रूप में अभिव्यक्त होता है। उतना अन्य विधा में नहीं हो पाता है।

1.3.2.2 कल्पना तत्त्व (The Element of Imagination) :

कल्पना शब्द की व्युत्पत्ति 'कलृप' धातु से हुई है। कल्पना अंग्रेजी शब्द Imagination का पर्यायवाची है। जिसका शाब्दिक अर्थ सृष्टि करना, सृजन करना है।। 'Imagination' का निर्माण Image शब्द से हुआ है, जिसका अर्थ है – मानसिक बिंब या चित्र। साहित्य में भावनाओं का चित्रण कल्पना के द्वारा ही संपन्न हो जाता है। सुंदरम की प्रतिष्ठा का श्रेय कल्पना तत्त्व को ही है। जीवन के विविध अंगों का प्रस्तुतीकरण कल्पना के द्वारा ही संभव हो पाता है। इसी कल्पना के सहारे कवि दूसरों के सुख-दु:ख और अनुभूतियों का चित्रण इस प्रकार करता है कि वह हमारा सुख-दु:ख बन जाता है। कवि काव्य कौशल्य के सहारे अप्रत्यक्ष घटना को प्रत्यक्ष रूप में और सूक्ष्म भाव को स्थूल रूप में अंकित करने की कोशिश करता हैं। यह कौशल्य उसे कल्पना शक्ति से ही प्राप्त हो जाता है। काव्य में सौंदर्य की सृष्टि और चमत्कारिता उत्पन्न करने का काम कल्पना के द्वारा ही संभव हैं। लौकिक वर्णन को अलौकिक रूप में प्रस्तुत करने का कार्य कवि कल्पना के सहारे ही कर पाता है।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अंतर्गत कविता में कल्पना तत्त्व को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। एडिसन, काष्ट, कॉलरिज, क्रोंचे आदि प्रख्यात विचारकों ने कल्पना का प्रभूत विवेचन किया है। इन विद्वानों के अनुसार कल्पना मस्तिष्क की सौंदर्य बोधात्मक प्रवृत्ति की प्रक्रिया है। पाश्चात्य विद्वान रस्किन ने लिखा है, ''कविता

कल्पना के द्‌वारा मनोवेगों के लिए रमणीय क्षेत्र प्रस्तुत करती है।'' कल्पना तत्त्व अमूर्त भाव को मूर्त रूप प्रदान करता है। हिंदी के आधुनिक विद्‌वानों ने भी कल्पना संबंधी अपने मौलिक विचार प्रकट किए हैं। डॉ. रामदहिन मिश्र जी कल्पना के संबंध में लिखते हैं – ''अनुपस्थित वस्तु की मानस प्रतिभा खडी करने की शक्ति का नाम कल्पना है।'' शून्य या अज्ञात वस्तु को कवि कल्पना के सहारे आकार देता है। बाबू श्यामसुंदर दास जी के अनुसार, ''विज्ञान में जो बुद्‌धि है, दर्शन में जो सृष्टि है, वही कविता में कल्पना है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्लजी ने कल्पना के दो भेद किए हैं – विधायक कल्पना और ग्राहक कल्पना। विधान के लिए कवि में विधायक कल्पना अपेक्षित होती है तथा संपर्क ग्रहण के लिए पाठक या श्रोता में ग्राहक कल्पना। अचेतन को सचेतन करने की बडी शक्ति कवि में कल्पना से आती है। कवि कल्पना के द्‌वारा नए संसार की रचना करता है। वह एक साधारण घटना को कल्पना के बल पर असाधारण रूप में पेश करता है। नवीनता तथा रोचकता जैसे गुण काव्य में कल्पना के द्‌वारा ही समाविष्ट होते हैं। कल्पना तत्त्व का महत्त्वपूर्ण काम मानव जीवन के अनेक दृश्यों को सम्मुख प्रस्तुत करना होता है। विचारों को उत्तेजित करने की शक्ति कल्पना में होती है। असल में कल्पना का सामर्थ्य ही कवि की प्रतिभा है।

1.3.2.3 बुद्‌धि तत्त्व (The Element of Intellect) :

बुद्‌धि तत्त्व में विचार की प्रधानता होने के कारण इसे विचार तत्त्व के नाम से भी जाना जाता है। बुद्‌धि का संबंध तथ्यों, विचारों और सिद्‌धांतों से हैं। कवि किसी विशिष्ट प्रयोजन हेतु काव्य का निर्माण करता है। वह अपने पाठकों को एक विशिष्ट विचार प्रदान करना चाहता है। यही विचार काव्य में बुद्‌धि तत्त्व कहलाते हैं। बुद्‌धि तत्त्व का संबंध अनुभूति और अभिव्यक्ति दोनों से हैं। काव्य में विचारों और तत्त्वों का प्रतिपादन बुद्‌धि तत्त्व के द्‌वारा ही होता है। बुद्‌धि तत्त्व के कारण काव्य सुसंगत तथा प्रभावशाली बन जाता है। कल्पना और भाव को सत्य बनाने का काम बुद्‌धि तत्त्व का होता है। साथ ही कल्पना, भाव और शब्दों का संयोजन औचित्यपूर्ण होने के लिए बुद्‌धि तत्त्व का सहारा लेना पडता है। साहित्य की प्रत्येक विधा में कथा संयोजन, चरित्र–चित्रण और भाव निरूपण का कार्य साहित्यकार बुद्‌धि के आधार पर ही करता है। बुद्‌धि तत्त्व से हीन कोई भी वर्णन हास्यास्पद हो जाता है। संत तुलसीदास के शब्द प्रयोगों के औचित्य और विचारपूर्णता पर न जाने कितनी व्याख्याएँ हुई हैं और बराबर हो रही हैं।

बुद्‌धि तत्त्व साहित्यकार को एक निश्चित दिशा प्रदान करता है। घटनाओं का संग्रह और घटनाओं का चुनाव इस प्रकार करना कि इसका उपयुक्त प्रभाव पडे और कर्म के अनुरूप फल दिखाने के लिए बुद्‌धि तत्त्व का प्रयोग होता है। भारतीय तथा पाश्चात्य विद्‌वानों ने बुद्‌धि तत्त्व को महत्त्वपूर्ण तत्त्व के रूप में स्वीकारा है। काव्य में भावों पर अंकुश लगाने का काम बुद्‌धि तत्त्व के द्‌वारा ही होता है। निबंध विधा में बुद्‌धि तत्त्व की प्रधानता होती है। काव्य में योग्य–अयोग्य का चयन बुद्‌धि ही करती है।

साहित्य का उद्‌देश्य केवल कोरा मनोरंजन करना नहीं है, तो एक वैचारिक शक्ति प्रदान करना भी है। उसके लिए साहित्य में बुद्‌धि तत्त्व की प्रधानता रहती है। काव्य में संतुलन की बागडोर बुद्‌धि तत्त्व पर ही निर्भर रहती है। लेकिन काव्य में विचारों की अधिकता काव्य को बोझिल बना सकती है। इसी कारण भाव और

विचारों का तादाम्य काव्य के लिए अनिवार्य होता है।

1.3.2.4 शैली तत्त्व :

शैली तत्त्व काव्य के कलापक्ष से संबंधित तत्त्व है। इसे काव्य का शरीर भी कहा जाता है। प्रत्येक कवि की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। जिसके आधार पर कवि अपने काव्य को पूर्ण रूप दे पाता है। साहित्यकार जिस भाषा, जिस प्रणाली और रूप का इस्तेमाल कर अपनी अनुभूति को अभिव्यक्त करता है, उसे शैली कहा जाता है। इसके अंतर्गत शब्द चयन, अलंकारों का प्रयोग तथा साहित्य के स्वरूप का समावेश होता है। शैली का संबंध काव्य के बाह्यांगों से संबंधित होता है। लेकिन भावों और विचारों की संप्रेषणीय और प्रभावशाली अभिव्यक्ति शैली से ही संभव होती है। इस तत्त्व का प्रमुख आधार भाषिक संरचना है। जिस प्रकार शरीर के बिना आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है, उसी प्रकार भाषा आदि के बिना काव्य की कल्पना भी असंभव है।

काव्य को मधुर, उत्साहवर्धक और आकर्षक बनाने के लिए शैली का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है। भारतीय काव्यशास्त्र में शैली के लिए 'रीति' शब्द प्रचलित है। 'रीति' का अर्थ काव्य लेखन की विशिष्ट पद्धति से जोडा जाता है। आचार्य वामन विशिष्ट पद रचना को रीति कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने शैली का संबंध कवि के व्यक्तित्व से माना है। वर्तमान समय में साहित्य में वर्णनात्मक शैली, हास्यव्यंग्यात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, सरस शैली, ललित शैली, उदात्त शैली आदि का प्रयोग किया जाता है।

1.3.2.5 निष्कर्ष :

संक्षेप में क़हा जा सकता है कि, उक्त सब तत्त्व एक दूसरे से जुडे हुए हैं। किसी एक तत्त्व के आधारपर काव्य निर्माण असंभव-सा प्रतीत होता है। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली तत्त्व के संगठित और समन्वित रूप से ही साहित्य का सृजन हो सकता है। किसी भी एक तत्त्व की उपेक्षा पूरे काव्य के स्वरूप को हानि पहुँचा सकती है।

1.3.3 काव्य प्रयोजन :

मनुष्य के प्रत्येक कार्य के पीछे कोई-न-कोई उद्देश्य अवश्य रहता है। संसार में बिना उद्देश्य के मंदबुद्धि वाला व्यक्ति भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता है। उसी तरह कवि भी बिना उद्देश्य के रचना को जन्म नहीं देता है। काव्य-प्रणयन में कवि के जो उद्देश्य रहते हैं, वे ही काव्य प्रयोजन कहलाते हैं। काव्य को 'ब्रह्मानंद सहोदर' कहा गया है। अत: इसके निर्माण के मूल में प्रयोजनों का होना अत्यंत स्वाभाविक है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के प्रयोजनों पर गंभीरता से विचार किया है। यहाँ महत्त्वपूर्ण प्रयोजनों का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है -

1.3.3.1 संस्कृत आचार्य : काव्य प्रयोजन –

◆ **आचार्य भरतमुनि :**

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भरतमुनि के काल तक काव्य और नाटक में कोई भेद नहीं माना

जाता था। भरतमुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में नाट्य प्रयोजनों का उल्लेख करते हुए काव्य प्रयोजन की ओर इस प्रकार संकेत किया है –

''धर्म्यं यशस्यमायुष्यहितं बुद्धिविवर्द्धनम्।
लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद भविष्यति।।''

अर्थात, भरतमुनि के अनुसार धर्म, यश, आयु, हितोपदेश, जनहित आदि नाट्य के प्रयोजन हैं।

◆ **आचार्य भामह :**

भामह ने अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन बताए हैं –

''धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्य निबन्धनम्।।''

अर्थात, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति, कलाओं में निपुणता, कीर्ति और प्रीति काव्य के प्रयोजन हैं। भामह ने पहली बार चतुर्वर्ग फल–प्राप्ति को काव्य प्रयोजनों में स्थान प्रदान किया, जिसे आगे चलकर प्राय: सभी आचार्यों ने स्वीकार किया है।

◆ **आचार्य वामन :**

वामन के काव्य के दो प्रयोजन बताए हैं –

''काव्यं सद्दृष्टादृष्टार्थ प्रीतिकीर्ति हेतुत्त्वात''

अर्थात, काव्य के दो प्रयोजन है, एक है प्रीति या आनंद साधना जो दृष्ट प्रयोजन है और दूसरा है कीर्ति जो अदृष्ट प्रयोजन है।

◆ **आचार्य मम्मट :**

आचार्य मम्मट का संस्कृत काव्यशास्त्र में विशेष स्थान है। इनके बताए हुए काव्य प्रयोजनों पर पूर्ववर्ती आचार्यों का प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही साथ अपनी मौलिकता का परिचय भी दिया है। आचार्य मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' ग्रंथ में निम्न छ: प्रयोजनों की विशद चर्चा की है –

''काव्य यशसे अर्थकृत व्यवहारविदे शिवेनरक्षयते।
सद्य: परिनिर्वृत्तये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे।।''

अर्थात, काव्य यश प्राप्ति, अर्थ प्राप्ति, व्यवहार ज्ञान, अमंगल का नाश, अलौकिक आनंदानुभूति और कांतासम्मित उपदेश के लिए होता है। मम्मट की काव्य प्रयोजन विषयक धारणा सर्वोत्तम और परिपूर्ण मानी जाती है। इनके काव्य प्रयोजनों का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है –

अ) यश–प्राप्ति :

यश की कामना मनुष्य की एक सहज प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति यश प्राप्ति के लिए लालायित रहता है।

बहुत सारे साहित्यकार भी यश-प्राप्ति की आकांक्षा से साहित्य सृजन में प्रवृत्त होते हैं। अंग्रेजी कवि मिल्टन के अनुसार यश मानव की अंतिम और उदात्ततम कामना है। विश्वविख्यात महाकवि कालिदास, भवभूति, शेक्सपियर आदि ने यश की कामना से ही काव्य रचना की है। रूद्रट ने लिखा है - ''महाकवि सरस काव्य की रचना करता हुआ, अपने तथा नायक के प्रत्यक्ष युगांत तक रहनेवाले जगद्व्यापी यश का विचार करता है।''

स्वपक्ष और पर पक्ष यह यश प्रयोजन के दो पक्ष हैं। भास और भवभूति जैसे कवियों ने काव्य रचना करके अपने यश का विस्तार किया है, तो रीतिकालीन कवियों ने अपने काव्य के माध्यम से आश्रयदाताओं का गुणगान किया है।

ब) अर्थ-प्राप्ति :

सांसारिक जीवन में अर्थ (धन) को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है। इसी वजह से प्रत्येक मनुष्य अर्थोपार्जन के लिए कुछ न कुछ उद्योग करता है। काव्य रचना का एक प्रयोजन अर्थ-प्राप्ति भी रहा है। लगभग सभी संस्कृत तथा हिंदी आचार्यों ने इस प्रयोजन का समर्थन किया है। संस्कृत के कवि धावक ने महाराज श्री हर्ष से एक-एक श्लोक पर लक्ष मुद्रा प्राप्त की थी। रीतिकाल के कवि अपनी रचनाओं में आश्रयदाताओं की प्रशंसा करते और उससे धन प्राप्त करते थे। रीतिकाल में अर्थ-प्राप्ति करना काव्य का मुख्य प्रयोजन था। आज भी अनेक साहित्यकार अपनी रचनाओं के माध्यम से राजनेताओं की प्रशंसा करते हुए दिखाई देते हैं। इसके पीछे इनका उद्देश्य केवल धन कमाना ही है।

हिंदी के रीतिकालीन कवि बिहारी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उन्हें राजा जयसिंह ने एक-एक दोहे के लिए एक-एक अशर्फी दी थी। कहा जाता है कि अंग्रेजी उपन्यासकार स्कॉट ने भी ऋण चुकाने के लिए उपन्यायस लिखे थे।

क) व्यवहार ज्ञान :

मम्मट ने व्यवहार ज्ञान की शिक्षा को भी काव्य का एक प्रयोजन माना है। काव्य के द्वारा लौकिक व्यवहार की शिक्षा भी दी जाती है। काव्य सृजन से कवि और पाठक दोनों को भी व्यवहार ज्ञान प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य में बहुत सारे ग्रंथ इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही लिखे गए हैं। आचार्य कुंतक ने इस प्रयोजनसंबंधी लिखा है - ''सत्काव्य में औचित्य से युक्त व्यवहार चेष्टा का निदर्शन प्रधान रहता है।'' महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि काव्यों से व्यवहार ज्ञान की प्राप्ति होती है। यह प्रयोजन जीवन की वास्तविकताओं को जानने - समझने के लिए एक दृष्टि प्रदान करता है। साथ ही उचितानुचित व्यवहार का ज्ञान भी इस प्रयोजन से प्राप्त होता है।

ड) शिवेतरक्षयते :

शिवेतरक्षयते का अर्थ है अमंगल का नाश। इस प्रयोजन को संस्कृत और हिंदी आचार्यों ने मान्यता दी है। साहित्य केवल मनोरंजन तक सीमित कभी नहीं रहा; बल्कि उसका लक्ष्य लोकहित ही रहा है। अनिष्ट के

निवारण हेतु बहुत सारा साहित्य लिखा गया है। भक्तिकाल के सुप्रसिद्ध कवि तुलसीदास ने स्वयं की बाहु पीडा से मुक्ति पाने के लिए 'हनुमान बाहुक' ग्रंथ की रचना की थी। मयूर कवि ने सूर्य से कोढ निवारण की प्रार्थना करते हुए 'सूर्यशतक' की रचना की थी।

भक्तिकाल के कबीर, रैदास जैसे कवियों ने जाति-पाँति की अमंगल प्रथा का विरोध किया। रीतिकाल में भूषण ने लोकहित को ध्यान में रखते हुए मुगल शासन की दमणकारी नीति के खिलाफ रचनाएँ लिखी। आधुनिक काल के कवियों ने अंग्रेजी शासन के अन्याय से मुक्ति पाने के लिए अनेक रचनाओं का सृजन किया। साथ ही इन कवियों ने भारत में चलती आ रही अनेक अनिष्ठ प्रथाओं का विरोध करने के प्रयोजन से रचनाएँ लिखी।

इ) सद्य: परिनिर्वृत्तये :

सद्य: परिनिर्वृत्तये का अर्थ है आनंद की प्राप्ति। इस आनंद का संबंध अलौकिक आनंद से हैं। सभी संस्कृत आचार्यों ने इसे सर्वोत्कृष्ट तथा प्रमुख प्रयोजन के रूप में स्वीकारा है। काव्य के आस्वादन से जो रस रूपी आनंद मिलता है, उससे कवि और पाठक दोनों को आनंदानुभूति होती है। इस आनंद को 'ब्रह्मानंद सहोदर' भी कहा गया है। इससे मनुष्य के जीवन में वेदना तथा विषमता का नाश होकर शांति का मनोराज्य स्थापित हो जाता हैं। कष्टों से मुक्ति पाकर अलौकिक आनंद की प्राप्ति होती है।

ई) कांतासम्मित उपदेश :

शास्त्रों के अंतर्गत उपदेश-शैली तीन प्रकार की बताई गई है - प्रभु सम्मित, सुहृदय सम्मित और कांता सम्मित। काव्य में कांता सम्मित उपदेश को महत्त्व दिया गया है। कांता सम्मित अर्थात् प्रिया द्वारा मधुर शैली में कही गई बात या भेजा गया संदेश। जिस प्रकार पत्नी अपने मधुर वचनों से पति को मुग्ध करके अनर्थ से बचाती है, उसी प्रकार काव्य भी मधुर कथा और ध्वनि के सहारे मनुष्य को उच्च आदर्शों की शिक्षा देता है। उसका प्रभाव भी शीघ्रता से होता है। सुंदर, कोमल अऔर आकर्षक भाषा काव्य को रोचक बनाती है। कवि बिहारी का निम्न दोहा इस प्रयोजन का उत्तम उदाहरण है। जिसने राजा जयसिंह को काफी प्रभावित किया था।

''नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहि काल।
अलि, कली ही सौं बन्ध्यौ, आगे कौन हवाल।''

1.3.3.2 प्राचीन हिंदी आचार्य : काव्य प्रयोजन –

हमारे प्राचीन हिंदी आचार्यों ने काव्य प्रयोजन संबंधी महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ आचार्यों के काव्य प्रयोजन इस प्रकार से है -

◆ **गोस्वामी तुलसीदास :**

महाकवि तुलसीदास ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचरितमानस' में काव्य प्रयोजन संबंध में लिखा है-

''कीरति भनिनि भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।''

अर्थात कीर्ति, कविता और ऐश्वर्य – वैभव वही श्रेष्ठ है जो गंगा नदी के समान सब का हित करनेवाला है। भावार्थ यह है कि तुलसीदास जी ने गंगा नदी की पवित्रता तथा उपकारी भावना से जोडकर लोक मंगल की स्थापना करना ही काव्य का प्रयोजन सिद्ध किया है।

◆ **आचार्य कुलपति :**

आचार्य कुलपति ने काव्य प्रयोजन के विषय में लिखा है –

''जस सम्पत्ति आनन्द अति दुरितन डारै खोई।
होत कवित्त ते चतुराई जगत राम बस होई।।''

अर्थात, यश, संपत्ति, अलौकिक आनंद, दु:खों का नाश और व्यवयहार ज्ञान काव्य के प्रयोजन हैं। कुलपति ने अपने इस दोहे में मम्मट के काव्य प्रयोजनों को ही दोहराया है।

1.3.3.3 आधुनिक हिंदी विद्वान : काव्य प्रयोजन –

हिंदी साहित्य के आधुनिक कवियों, आचार्यों तथा आलोचकों ने युग की बदलती हुई काव्य विषयक मान्यताओं को ध्यान में रखकर अपने-अपने काव्य प्रयोजनों का निरूपण किया है।

◆ **महावीर प्रसाद द्विवेदी :**

इन्होंने ज्ञान का विस्तार और मनोरंजन को ही काव्य प्रयोजन स्वीकार किया है।

◆ **मैथिलीशरण गुप्त :**

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य के दो प्रयोजन माने हैं – मनोरंजन और उपदेश।

''केवल मनोरंजन न कवि का, कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी, मर्म होना चाहिए।''

◆ **डॉ. नगेंद्र :**

डॉ. नगेंद्र काव्य का प्रयोजन कवि की आत्माभिव्यक्ति की भावना को मानते हैं। उनके अनुसार, ''साहित्य का प्रयोजन आत्माभिव्यक्ति है। कवि या लेखक के हृदय में जो भाव या विचार उठते हैं, उन्हें वह प्रकाशित करना चाहता है।

1.3.3.4 पाश्चात्य काव्यशास्त्र : काव्य प्रयोजन –

पाश्चात्य आचार्यों का दृष्टिकोण प्राय: वस्तुपरक ही रहा हैं। इसलिए यहाँ के अधिकांश आचार्यों के काव्य प्रयोजन वस्तुपरक प्रधान ही रहे हैं। जिसके कारण पाश्चात्य विद्वानों ने समाज और जीवन के परिवेश में ही काव्य प्रयोजनों का विवेचन किया है। साथ ही ललित कलाओं के अंतर्गत काव्य कला को रखकर उसे शीर्षस्थ कला माना है। कला के प्रयोजन को लेकर पाश्चात्य विद्वानों में अनेक वाद प्रचलित हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य के निम्नलिखित प्रयोजन बताए हैं –

1) कला कला के लिए।
2) कला जीवन के लिए।
3) कला जीवन में प्रवेश के लिए।
4) कला जीवन से पलायन के लिए।
5) कला मनोरंजन के लिए।
6) कला आनंद के लिए।
7) कला आत्मानुभूति के लिए।
8) कला सेवा के लिए।
9) कला विनोद के लिए।
10) कला सृजन की आवश्यकता पूर्ति के लिए।

इनमें से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण वादों की चर्चा इस प्रकार की जा सकती है –

◆ कला कला के लिए :

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में 'कला कला के लिए'. यह माननेवाला एक बडा वर्ग मिलता है। इस वर्ग के प्रमुख आचार्य आस्कर वाइल्ड, ब्रेड ले, फ्लावर्त, वाल्टर पेंटर, स्पिंगर्न आदि हैं। इनकी दृष्टि में 'काव्य काव्य के लिए' अथवा 'कला कला के लिए'' ही हैं। जीवन और काव्य का कोई संबंध नहीं है। इसके संबंध में ब्रेडले ने लिखा है – ''इनको एक ही वस्तु के दो विभिन्न रूप कहा जा सकता है। एक के पास सार्थकता है, किंतु कल्पना को उससे शायद ही परितोष मिलता है। दूसरे के पास कल्पना को परितोष देने की सामग्री है, किंतु पूर्ण यथार्थ नहीं है। ये समानांतर रूप है जो परस्पर कही नहीं मिलते हैं।''

इन विचारकों के अनुसार कवि या कलाकार कविता या कलाकृति की रचना करते समय कोई विशिष्ट उद्देश्य सामने लेकर नहीं बैठता। उसकी प्रतिभा के स्वच्छंद प्रस्फुटन के लिए प्रयोजन और उद्देश्य का कोई बंधन नहीं होना चाहिए। क्योंकि बंधनों के कारण वह रचना ठीक रूप से विकसित नहीं हो पाएगी। सिद्धांतो और आदर्शों की स्थापना करना कवि का काम नहीं हैं। कवि का प्रमुख उद्देश्य काव्य की सृष्टि करना ही है। अत: उनकी दृष्टि में कला कला के लिए ही है, किसी प्रयोजन के लिए नहीं, परंतु इस मत का उपयोग कुरूचिपूर्ण, अश्लील, दूषित अथवा बीभत्स साहित्य के समर्थन और प्रचार के लिए करना अनुचित है, क्योंकि वह तो मूलत: कला या काव्य के स्वभाव के विरूद्ध है।

कला कला के लिए इस मत को स्वीकार करते हुए भी पाठक या श्रोता की दृष्टि से दूसरे प्रयोजन स्वत: आ जाते हैं। जब पाठक किसी भी साहित्य को पढता है, तो उसे आनंद की प्राप्ति अपने आप हो जाती है। इससे पाठक को कोई न कोई प्रेरणा प्राप्त हो सकती है, शिक्षा मिल सकती है तथा दु:खमय जीवन सुखमय हो सकता हैं। ऐसी स्थिति में जिस कवि ने सिर्फ कला के दृष्टिकोण से काव्य रचा, वह काव्य पाठक के लिए अनेक प्रयोजनों से युक्त हो जाता है। अत: कला को कला का मुख्य प्रयोजन माना जा सकता है, किंतु कला को कला का एममात्र प्रयोजन मानने में कुछ आपत्ति हो सकती है।

◆ कला जीवन के लिए :

कला जीवन के लिए है इस बात को कोई भी इन्कार नहीं कर सकता है। यह मत कला कला के लिए है इसके विरूद्ध दिखाई देता हे। इसमें कला का संबंध मानव जीवन से जोड दिया है। जीवन के विकास और उत्कर्ष के साथ कला का स्थान महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है। साथ ही उसकी व्यापकता में भी बढोत्तरी हो चुकी

है। कला को केवल कला तक ही सीमित रखना उसे मानव जीवन से दूर रखने जैसा है। काव्य और कला मानव जीवन से जुडकर ही समृद्ध और सार्थक बन जाती है।

काव्य जीवन को प्रेरणा प्रदान करता है। सुंदर, स्वस्थ तथा उदात्त दृष्टिकोण काव्य के माध्यम से ही जीवन में आता है। काव्य में चिंताग्रस्त क्षणों को दूर करने की एक अजब शक्ति होती है। सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण काव्य के माध्यम से ही प्रस्तुत हो जाता है। प्लेटो, रस्कीन, टॉलस्टाय, मैथ्यू आरनॉल्ड आदि विद्वान इस पक्ष के समर्थक हैं। काव्य जब नैतिक भावनाओं की उपेक्षा करता है, तब वह जीवन की भी उपेक्षा करता है। रस्किन ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि, ''वही काव्य ग्राह्य हो सकता है जिसमें अधिकाधिक मनुष्यों का हित निहित हो।'' टॉलस्टाय कला को मानव एकता का साधन मानते हुए कहते हैं कि, ''कला आनंद नहीं, वरन् मानव एकता का साधन है जो मानव एका को सहानुभूति द्वारा परस्पर मिलाती है।'' प्लेटो के अनुसार – ''समाज के नैतिक विकास का भार कवियों पर होता है।'' अत: काव्य को जीवन से दूर रखना असंभव-सा प्रतीत होता है।

◆ कला जीवन से पलायन के लिए :

वास्तविक रूप में यह मत उपर्युक्त मत का ही एक अंग है। हम अपने वास्तविक, कटु और नीरस जीवन से उबकर अधिक व्यापक, सुंदर और आकर्षक जीवन दर्शन के लिए काव्य का सहारा लेते हैं। काव्य के माध्यम से सुंदर और सुखी जीवन की तलाश मनुष्य करता है। काव्य मनुष्य को कल्पना लोक में पहुँचा देता है। निराशाग्रस्त मध्ययुगीन जीवन के लिए गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखित राम की जीवनकथा इसी प्रकार का पलायन है।

◆ कला आनंद के लिए :

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में एक वर्ग आनंद को ही काव्य प्रयोजन मानता है। शिलर, शैले आदि विद्वान इसी वर्ग के अंतर्गत आते हैं। काव्य से आनंद तथा मनोरंजन की प्राप्ति होती है। इससे मानव मन प्रफुल्लित हो उठता है। काव्य को इसी आनंददायी शक्ति के कारण 'ब्रह्मानंद सदोहर' कहा गया है। शिलर के अनुसार – ''आल्हाद समस्त कलाओं का लक्ष्य हैं, क्योंकि मानव सुख से अधिक उदात्त और गंभीर अन्य कोई समस्य नहीं है।'' इसके साथ शैले ने भी आनंद को काव्यत्व का मूल आधार मानते हुए लिखा है – ''काव्य शाश्वत नित्य को अभिव्यक्त करनेवाली जीवन की प्रतिभा है। यह आनंद मिश्रित ज्ञान से संपृक्त होती है।''

◆ कला सृजन की आवश्यकता–पूर्ति के लिए :

जिस प्रकार ईश्वर की सृष्टि का क्या प्रयोजन है? यह बताना अत्यंत कठिन है, लेकिन फिर भी सृष्टि व्यवस्थित रूप से चलती रहती है। उसी प्रकार काव्य रचना एक सृजनात्मक आवश्यकता है, जिसको पूरा किए बिना सर्जनशील प्रतिभा से युक्त कवि रह नहीं सकता है। वह सारे बंधनों को दूर रखके लिखता है। यह तो एक स्वयंसिद्ध प्रयोजन है।

1.3.3.5 निष्कर्ष :

उपर्युक्त काव्य प्रयोजनों का विस्तृत विवेचन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि संस्कृत-आचार्यों द्वारा उल्लेखित काव्य प्रयोजन विस्तृत और सूक्ष्म दिखाई देते हैं। इसमें मम्मट द्वारा प्रस्तुत काव्य प्रयोजन को सबसे अधिक मान्यता मिलती हुई दिखाई देती है। हिंदी विद्वानों के काव्य प्रयोजनों पर संस्कृत और पाश्चात्य विचारकों का प्रभाव देखने को मिलता है। पाश्चात्य विद्वानों ने काव्य को कला के अंतर्गत रखा है। इन विद्वानों में भी काव्य प्रयोजन संबंधी अनेक मत-मतांतर दिखाई देते हैं। लेकिन उनका समन्वित रूप अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। संक्षेप में उल्लेखित सभी काव्य प्रयोजन एक दूसरे के पूरक है, विरोधी नहीं। किसी भी एक काव्य प्रयोजन से काव्य का स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पाएगा।

1.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दि गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रथम ग्रंथ ..... माना जाता हैं
   (क) काव्यादर्श (ख) नाट्यशास्त्र (ग) काव्यप्रकाश (घ) काव्यशास्त्र

2) Literature शब्द ..... से बना है।
   (क) Lecture (ख) Poet (ग) Letter (घ) Write

3) 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'' ..... का काव्य लक्षण है।
   (क) भामह (ख) दण्डी (ग) भरतमुनि (घ) वामन

4) 'ननु शब्दार्थो काव्यम्' परिभाषा ..... ने दी है।
   (क) रूद्रट (ख) राजेशखर (ग) विश्वनाथ (घ) मम्मट

5) 'साहित्यदर्पण' के रचनाकार ..... है।
   (क) भामह (ख) विश्वनाथ (ग) भरतमुनि (घ) कुंतक

6) 'काव्यालंकार' के रचयिता ..... है।
   (क) आनंदवर्धन (ख) मम्मट (ग) भामह (घ) जगन्नाथ

7) कविता हमारे ..... क्षणों की वाणी है।
   (क) उत्कृष्ट (ख) परिपूर्ण (ग) सीमित (घ) सारपूर्ण

8) 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम' परिभाषा ..... की है।
   (क) जगन्नाथ (ख) विश्वनाथ (ग) राजेशखर (घ) मम्मट

9) 'काव्यप्रकाश' के रचयिता ..... है।
   (क) भामह (ख) रूद्रट (ग) राजेशखर (घ) मम्मट

10) विंचेस्टर ने साहित्य के ..... तत्त्व माने हैं।
(क) दो (ख) चार (ग) तीन (घ) पाँच

11) कांतासम्मित उपदेश को काव्य प्रयोजन ..... ने माना है।
(क) आनंदवर्धन (ख) विश्वनाथ (ग) मम्मट (घ) वामन

12) Poetry is at bottam a criticism of life ..... ने कहा है।
(क) कॉलरिज (ख) ड्राइडन (ग) शेक्सपियर (घ) मैथ्यू आरनॉल्ड

13) साहित्य का प्राण तत्त्व ..... है।
(क) भाव (ख) शैली (ग) बुद्धि (घ) कल्पना

14) ..... तत्त्व में विचार की प्रधानता होती है।
(क) शैली (ख) बुद्धि (ग) कल्पना (घ) भाव

15) 'काव्य रसायन' के रचयिता ..... है।
(क) बिहारी (ख) भूषण (ग) देव (घ) घनानंद

16) Imagination शब्द ..... से बना है।
(क) Image (ख) Photo (ग) Intellet (घ) Copy

17) शैली तत्त्व काव्य के ..... पक्ष से संबंधित है।
(क) भाव (ख) कला (ग) विचार (घ) बुद्धि

18) भारततीय काव्यशास्त्र में शैली के लिए ..... शब्द प्रचल्लित है।
(क) ध्वनि (ख) वक्रोक्ति (ग) रीति (घ) अलंकार

19) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ..... को काव्य प्रयोजन माना है।
(क) आत्महित (ख) विवेक जागृति (ग) आत्माभिव्यक्ति (घ) हृदय की मुक्तावस्था

20) कविता सुस्पष्ट संगीत है ..... ने कहा है।
(क) कार्लाइल (ख) ड्राइडन (ग) अरस्तू (घ) वर्डसवर्थ

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में लिखिए।

1. 'वाक्य रसात्मक काव्यम' परिभाषा कौनसे आचार्य की है?
2. आचार्य भामह के ग्रंथ का नाम क्या है?
3. 'शब्दार्थौ रहितौ काव्यम्' परिभाषा कौनसे आचार्य की है?
4. 'कविकुलकल्पतरू' ग्रंथ के लेखक कौन है?
5. 'काव्य सरोज' ग्रंथ के लेखक कौन है?

6. 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि' यह काव्य लक्षण कौन से आचार्य का है?
7. सुमित्रानंदन पंत की काव्य परिभाषा कौनसी है?
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा किसने दी है?
9. महावीर प्रसाद द्विवेदी की काव्य परिभाषा कौनसी है?
10. 'रत्नावली' ग्रंथ के रचयिता का नाम क्या है?
11. साहित्य के मूल तत्त्व कौनसे हैं?
12. बुद्धि तत्त्व का दूसरा नाम क्या है?
13. 'काव्यादर्श' के रचयिता कौन है?
14. कौनसे अंग्रेजी उपन्यासकार ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा?
15. 'काव्य प्रकाश' के रचयिता कौन है?
16. आचार्य वामन के अनुसान काव्य प्रयोजन कितने हैं?
17. जयशंकर प्रसाद की काव्य परिभाषा कौनसी है?
18. आचार्य मम्मट ने कितने प्रयोजनों की चर्चा की है?
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी के काव्य प्रयोजन कौनसे हैं?

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. प्रवर्तक – संस्थापक
2. अशर्फी – सोने की मुहर
3. अतिव्याप्ति – किसी भी कथन के अंतर्गत लक्ष्य के अतिरिक्त अन्य वस्तु के आ जाने को न्याय में अतिव्याप्ति दोष कहते हैं।
4. भावात्मक – भावनाओं से युक्त
5. अली – भ्रमर
6. वियोग – दूर होने की अवस्था
7. आलोचना – गुण-दोषों का विवेचन
8. प्रयोजन – उद्देश्य
9. प्रचलन – प्रथा, रिवाज
10. अंतःकरण – मन, अंतरात्मा

1.6 स्वयं-अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित पर्याय

1. नाट्यशास्त्र 2. Letter 3. भामह 4. रूद्रट

5.	विश्वनाथ	6. भामह	7. परिपूर्ण	8. जगन्नाथ
9.	मम्मट	10. चार	11. मम्मट	12. मैथ्यू आरनॉल्ड
13.	भाव	14. बुद्धि	15. देव	16. Image
17.	कला	18. रीति	19. हृदय की मुक्तावस्था	20. ड्राइडन

आ) एक वाक्य में उत्तर –

1. 'वाक्य रसात्मक काव्यम्' परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की है।
2. आचार्य भामह के ग्रंथ का नाम 'काव्यालंकार' है।
3. 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम' परिभाषा भामह की है।
4. 'कविकुलकल्पतरू' ग्रंथ के लेखक आचार्य चिंतामणी है।
5. 'काव्य सरोज' ग्रंथ के लेखक आचार्य श्रीपति है।
6. 'तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि' यह काव्य लक्षण आचार्य मम्मट का है।
7. सुमित्रानंदन पंत की परिभाषा है, ''कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी हैं।''
8. Poetry is at bottom a criticism of life परिभाषा मैथ्यू आरनॉल्ड की है।
9. महावीर प्रसाद द्विवेदी की परिषाषा है, ''मनोभाव शब्दों का रूप धारण करते हैं, वही कविता है, चाहे वह पद्यात्मक हो चाहे गद्यात्मक।''
10. 'रत्नावली' ग्रंथ के रचयिता धावक है।
11. भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली साहित्य के मूल तत्त्व हैं।
12. बुद्धि तत्त्व का दूसरा नाम विचार तत्त्व है।
13. 'काव्यादर्श' के रचयिता आचार्य दण्डी है।
14. अंग्रेजी उपन्यासकार स्कॉट ने ऋण से मुक्ति पाने के लिए उपन्यास लिखा था।
15. 'काव्यप्रकाश' के रचयिता आचार्य मम्मट है।
16. आचार्य वामन के अनुसार काव्य के दो प्रयोजन हैं।
17. जयशंकर प्रसाद की काव्य परिभाषा है, ''काव्य आत्मा की संकल्पनात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से है।''
18. आचार्य मम्मट ने छः काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है।
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी के ज्ञान का विस्तार और मनोरंजन यह दो प्रयोजन हैं।

1.7 सारांश :

- साहित्यशास्त्र में काव्य और साहित्य एक दूसरे के पर्यायवाची शब्द माने गए हैं। आज साहित्य की अनेक विधाएँ हमारे सामने प्रस्तुत हो रही है। काव्य शब्द आज पद्यात्मक रचनाओं के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है।

- भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपनी-अपनी दृष्टि से काव्य को परिभाषित करने की कोशिश की है। संस्कृत आचार्यों के काव्य लक्षण अत्यंत मौलिक है और हिंदी विद्वानों के काव्य लक्षणों पर संस्कृत और पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। काव्य को हम मनुष्य के अंतरंग और बहिरंग को अभिव्यक्त करनेवाला सशक्त माध्यम मान सकते हैं।
- भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली ये साहित्य के प्रमुख तत्त्व है। भाव तत्त्व को काव्य का प्राण तत्त्व माना है। काव्य में सौंदर्य की प्रतिष्ठा करने में कल्पना तत्त्व कार्य करता है, तो विचारों का प्रतिपादन बुद्धि तत्त्व के माध्यम से होता है। शैली तत्त्व काव्य के कलापक्ष से संबंधित है। जिससे कोई भी रचना मधुर और रोचक बनती है।
- संस्कृत आचार्यों में मम्मट की काव्य प्रयोजन विषयक धारणा को सर्वोतम और परिपूर्ण माना गया है। इन्होंने काव्य के छ: काव्य प्रयोजनों की चर्चा की है। पाश्चात्य विद्वानों ने समाज और जीवन के परिवेश में ही काव्य प्रयोजनों का विवेचन किया है। विशेष बात यह है कि समय और परिस्थिति के अनुरूप काव्य प्रयोजन संबंधी विचारों में बदलाव आया है।

1.8 स्वाध्याय :

1) संस्कृत आचार्यों के काव्य लक्षणों पर प्रकाश डालिए।
2) पाश्चात्य विद्वानों की काव्य परिभाषाओं पर प्रकाश डालिए।
3) काव्य के तत्त्वों को विशद कीजिए।
4) काव्य के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
5) मम्मट द्वारा प्रतिपादित काव्य-प्रयोजनों का विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिए।
6) काव्य के प्रयोजनों पर प्रकाश डालिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- किसी साहित्यकार से मिलकर काव्य के स्वरूप पर विचार-विमर्श कीजिए।
- काव्य के तत्त्वों के बारे में जानकारी हासिल कीजिए।
- किसी रचना से पढकर उसमें प्रयोजन ढूँढिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2) भारतीय साहित्यशास्त्र - बलदेव उपाध्याय
3) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (भाग 1 और 2) - डॉ. गोविंद त्रिगुणाराय
4) भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा - सं. डॉ. नगेंद्र

5) काव्यशास्त्र के विविध आयाम – सं. मधु खराटे

6) साहित्य विवेचन – सुमन मल्लिक

7) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र – डॉ. यतींद्र तिवारी

8) काव्यशास्त्र – डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी

9) भारतीय काव्यशास्त्र – डॉ. विजयपाल सिंह

10) साहित्यशास्त्र – डॉ. नारायण शर्मा

11) साहित्य रूप : शास्त्रीय विश्लेषण – डॉ. ज्ञानराज गायकवाड

❑❑❑

इकाई 2

काव्य के प्रकार, काव्य–गुण, काव्य–दोष

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय–विवेचन

2.3.1 काव्य / साहित्य के प्रकार :

2.3.1.1 दृश्य काव्य

2.3.1.2 श्रव्य काव्य

2.3.2 काव्य–गुण

2.3.2.1 माधुर्य गुण

2.3.2.2 ओज गुण

2.3.2.3 प्रसाद गुण

2.3.3 काव्य–दोष

2.3.3.1 पद्गत दोष (पद दोष)

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष)

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष)

2.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

1. काव्य एवं साहित्य से परिचित होंगे।

2. काव्य के प्रकारों से परिचित होंगे।

3. काव्य का वर्गीकरण करने की दृष्टि से सक्षम होंगे।

4. काव्य-गुणों का महत्त्व और भेद समझ सकेंगे।

5. काव्य-दोषों का स्वरूप और भेदों से परिचित होंगे।

2.2 प्रस्तावना :

मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण वह अपने विचारों का आदान-प्रदान करने के लिए अपनी-अपनी भाषा का प्रयोग करता है। इसी परिप्रेक्ष्य में भाषा का हर शब्द किसी न किसी 'अर्थ' का वाचक होता है। विशिष्ट प्रयोजन के लिए 'शब्द' का जब विशिष्ट प्रयोग किया जाता है, तो मूल अर्थ से अलग अन्य अर्थ स्पष्ट होने लगता है। इस पाठ्यक्रम में काव्य एवं उसके प्रकारों आदि का सामान्य परिचय अपेक्षित है। साथ ही काव्य-गुण और काव्य-दोश के अंतर्गत उसके भेदों का परिचय देखेंगे।

2.3 विषय – विवेचन :

काव्य के प्रकार, काव्य-गुण, काव्य-दोष का स्वरूप समझने के लिए हमें काव्य का स्वरूप, उससे तात्पर्य, काव्य-गुण का स्वरूप, काव्य-दोष का स्वरूप तथा उसके भेदों से परिचित होना आवश्यक है।

शब्द और अर्थ का परस्पर संबंध रहा है। सार्थक वर्णों के समुह को 'शब्द' कहते हैं। अत: अर्थपूर्ण ध्वनिसमूह को 'शब्द' कहा जाता है। संस्कृत आचार्यों ने शब्द और अर्थ पर बल देकर ही काव्य का स्वरूप स्पष्ट किया है। शब्द और अर्थ को पानी और लहर की उपमा देते हुए तुलसीदास कहते हैं –

''गिरा अर्थ जल बीचि सम, कहियत भिन्न न भिन्न ।''

अर्थात् पानी में उठनेवाली लहर पानी से अलग दिखाई देती है। वास्तविक रूप में अलग नहीं, बल्कि वह पानी का एक अंग है। तात्पर्य शब्द का महत्त्व तथा अस्तित्व उसके अर्थ पर निर्भर करता है।

2.3.1 काव्य / साहित्य के प्रकार :

काव्य-प्रकारों को निम्नलिखित तालिका के आधार पर अवगत किया जा सकता है-

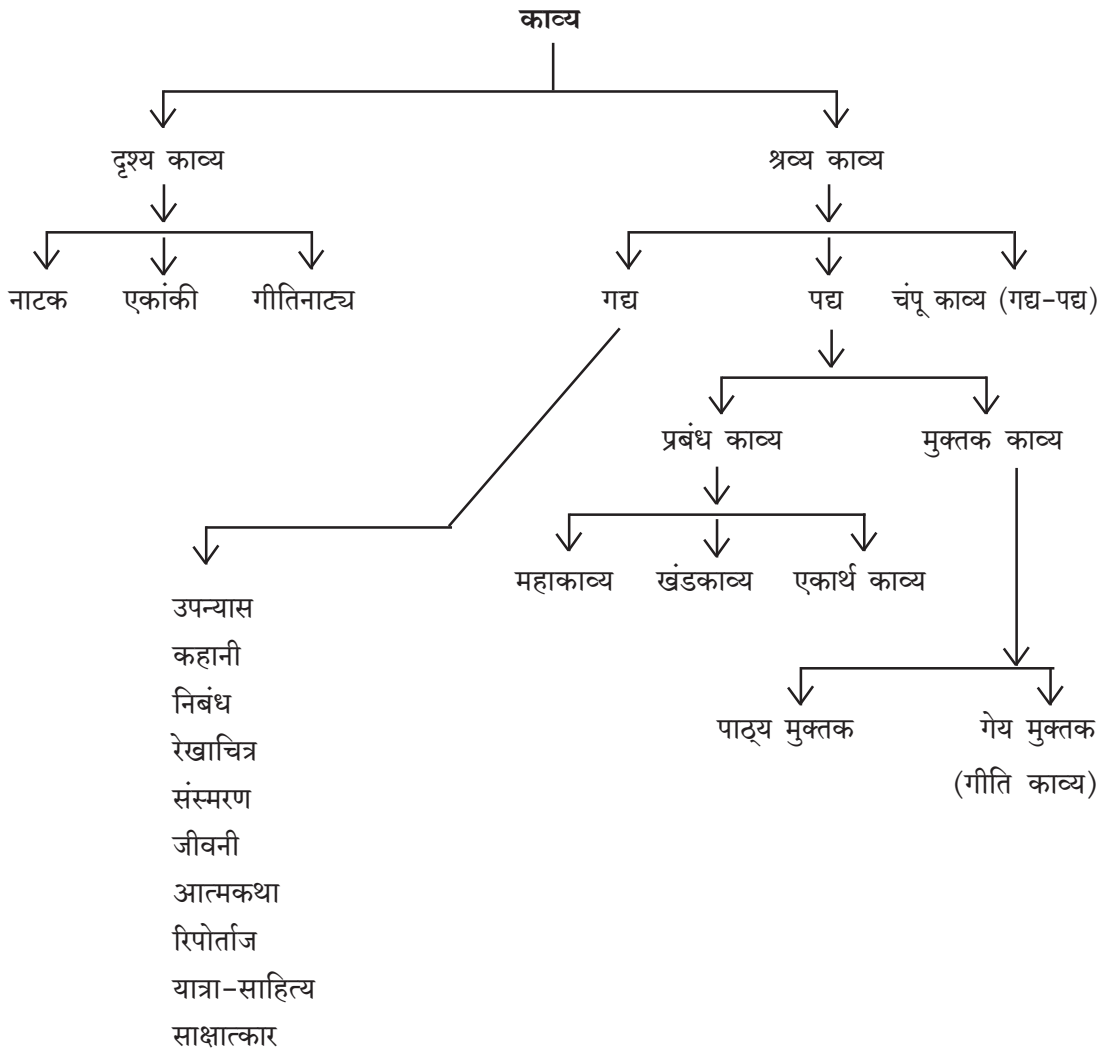

2.3.1.1 दृश्य काव्य :

जिस काव्य का आनंद मंच पर देखकर लिया जाए, वह दृश्य काव्य कहलाता है। काव्य के वर्ण्य विषय को अभिनय द्वारा रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। अत: सामाजिक उसे देखकर आनन्दित हो उठता है। बदलते काल में दृश्य काव्य कहना उचित नहीं होगा, क्योंकि नाटक, एकांकी आदि को सुनकर भी आनंद मिलता है। आज इसे दृक-श्रव्य कहा जा सकता है। सही अर्थों में अभिनय मंच पर देखकर ही जनसाधारण आनंद ले सकता है। नाटक, एकांकी और गीतिनाट्य आदि रूप दृश्य काव्य के अंतर्गत ही आते हैं।

2.3.1.1.1 नाटक : रंजनात्मक विधाओं में नाटक का स्थान महत्त्वपूर्ण है। नाटक रूपक का सबसे अधिक प्रसिद्ध भेद है। प्रभावकारिता की दृष्टि से नाटक का स्थान सर्वोपरि है। संस्कृत आचार्यों ने नाटकों को भी काव्य के अंतर्गत स्थान दिया है। इसके लिए निम्न उक्ति काफी है -

'काव्येषु नाटक रम्यम तत्र रम्या शकुन्तला।'

अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय है और नाटकों में शकुन्तला।

संस्कृत के नाटकों में तीन तीन पद्योंवाले वार्तालाप होते थे। रीतिकाल और आधुनिक काल के प्रारंभ में जो नाटक लिखे गये, वे पूर्णत: पद्यात्मक थे अथवा संवादों में गद्य के साथ पद्यों को भी स्थान दिया जाता था। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में गीतों की अधिकता स्पष्ट रूप में देखने को मिलती है। अभिनय नाटक का अनिवार्य अंग है, तो संवाद नाटक की आत्मा है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार वार्तालाप, संगीत, नृत्य, वेशभूषा, कथावस्तु और अभिनय समन्वित करने पर जो रूप बनता है, उसे नाटक कहा जाता है। कथानक, पात्र तथा चरित्र, रस, उद्देश्य, अभिनय आदि भारतीय मतानुसार नाटक के पाँच तत्त्व हैं, तो कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद, देशकाल वातावरण, उद्देश्य, भाषाशैली, अभिनय आदि पाश्चात्य नाट्यशास्त्र के अनुसार नाटक के सात तत्त्व माने हैं।

2.3.1.1.2 एकांकी : जो नाटक एक अंक में समाप्त होता है, उसे एकांकी कहा जाता है। अंग्रेजी साहित्य में एकांकी को 'One Act Play' कहा गया है। एकांकी मानव का रंजन करती है। एक ही घटना, प्रसंग और विचार को प्रस्तुत करने का कार्य एकांकी करती है। एकांकी नाटक का सुनिश्चित और सुकल्पित एक लक्ष्य होता है। संघर्ष एकांकी का प्राण है। क्रियाशीलता और गतिशीलता एकांकियों की प्रमुख विशेषता है। उसमें संकलनत्रय का पालन होना आवश्यक है। एकांकी के अंत में रहस्य उद्‌घाटन होना जरूरी होता है। कथानक, पात्र, कथोपकथन, देशकाल, भाषाशैली और उद्देश्य आदि एकांकी के तत्त्व माने जाते हैं। अभिनेयता तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। एकांकी में अनावश्यक अंग की उपेक्षा होती है।

2.3.1.1.3 गीतिनाट्य : नाटक जब गीतों के द्‌वारा प्रस्तुत किया जाता है, तब उसे गीतिनाट्य कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे पोयटिक ड्रामा कहते हैं। अंग्रेजी साहित्य में इसका विशेष महत्त्व है। गीत तथा नृत्य के आधार पर गीतिनाट्य का विकास होता है। गीतिनाट्य की भाषा पद्यात्मक होती है। स्वाभाविक है कि वार्तालाप काव्य में चलता है। डॉ नगेन्द्र का कथन गीतिनाट्य के संबंध में उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि 'इसका प्राणतत्त्व है भावना अथवा मन का संघर्ष और माध्यम है कविता।' गेयता तथा नाटकत्व होने के कारण गीतिनाट्य प्रभावशाली बन जाता है। गीतिनाट्य में तुकान्त, अनुकान्त और मुक्त छंदों का प्रयोग होता है। हिंदी नाटकों में गीतों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। काव्यत्व के साथ साथ वैयक्तिकता, भावातिरेकता,चित्रोपमता नाटकीयता और अभिनेयता आदि महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ गीतिनाट्य की है।

2.3.1.2 श्रव्य काव्य :

जिस काव्य का आनन्द सुनकर या पढकर लिया जाता है, उसे श्रव्य काव्य कहा जाता है। श्रव्य काव्य के शैली के आधार पर तीन भेद किये गये हैं - गद्य, पद्य और चंपूकाव्य।

2.3.1.2.1 गद्य :

गद्य का सही विकास आधुनिक काल में हुआ है। आधुनिक काल को गद्यकाल के नाम से पुकारा जाता है। उपन्यास, कहानी, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तांत और साक्षात्कार गद्य साहित्य के प्रकार दृष्टव्य हैं।

2.3.1.2.1.1 उपन्यास : उपन्यास में मानव जीवन का चित्रण होता है और उपन्यास केवल काल्पनिक कथा नहीं है, उसका आधार यथार्थ है। सभी गद्य विधाओं में उपन्यास सर्वाधिक लोकप्रिय, आकर्षक एवं सजीव विधा है। उपन्यास सम्राट स्वर्गीय मुन्शी प्रेमचंद ने अपने विचार इन शब्दों में प्रकट किए हैं, ''मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्त्व है।'' उपन्यास में सर्वाधिक महत्त्व कथावस्तु का होता है। पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार वर्ण्यविषय को विकसित करता है। संक्षिप्त संवाद रोचकता निर्माण करते हैं। घटना की सजीवता दिखाने के लिए उपन्यास में वातावरण महत्त्वपूर्ण होता है। उपन्यास में पात्रानुकूल भाषा शैली होती है। आजकल लघु उपन्यास अधिक मात्रा में लिखे जा रहे हैं। लघु उपन्यास कम समय में अधिक मनोरंजन करते हैं।

2.3.1.2.1.2 कहानी : आधुनिक युग में कहानी साहित्य का बहुत विकास हुआ है। कहानी का विकास मनुष्य की भाषा के साथ-साथ माना जा सकता है। एक काल में कहानी विशेष तथा लोकप्रिय व्यक्तित्व को लेकर चलती थी, किंतु आज के काल में कहानी का नायक आम और उपेक्षित जन भी है। यह कहना गैर नहीं होगा कि कहानी के स्वरूप में और वर्ण्यविषय में जितनी विविधता आयी है, उतनी और किसी साहित्यिक कृति के स्वरूप में नहीं मिलती है। गौरव की बात है कि मनुष्य कितना भी व्यस्त हो कहानी पढने के लिए लालायित होता है। कहानी ही 'आख्यायिका', गल्प, कथा आदि नामों से जानी जाती है। कहानी में कल्पना, नाटकीयता, सरलता, स्वाभाविकता, मनोवैज्ञानिकता, स्पष्टता और प्रभावकारिता गुण विद्यमान होते हैं।

2.3.1.2.1.3 निबंध : निबंध गद्य साहित्य की सर्वोत्कृष्ट विधा है। निबंध का शाब्दिक अर्थ बांधना है। यह बाँधना भाव तथा विचार का है। निबंध का वर्तमान रूप बहुत कुछ पाश्चात्य है। अंग्रेजी में निबंध का पर्याय Essay शब्द माना जाता है। आधुनिक निबंध के जन्मदाता मौन्तेय को माना जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने निबंध के बारे में कहा है, ''यदि गद्य कवियों की कसौटी है, तो निबंध गद्य की कसौटी हैं। वर्ण्यविषय, व्यक्तित्त्व, भाषाशैली और उद्देश्य जैसे निबंध के प्रमुख तत्त्व हैं। निबंध के लिए विषय का कोई बंधन नहीं होता है।

2.3.1.2.1.4 रेखाचित्र : रेखाचित्र आधुनिक युग की ही उपज है। साहित्य में प्रयुक्त रेखाचित्र शब्द अंग्रेजी 'Sketch' का समानार्थक है। इसे शब्दचित्र भी कहा जाता है। जो स्थान कला के क्षेत्र में चित्रकला का और चित्रकार का है, वही स्थान साहित्य जगत् में रेखाचित्र तथा रेखाचित्रकार का है। चित्रकला में रेखा, रूप और रंग का महत्त्व होता हैं, किंतु रेखाचित्र में रंगों का प्रयोग नहीं होता है। इसमें रेखाओं द्वारा मनोगत भावों का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। रेखाचित्र का उद्देश्य मानव-समाज में प्रेम तथा संवेदना को सचेत करना

होता है। यथार्थ की विश्वसनीयता और विषय की अनुभूत वास्तविकता रेखाचित्र की अपनी विशेषताएँ हैं। रेखाचित्र साहित्य में महादेवी वर्मा को रूप और चारित्रिक दोनों वर्णनों में विशेष सफलता प्राप्त हुई है।

2.3.1.2.1.5 संस्मरण : संस्मरण आधुनिक हिंदी गद्य की एक महत्त्वपूर्ण, नूतन और आकर्षक विधा है। संस्मरण का मतलब है किसी व्यक्ति के संबंध में रमणीय घटनाओं का उल्लेख। संस्मरण के लिए अंग्रेजी पर्यायवादी शब्द Memoirs है। जीवनी साहित्य का एक ललित तथा लघुरूप है संस्मरण। संस्मरण का मूलाधार स्मृति है। संस्मरण की घटना विशिष्ट होना जरुरी होता है। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के शब्दों में, ''भावूक कलाकार जब अतीत की अनन्त स्मृतियों में से कुछ रमणीय अनुभूतियों को अपनी कोमल कल्पना से अतिरंजित कर, व्यंजनामूलक संकेत शैली में अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं में विशिष्ट कर रोचक ढंग से यथार्थ रूप में व्यक्त कर देता है तब उसे संस्मरण कहते हैं। संस्मरण का प्रचलन पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से ही हिंदी क्षेत्र में हुआ है। संस्मरण में संस्मरणकार अधिक आत्मनिष्ठ रहता है। संस्मरणकार जिन दृश्यों, घटनाओं और व्यक्तियों से प्रभावित होता है, उन्हें अपने संस्मरण का विषय बनवाता है।

2.3.1.2.1.6 जीवनी : किसी व्यक्ति-विशेष के क्रमबद्ध जीवन-वृत्तांत को जीवनी कहा जाता है। साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत जीवनी का अपना एक विशेष महत्त्व है। जीवनी लिखने की परंपरा बहुत पुरानी है, किंतु हिंदी के लिए सर्वथा नवीन है। जीवनी, जीवन चरित्र अथवा जीवन चरित आदि तिनों शब्द पर्यायवाची है। जीवनी लेखक स्वयं की रुचि के अनुसार एखाद व्यक्ति की ओर आकर्षित होता है, उसी पर जीवनी लिखता है। जीवनी में काल्पनिकता तथा अतिरंजित प्रसंग का वर्णन नहीं होता है। चरित्र नायक का चित्रण करते समय उसके बाह्य और आंतरिक व्यक्तित्व का विश्लेषण किया जाता है।

2.3.1.2.1.7 आत्मकथा : आत्मकथा का यौगिक अर्थ आत्मकथा अर्थात् आत्मा की कथा निकलता है। इसमें 'स्व' की प्रधानता होती है। इसमें कल्पना का अभाव होता है। आत्मकथाकार को प्रत्यक्ष जीवन का चित्रण करने का मौका मिलता है। आत्मकथा का प्रतिपाद्य आत्मपरिक्षण और आत्मसमर्पण है। आत्मकथाकार पाठक के मन में आस्था जगाने का काम करता है। बिते हुए जीवन की सच्चाई आत्मकथाकार फिर एक बार देखता है। आत्मकथा का सबसे महत्त्वपूर्ण तत्त्व तटस्थता, कलात्मकता, आत्मतत्त्व, आत्मपरिक्षण है। आत्मकथाकार अपने जीवन के अच्छे और बुरे दोनों का चित्रण इमानदारी के साथ करता है।

2.3.1.2.1.8 रिपोर्ताज : रिपोर्ताज गद्य की एक साहित्यिक विधा है। इसे विशेष साहित्यिक महत्त्व है। 'रिपोर्ताज' शब्द मूलत: फ्रांसीसी भाषा का है। यह विधा अंग्रेजी के Report शब्द से समानता रखती है। इसे हिंदी में वृत्त-निर्देश तथा सूचनिका भी कहा जाता है। रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबंधित लघु विधा है। इसका जन्म द्वितीय महायुद्ध के युद्ध-वर्णनों में हुआ था। रिपोर्ताज में सत्य की प्रधानता होती है। इसमें गद्य के साथ साथ पद्य की भी झलक पायी जाती है। 'रिपोर्ताज का लेखक एक ही समय में पत्रकार तथा साहित्यकार होता है।

2.3.1.2.1.9 यात्रा-साहित्य : यात्रा-साहित्य की परम्परा बहुत पुरानी है। अनेक ग्रंथों में इसकी

झलक उसे देखने को मिलती है। मानव का जीवन व्यापक बनने का कारण वह प्राचीन काल से यात्रा कर रहा है। यात्रा के कारण मनुष्य के बौद्धिक विकास में बढोत्तरी होती है। प्राचीन काल से आज तक मनुष्य विभिन्न कारणों से यात्रा करता हुआ नजर आता है। इसके कारण ही मनुष्य की आनंद तथा उल्हास की भावना पुष्ट हुई है। वास्तविकता तथा विश्वसनीयता यात्रा-साहित्य में होती है। यात्रावर्णन करते समय इतिहास का बोध भी आवश्यक होता है। हिंदी साहित्य जगत् में यात्रा साहित्य बहुत कम लिखा गया है।

2.3.1.2.1.10 साक्षात्कार : साक्षात्कार एक नवविकसित, स्वतंत्र तथा महत्त्वपूर्ण साहित्यिक विधा है। अंग्रेजी साहित्य में इसका अच्छा विकास हुआ है। साक्षात्कार के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द Interview है। साक्षात्कार के लिए भेंटवार्ता और बातचीत शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। हिंदी में साक्षात्कार साहित्य बहुत कम लिखा गया है। राजेंद्र यादव ने रशियन रचनाकार चेखव से भेंट की थी। उन्होंने साक्षात्कार का बडा रोचक और भावपूर्ण वर्णन किया है। साक्षात्कार के बारे में डॉ. गोविंद त्रिगुणायत लिखते हैं, ''इन्टरव्यू उस रचना को कहते हैं, जिसमें लेखक किसी-न-किसी व्यक्ति-विशेष से प्रथम भेंट में अनुभव होनेवाली उसके संबंध में अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं को अपनी पूर्व-धारणाओं और आस्थाओं एवं रुचियों से रंजित कर सरस, भावपूर्ण ढंग से व्यंजना-प्रधान शैली में बंधे हुए शब्दों में व्यक्त करता है।''

2.3.1.2.2 पद्य : जो रचना छन्दबद्ध होती है, उसे पद्य कहा जाता है। काव्य के परम्परागत रूप से प्रबंध और मुक्तक दो भेद माने जाते हैं। प्रबंध काव्य के भी तीन भेद किये गये हैं - महाकाव्य, खंडकाव्य, एकार्थ काव्य। पाठ्यमुक्तक और गोयमुक्तक आदि दो भेद मुक्तक काव्य के किये गये हैं।

2.3.1.2.2.1 प्रबंधकाव्य : प्रबंध काव्य को मुक्तक की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाता है। प्रबंध काव्य में सामूहिक प्रभाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के मतानुसार, ''प्रबंध काव्य में मानवजीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध श्रृंखला और स्वाभाविक क्रम से ठीक-ठीक निर्वाह के साथ-साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले तथा उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव करानेवाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए।'' प्रबंध काव्य के महाकाव्य, खंडकाव्य और एकार्थकाव्य आदि तीनों प्रकारों का हम पृथक् पृथक् विवेचन करेंगे।

2.3.1.2.2.1.1 महाकाव्य : प्रबंध काव्य का महत्त्वपूर्ण प्रकार महाकाव्य है। महाकाव्य साहित्य की श्रेष्ठ विधा है। महाकाव्य वृद्ध काव्य रुप है। महाकव्य में मानव जीवन के सभी पक्षों का वर्णन होता है। महाकाव्य का अर्थ है महान काव्य। संस्कृत के 'महत्' और 'काव्य' शब्दों से मिलकर महाकाव्य शब्द बना है। महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। भामह, रुद्रट, दंडी, हेमचन्द्र, विश्वनाथ, आचार्य रामचंद्र शुक्ल और नगेन्द्र आदि ने महाकाव्य विषयक मान्यता प्रस्तुत की है। अरस्तू, एबरक्रॉम्बे, डेबनोट, लुकन टेसो, केर साहब, डिक्सन, वाल्टेयर आदि पाश्चात्य विद्वानों ने भी महाकाव्य का परिचय दिया है। महान कथानक, महान चरित्र, महान संदेश और महान वर्णन शैली आदि महाकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। पृथ्वीराज रासो, आल्हाखंड, कामायनी, साकेत, प्रिय प्रवास, कुरुक्षेत्र, जयभारत आदि महाकाव्य प्रसिद्ध रहे हैं।

2.3.1.2.2.1.2 खंडकाव्य : खंडकाव्य में जीवन के किसी एक पक्ष का वर्णन होता है। इसका कलेवर लघु होता है। खंडकाव्य अपने आप में संपूर्ण होता है। खंडकाव्य का उद्देश्य महाकाव्य के समान चतुवर्ग के फल की प्राप्ति होता है। कहा जाता है कि उपन्यास और कहानी में जितना अन्तर रहता है या नाटक और एकांकी में जितना अन्तर रहता है, उतना ही अन्तर महाकाव्य और खंडकाव्य में होता है। कथावस्तु, पात्र तथा चरित्र-चित्रण, कथोपकथन, देशकाल वातावरण, रस, भाषाशैली और उद्देश्य आदि तत्त्व खण्डकाव्य के हैं। हिंदी साहित्य जगत् में बहुत से खंडकाव्य लिखे गए हैं। जयद्रथ वध, सैरन्ध्री, पंचवटी, भोजराज, द्रौपदी, संशय की रात, आँसू और पथिक आदि खंडकाव्य महत्त्वपूर्ण हैं।

2.3.1.2.2.1.3 एकार्थकाव्य : महाकाव्य और खंडकाव्य प्रबंधकाव्य के दो भेद प्राचीन आचार्यों ने माने थे, किंतु आचार्य विश्वनाथ, मिश्र जी ने 'एकार्थकाव्य' को भी प्रबंधकाव्य का भेद माना है। संक्षिप्ततम कथावस्तु, अल्पतम पात्र, रसभाव, भाषाशैली और उद्देश्य आदि एकार्थ काव्य के तत्त्व हैं। सीमित कथानक को लेकर लिखी जानेवाली विस्तृत कविता एकार्थकाव्य कहा जा सकता है। संवाद अतिसीमित होते हैं। दो-चार पात्रों से अधिक पात्र इसमें नहीं होते हैं। इसमें वातावरण का चित्रण होना ही चाहिए ऐसी बात नहीं है। प्रभाव छोडने के लिए वातावरण का चित्रण किया जाता है। निराला जी ने 'राम की शक्तिपूजा' में 'अमावस्य की कालिमा' का चित्रण किया है।

2.3.1.2.2.2 मुक्तक काव्य : मुक्तक काव्य का अर्थ है - मुक्त रहनेवाला। मुक्तक भावप्रधान काव्य की श्रेणी में आता है। सरस तथा भावूक कवि के मुक्तक लोकप्रिय हो पाते हैं। मुक्तक एक स्वतंत्र और निरपेक्ष रचना होती है। 'अग्निपुराण' में मुक्तक काव्य का उल्लेख मिलता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, ''यदि प्रबंध-काव्य एक विस्तृत वनस्थली है तो मुक्तक एक चुना हुआ गुलदस्ता है।'' भामह, वामन और राजशेखर ने मुक्तक पर चर्चा की है।

मुक्तक काव्य के दो भेद माने जाते हैं - 1) पाठ्य् मुक्तक 2) गेय मुक्तक.

2.3.1.2.2.2.1 पाठ्य मुक्तक : इस काव्य की रचना ऐसे छन्दों में की जाती है, जिसे लय, ताल और संगीत के रूप में गाया न जा सके और जिसका सिर्फ पठन ही हो सके, उसे पाठ्य मुक्तक कहा जाता है। इसकी रचना दोहे, चौपाई और बरवै आदि लघु छन्दों में भी की जाती है।

2.3.1.2.2.2.2 गेय मुक्तक (गीतिकाव्य) : गेय पद रचना को गीतिकाव्य कहा जाता है। इसे प्रगीत-काव्य तथा गेय मुक्तक के नाम से भी पुकारा जाता है। भारतवर्ष में गीत प्रचलित हैं। महादेवी वर्मा के अनुसार, ''गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र सुख-दुखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है, जो अपनी ध्यन्यात्मकता में गेय हो सके।''

हिंदी गीतिकाव्य पर संस्कृत साहित्य का बडा प्रभाव है। गीतों का उन्नत रूप जयदेव के गीतों में मिलता है। हिंदी में साहित्यिक गीतों की सर्जना सर्वप्रथम विद्यापति ने की। कबीर के गीत जनसाधारण में अत्यधिक

मात्रा में प्रिय हैं। सूरदास के पद गेय हैं। तुलसीदास जी ने भगवद्भक्ति में गीतों की संरचना की है। रीतिकाल में शाब्दिक चमत्कार अधिक हैं, किंतु गीति परम्परा कुछ शुष्क होती नजर आती है। आधुनिक काल में हरिश्चन्द्र ने गीति परम्परा को आगे बढाया। मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पाण्डे, बद्रीनाथ भट्ट, माधव शुक्ल ने अभिनव शैली में गीत प्रस्तुत किये हैं। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और शिवमंगल सिंह सुमन ने गीतों की रचना की है। पर हमें मानना ही पडेगा कि गीति–काव्य परंपरा अपनी शुरू की अवस्था से आजतक उत्तरोत्तर विकसित हुई दिखाई देती है।

2.3.1.2.3 चंपू काव्य : गद्य और पद्य के मिलेजुले रूप को चंपू काव्य कहा जाता है। इसे मिश्र काव्य भी कहा जाता है। जैसे कि मैथिलीशरण गुप्त का 'यशोधरा' काव्य। संस्कृत साहित्य में अनेक चंपूकाव्य उपलब्ध हैं। जैसे नल चम्पू, रामायण चंपू आदि।

2.3.1.4 निष्कर्ष :

कुलमिलकर हम संक्षेप में कहा जा सकता है कि काव्य की अनेक विधाएँ प्राचीन हैं। काव्य प्रभाव रखने में सक्षम होता है। काव्य में शब्द और अर्थ का रमणीय संबंध देखने को मिलता है। बदलते परिप्रेक्ष्य में काव्य के विषय में भी बदलाव देखने को मिलता है। संस्कार, शिक्षा और ज्ञान देने में काव्य का योगदान सराहनीय है। कवि अपने अंतकरण में जाकर काव्य को अपने भावों से रंजित करता है। सुकोमल भावना के साथ–साथ शब्द तथा स्वर की साधना काव्य में महत्त्वपूर्ण होती है। अत: यह सच है कि भावात्मक विचारों का स्फोट काव्य में ही होता है।

2.3.2 काव्य–गुण :

काव्य–सर्जना में कुछ तत्त्व सक्रिय रहते हैं, जिनका उपयोग कवि या रचनाकार करता है। शब्द और अर्थ तो काव्य के शरीर होते हैं तथा रस ही उसकी आत्मा के स्थान पर रहता है। रस ही काव्य में मुख्य होता है और 'गुण' इस मुख्य रस के ही धर्म होते हैं और काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।

रस को काव्य की आत्मा और अलंकारों को कविता का बाह्य सौंदर्य बढानेवाला धर्म स्वीकारने वाले आचार्यों ने गुण का उल्लेख रस और अलंकार दोनों के संदर्भ में किया है। आचार्य मम्मट ने गुण की परिभाषा दी है –

''ये रसस्यादिनो धर्मा: शौर्यादय इवात्मन: ।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा: ।।''

अर्थात् जिस तरह मनुष्य के शरीर में शौर्य आदि गुणों की स्वाभाविक स्थिति होती है, वैसे ही कविता में रस को उत्कर्ष प्रदान करनेवाले धर्म को गुण कहा जाता है।

'अग्निपुराण' में कहा गया है कि किसी नारी के शरीर पर स्वाभाविक सौंदर्य आदि गुणों के अभाव में जिस

तरह हार आदि आभूषण भार लगते हैं, वैसे ही अलंकारों से युक्त होकर भी काव्य-गुण के अभाव में आनंद प्राप्त नहीं हो सकता है। आचार्य दंडी ने गुण को काव्य का प्राण रूप माना है। गुणों की संख्या के बारे में साहित्यशास्त्रियों के बीच प्रारंभ में मतभेद रहे हैं। लेकिन अंतत: काव्य-गुणों की संख्या दस मानी हैं।

1) श्लेष 2) प्रसाद 3) समता 4) समाधि 5) माधुर्य 6) ओज 7) सुकुमारता 8) अर्थव्यक्ति 9) उदारता 10) कान्ति।

अधिकांश आचार्यों ने (दंडी, मम्मट, कुंतक, हेमचंद्र, विश्वनाथ, आनंदवर्धन आदि) माधुर्य, ओज एवं प्रसाद इन तीन गुणों को प्रमुख माना है। आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ ने इन्हीं तीन गुणों में अन्य का समावेश स्वीकृत किया है। हिन्दी के अधिकतर आचार्यों ने भी इन्हीं तीन गुणों को महत्त्वपूर्ण माना है। इन गुणों का परिचयात्मक विश्लेषण निम्नलिखित हैं-

2.3.2.1 माधुर्य गुण :

जिस काव्य की रचना से अन्त:करण आनंद से भर जाय, वहाँ माधुर्य गुण होता है। कविता में माधुर्य गुण के समावेश के कारण श्रृंगार आदि रसों की प्रस्तुति में आकर्षण का समावेश होता है। इसमें मधुरता-व्यंजक शब्द तथा वर्ण आदि का प्रयोग किया जाता है। अत: कविता में लगातार रसात्मकता और मधुरता का बोध होता रहे।

माधुर्य गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(अ) इसमें ट, ठ, ड, ढ का प्रयोग न हो।

(ब) वर्गान्त्य वर्णों के प्रयोग से सुकुमारता बढती है।

(क) र, ण वर्ण भी माधुर्य - व्यंजक होते हैं।

(ड) इसमें बहुत छोटे-छोटे समास प्रयुक्त हो।

उदा. : *''कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।*
कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही।। (रामचरितमानस)

2.3.2.2 ओज गुण :

जिस काव्य-गुण के कारण चित्त में स्फूर्ति एवं मन में तेज उत्पन्न हो, उसे ओज कहा गया है। ओजपूर्ण कविता के सुनने मात्र से मन में जोश और आवेग उत्पन्न हो जाता है। इसीकारण वीर, बीभत्स और रौद्र जैसे रसों के लिए ओज गुण की योजना की जाती है। वक्र अर्थवाले लम्बे सामासिक पदों और कठोर वर्णों से बने काव्य द्वारा ओज गुण की प्रस्तुति की जाती है।

ओज गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) ऊपर–नीचे रेफ युक्त वर्णों का प्रयोग हो।
(ब) ट, ठ, ड, ढ तथा श, ष वर्णों का प्रयोग ओजवर्धक होता है।
(क) इसमें दीर्घ समासवाली रचना होनी चाहिए।
(ड) इसकी पद योजना या रचना औचित्यपूर्ण हो।

उदा. : *''इंद्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर*
रावन–सदंभ पर रघुकुल राज है,
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाहु पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं । (कवि भूषण)

2.3.2.3 प्रसाद गुण :

आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि सूखे ईंधन में अग्नि के समान या धुले हुए वस्त्र में पानी की भाँति तत्काल मन में व्याप्त हो जानेवाला गुण प्रसाद है। यह गुण ऐसा सरल और सुबोध अर्थ व्यक्त करता है कि पंक्तियों से गुजरते ही कविता साकार हो उठती है।

प्रसाद गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

(अ) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण संघटना नहीं है।
(ब) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण त्याज्य या सीमित नहीं है।
(क) सभी रसों में तत्काल अर्थ प्रदान करता है।
(ड) प्रसाद गुण व्याप्त एवं प्रसन्नता देता है।

उदा. : *''चारूचन्द्र की चंचल किरणे, खेल रहीं हैं जल–थल में।*
बिमल चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अंबरतल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से।
मानो झीम रहे हैं तरू भी मन्द पवन के झोंको से।।'' (पंचवटी)

2.3.3 काव्य–दोष :

आचार्य भरत ने जब महान निर्दोषिता को काव्य–गुण की संज्ञा दी थी, तब दोषरहित काव्य–सृजन की पहल की थी। आचार्य भामह ने लिखा है कि काव्य–सृजन न करना कोई अपराध नहीं है, लेकिन सदोष काव्य–रचना करना तो साक्षात् मृत्यु है।

काव्य में दोषों को टालना कविता की प्रारंभिक अनिवार्यता के रूप में अनेक साहित्यशास्त्रियों ने मान्यता दी हैं। मम्मट ने तो काव्य की परिभाषा में ही दोषों का विरोध किया है –

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुनः क्वापि।''

आचार्य भरत एवं वामन ने काव्य-दोष को काव्य-गुण का विपर्य माना है। काव्य-दोषों की संख्या पर काफी विचार-विमर्श विविध विद्वानों ने किया हैं। आचार्य विश्वनाथ ने दोष की परिभाषा देते हुए लिखा है - ''रसापकर्षका दोषा:'' मतलब 'दोष' वे हैं, जो रस या काव्य के आत्म तत्त्व के अपकर्षक होते हैं। लेकिन सभी मतों का सार रूप स्वीकार करें, तो आज काव्य-दोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं - शब्द दोष, अर्थ दोष, रस दोष।

2.3.2.1 शब्द दोष (पद दोष) :

काव्य में आनंद प्रदान करनेवाला प्रारंभिक अवयव शब्द या पद होता है। इस नाते यदि शब्दों के संघटन में ही दोष हो, तो संपूर्ण कविता का प्रभाव तथा आनंद समाप्त होता है। इसीलिए जहाँ शब्द या पद रचना और प्रयोग के कारण काव्यार्थ की प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है, वहाँ पद्‌गत दोष या पद दोष कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने पद दोष के १६ प्रकार बताए हैं। उनमें से कुछ दोषों का विवेचन निम्न प्रकार से हैं-

(अ) श्रुति कटुत्व : काव्य रचना करते समय सुनने में मधुर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। रस के विपरित कानों को खटकनेवाले कठोर वर्ण प्रयोग से श्रुति कटुत्व दोष होता है।

उदा. : *''ठाट है सर्वत्र घर या घाट है।*
लोक-लक्ष्मी की विलक्षण हाट है।''

इन पंक्तियों में ट, ठ जैसे कठोर वर्ण प्रयोग के कारण श्रुति कटुत्व आया है।

(ब) अश्लीलता : यह दोष किसी ऐसे पद के प्रयोग के कारण होता है, जिससे अभिप्रेत अर्थ निकलने के साथ ही कोई लज्जा, घृणा और अमंगलकारी अर्थ भी निकलते हैं।

उदा. : *''गिर जाय कहीं यदि किसी से मूल्यवान वस्तु*
लोभ से उठाना उसे चाटना है नाक का।''

यहाँ 'नाक का चाटना' घृणा व्यंजक होने के कारण अश्लीलता प्रकट करता है।

शब्द या पद दोषों के माध्यम से यही सूचित होता है कि कविता में सरल, सहज एवं बोध गम्य शब्दों का प्रयोग होना चाहिए।

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष) :

काव्य में शब्दों का अर्थ-ग्रहण ही आनंद एवं प्रभाव उत्पन्न करता है। जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है, वहाँ अर्थ दोष पाए जाते हैं। आचार्य मम्मट ने २३ प्रकार के अर्थ दोषों का उल्लेख किया है। अर्थ समझने में किसी प्रकार के कष्ट नहीं होने चाहिए। अर्थ में परस्पर विरोध नहीं होने चाहिए। अर्थ प्रकटीकरण में नवीनता आनी चाहिए। अर्थ को जान लेने पर चित्त में न तो अमंगल की भावना होनी चाहिए और न उद्वेग भी उत्पन्न होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार किसी पद के मुख्य अर्थ के अनुपकारी होने पर अपुष्ट दोष होता है। जिस पद की अनुपस्थिति पर भी अर्थ को हानि नहीं पहुँचती हो।

उदा. : *''सारे उपवन के विशाल वायुमण्डल में*
प्रेमी प्रीति-संभव के मंगल मनाते हैं।''

इस पद में विशाल विशेषण निरर्थक है; क्योंकि वायु मंडल तो विशाल होता ही है। जहाँ एक ही शब्द और अर्थ की बार-बार आवृत्ति हो, वहाँ पुनरुक्त अर्थ दोष होता है। इससे कवि के शब्द दारिद्र्य का पता चलता है।

उदा. : *''धन्य है कलंक हीन जीना एक क्षण का*
युग-युग जीना सकलंक धीक्कार है।''

स्पष्ट है कि पुनरूक्त अर्थ दोष के कारण कविता वे प्रभाव और आनंद में बाधा उपस्थित हुई है।

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष) :

रस कविता का अनिर्वचनीय आनन्द है, लेकिन जहाँ रसास्वाद में बाधा उत्पन्न हो जाती है - वहाँ विद्वानों ने विविध रस दोषों को स्वीकृत किया है। वैसे देखा जाय तो कविता में रस का स्पष्ट उल्लेख अपने आप में एक दोष है। कई कवियों ने रस के स्थायी, संचारी और व्याभिचारी भावों को स्वयं वर्णित कर रस के स्वाभाविक उद्रेक को बाधित किया है। आचार्य मम्मट ने तेरह प्रकार के रस दोषों की चर्चा की है। स्वशब्द वाच्यता तो सर्वप्रमुख रस दोष है।

उदा. : *''आह कितना सकरूण मुख था,*
आर्द्र सरोज अरुण मुख था।''

इन पंक्तियों में करुण रस का कवि स्वयं उल्लेख करता है।

जहाँ रस स्थायीभाव या व्यभिचारी भाव की पुष्टि उनसे सम्बन्धित भावों का वर्णन किए बिना ही उनके शब्दश: कथन से की जाए, वहाँ रस दोष होता है।

उदा. : *''ज्यों ही चूमा प्रिय ने उसको*
लज्जा मन आयी।''

रसों के पारस्परिक विरोध की एक पंक्ति निम्नलिखित रूप में दृष्टव्य है -

उदा. *''इस पार प्रिये तुम हो मधु है*
उस पार न जाने क्या होगा?''

कुल मिलाकर दोषपूर्ण काव्य निंदा का पात्र होता है। चाहे उसमें शब्द, अर्थ और रस दोष में से कोई भी एक हो। कविता का अपकर्ष करनेवाले दोषों से बचकर ही कोई श्रेष्ठ कवि हो सकता है।

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

(अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1. गद्य और पद्य के मिले-जुले रूप को ..... कहा जाता है।
   (अ) नाटक (ब) एकांकी (क) चंपू काव्य (ड) पद्य
2. ..... में अनेक चंपू काव्य उपलब्ध है।
   (अ) साहित्य दर्पण (ब) काव्यालंकार (क) काव्य प्रकाश (ड) संस्कृत साहित्य
3. मुक्तक काव्य के ..... भेद माने जाते हैं।
   (अ) दो (ब) तीन (क) चार (ड) सात
4. 'रिपोर्ताज' शब्द मूलतः ..... भाषा का है।
   (अ) यात्रा साहित्य (ब) आधुनिक युग (क) फ्रांसीसी (ड) अमरिका
5. आत्मकथा में ..... को प्रधानता होती है।
   (अ) कल्पना (ब) स्व (क) पर (ड) आस्था
6. कविता की आत्मा ..... होती है।
   (अ) रस (ब) शब्द (क) अर्थ (ड) अलंकार
7. अधिकतर विद्वान काव्य में प्रमुख ..... गुण मानते हैं।
   (अ) पाँच (ब) तीन (क) दो (ड) एक
8. ओज गुण मन में ..... उत्पन्न करता है।
   (अ) तेज (ब) निराशा (क) आनंद (ड) क्रोध
9. जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है वहाँ ..... दोष होता है।
   (अ) पद (ब) अर्थ (क) शब्द (ड) श्रुति

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. **योग –** व्युत्पत्ति
2. **तरू –** वृक्ष
3. **संध्या –** शाम
4. **चिरजीवि –** अमर
5. **जोरी –** जोडी
6. **वृषभ –** बैल
7. **नूपुर –** पायल

8. **चारू –** सुंदर
9. **तरू –** वृक्ष, पेड
10. **बिमल –** स्वच्छ, पवित्र
11. **उपवन –** बगिचा
12. **अरूण –** लाल रंग

2.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

(अ) उचित पर्याय.

1. (क)	2. (ड)	3. (ड)	4. (क)	5. (ब)
6. (अ)	7. (ब)	8. (अ)	9. (ब)	

2.7 सारांश :

1. काव्यशास्त्र के अंतर्गत काव्य और साहित्य एक-दूसरे के समानार्थी समझे गए हैं।
2. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य-लक्षणों पर विविधांगों से विचार होता आया है।
3. काव्य एवं साहित्य के प्रकारों एवं भेदों के संदर्भ में मत मतांतर है। अधिकांशत: सर्व सम्मत चर्चा की है।
4. काव्य की अनेक विधाएँ प्राचीन हैं। वस्तुत: संस्कज्ञार, ज्ञान एवं शिक्षा में उनका योगदान सराहनीय है।
5. काव्य-गुण मुख्य रस के धर्म होते हैं। काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।
6. काव्य-दोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं - शब्द दोष, अर्थ दोष, रस दोष।
7. काव्य-सर्जना में शब्द, अर्थ तथा रस आदि कुछ तत्त्व सक्रिय रहते हैं, जिसका उपयोग कवि या उचनाकार करता है।

2.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. कहानी का स्वरूप।
2. नाटक का महत्त्व।
3. प्रबंध काव्य की व्याप्ति।
4. महाकाव्य की विशेषताएँ।
5. काव्य-गुण की विवेचना।
6. माधुर्य गुण।

7. ओज गुण।
8. प्रसाद गुण।
9. काव्य-दोष की विवेचना।
10. पदगत दोष।
11. अर्थगत दोष।
12. रसगत दोष।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

1. ग्रंथों आदि से प्रयुक्त काव्य, साहित्य के प्रकारों का वर्गीकरण कीजिए।
2. विविध कविताओं में माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण ढूँढकर लिखिए।
3. विविध कविताओं में पद्‌गत, अर्थगत, रसगत दोष लिखिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1. काव्यशास्त्र - डॉ. भगीरथ मिश्र
2. काव्यशास्त्र - डॉ. कन्हैयालाल अवस्थी, डॉ. अमित अवस्थी
3. काव्यशास्त्र - डॉ. बालेन्दु तिवारी, डॉ. सुरेश माहेश्वरी
4. साहित्यशास्त्र - डॉ. भरत सगरे
5. हिंदी भाषा और साहित्यशास्त्र - डॉ. माधव सोनटक्के

❑❑❑

इकाई 3

रस : स्वरूप, रस के अंग, रस के भेद

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय – विवेचन

3.3.1 रस : स्वरूप

आचार्य भरतमुनि

आचार्य विश्वनाथ

आचार्य मम्मट

आचार्य रामचंद्र शुक्ल

डॉ. दशरथ ओझा

रस की विशेषताएँ

3.3.2 रस के अंग

स्थायी भाव

विभाव

अनुभाव

संचारी भाव/व्याभिचारी भाव

3.3.3 रस के भेद

श्रृंगार रस

वीर रस

हास्य रस

रौद्र रस

भायानक रस

बीभत्स रस

करूण रस

अद्‌भुत रस

शांत रस

वात्सल्य रस

भक्ति रस

3.4 स्वयंअध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 क्षेत्रीय कार्य

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्‌देश्य :

प्रस्तुत इकाई पढने के पश्चात् आप,

1. रस के महत्त्व से परिचित होंगे।
2. रस की विभिन्न परिभाषाओं से अवगत होंगे।
3. रस के विभिन्न अंगों से परिचित होंगे।
4. रस के विभिन्न भेदों से परिचित होंगे।
5. काव्य में प्रयुक्त रस पहचानने में सक्षम होंगे।

3.2 प्रस्तावना :

'रस' शब्द भारतीय संस्कृति और साहित्य के चरम विकास से संबंधित है। भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में 'रस' शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्त्व के लिए होता है। फलों का रस, औषधि का रस, परमात्मा के भाव से उत्पन्न रस, संगीत द्‌वारा उत्पन्न रस आदि रस के विभिन्न अर्थ दिखाई देते हैं। जीवन के सुव्यवस्थित

निर्माण के लिए रस अनिवार्य है। अत: इससे स्पष्ट होता है कि रस आस्वाद्य तत्त्व और द्रवत्त्व के रूप में दिखाई देता है।

'रस' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत में इस प्रकार दी है, ''रसस्यतेऽ सौ इति रस:'' अर्थात जिससे आस्वाद मिले वही रस है। रस शब्द साहित्य में ही नहीं, बल्कि जीवन के हर पहलुओं में भिन्न-भिन्न अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। संस्कृत काव्यशास्त्र में काव्यानुभूति को 'रस' संज्ञा से अभिहित किया गया है। काव्य का लक्ष्य तथा उद्देश्य पाठक को आनंदानुभूति प्रदान करना है। इस काव्यजन्य आनंद का ही दूसरा नाम रस है। साहित्य में रस को आत्मा की संज्ञा से अभिहित किया है। रस रहित काव्य सफल काव्य नहीं होता। अत: काव्यानंद को ही रस कहा गया है।

3.3 विषय विवेचन :

अब हम रस का स्वरूप, रस की परिभाषाएँ, रस के अंग तथा रस के भेदों का अध्ययन करेंगे। अत: भारतीय साहित्य में रस के स्वरूप पर विविध कोनों से विचार-विमर्श हुआ। उन्होंने अपनी-अपनी दृष्टि से रसांगों पर विवेचन दिया। कई आचार्यों-मनीषियों द्वारा रस पर सम्यक विवेचन मिलता है। निम्नांकित आचार्यो द्वारा दी हुई परिभाषाओं से रस के स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है।

3.3.1 रस का स्वरूप :

आचार्य भरतमुनि :

रस सिद्धांत के प्रवर्तक आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। उन्होंने 'नाट्यशास्त्र' में रस के विभिन्न अवयवों का विवेचन किया है। भरतमुनि के कार्य को भट्ट लोल्लट, शंकुक, भट्ट नायक, अभिनव गुप्त, भोजराज, विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने आगे बढाया। आगे चलकर हिंदी के रीतिकालीन आचार्यों ने भी रस सिद्धांत का महत्त्व स्वीकार किया है। तथा रस को परिभाषित करने का प्रयास किया है। भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में रस की परिभाषा इस प्रकार दी है...

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगा द्रस निष्पत्ति:''

उनके मतानुसार विभाव अनुभाव और व्याभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस रस सूत्र में रस निष्पत्ति के लिए आवश्यक विभाव, अनुभाव और व्याभिचारी भाव इन तीन अंगों का निर्देश किया गया है। भरतमुनि के रस-सूत्र पर काफी विचार-विमर्श हुआ। कई आचार्यों ने भिन्न-भिन्न रूप में इसे परिभाषित करने का प्रयास भी किया है। स्वयं भरतमुनि ने अपने रस-सूत्र की व्याख्या देते हुए लिखा है - ''जिस प्रकार नाना व्यंजनों, औषधियों और द्रव्यों के संयोग से रस (भोज्यरस) की निष्पत्ति होती है, उसी प्रकार नाना भावों के उपरांत वो स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होते हैं।'' अर्थात् विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारी भावों के संयोग से सामाजिक में स्थित स्थायी भावों का उद्रेक होता है और वे ही स्थायी भाव रस रूप को प्राप्त होता है।

आचार्य अभिनव गुप्त:

भरमुनि के रस-सूत्र के व्याख्याता अभिनव गुप्त ने रस को 'विषय' से निकालकर 'विषयी' में समाविष्ट करने का सफल प्रयास किया है। वे रस को 'अस्वाद्य' न मानकर 'आस्वाद्य' मानते हैं। सामाजिक किसी विशिष्ट प्रसंग के साथ एकाकार होकर आत्म-विभोर हो जाता है। यही आनंदमयी चेतना रस है।

आचार्य विश्वनाथ:

अभिनव गुप्त के पश्चात् रस के स्वरूप का सर्वांग विवेचन आचार्य विश्वनाथ ने किया है। वे कहते हैं-

''सत्त्वोद्रेक अखण्ड स्वप्रकाशानन्द चिन्मय:।
वेद्यान्तर स्पर्श शून्यो ब्रह्मास्वाद सहोदर:।
लोकोत्तर चमत्कार प्राण: कैश्चित् प्रमातृभि:।
स्वाकारवदभिन्नत्त्वेनायमास्वाद्यते रस:।''

अर्थात् चित्त में सत्वोद्रेक की स्थिति में विशिष्ट संस्कारों से युक्त सहृदय, अखंड, स्वप्रकाशानंद, चिन्मय, अन्य सभी प्रकार के ज्ञानों से विमुक्त, ब्रह्मानंद सहोदर, लोकोत्तर चमत्कार, प्राण रस के निज स्वरूप से अभिन्न होकर अस्वादन करते हैं।

आचार्य मम्मट :

आचार्य मम्मट के अनुसार, ''विभावादि के संयोग से निष्पन्न होनेवाली आनंदात्मक चित्तवृत्ति ही रस है।''

आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने रस को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''सत्त्वोद्रेक या हृदय की मुक्तावस्था ही 'रस' है।''

डॉ. दशरथ ओझा :

इन्होंने रस की परिभाषा देते हुए लिखा है, ''काव्य के पढने या नाटक के देखने से हमारे हृदय में जो क्रोध, घृणा, प्रेम आदि भाव जगते हैं, उसे 'रस' कहते हैं।''

डॉ. भगीरथ मिश्र :

डॉ. भगीरथ मिश्र के अनुसार, ''रस एक विशेष प्रकार का आनंद है, जो काव्य के मनन, पठन, श्रवण और अभिनय देखने से सामाजिक को प्राप्त होता है।''

उपरोक्त परिभाषओं से स्पष्ट होता है कि, आचार्य मम्मट से लेकर नगेंद्र तक आचार्यों ने रस को इसी रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार 'स्व' पर की भावना से रहित, देश-काल के बंधनों से मुक्त सामाजिक जब एक आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाता है, तब उस स्थिति को रसासक्ति कहते हैं। अर्थात् किसी सामाजिक का किसी विशिष्ट आनंदमयी घटना से आनंदमयी स्थिति में पहुँच जाना तथा अत्म-विभोर होना ही रस है।

रस की विशेषताएँ :

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि, रस आस्वादरूप है। सहृदय सामाजिक जिसका रसन या भोग करता है। रस निर्विघ्न तथा अखंड होता है। रस चिन्मय, स्वप्रकाश और अन्य ज्ञानरहित होता है। रस आस्वादन के समय अन्य किसी प्रकार के ज्ञान का स्पर्श नहीं होता। रस लोकोत्तर चमत्कार प्राण है। रस की स्थिति अपने स्वरूप से भिन्न रूप होती है। काव्य के पठन, श्रवण से तथा नाटक को दृष्य रूप में देखने से सामाजिक रसानंद प्राप्त करता है। अत: रस ब्रह्मानंद सहोदर होता है।

3.3.2 रस के अंग :

''विभावानुभावव्यभिचारीसंयोगाद्रसनिष्पत्ति:'' भरतमुनि के इस रस-सूत्र के अनुसार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। अत: इन्हें ही रस के अंग के रूप में स्वीकार किया गया है। परंतु भरतमुनि के रस सूत्र में रस के केवल तीन ही अंगों का उल्लेख है। इसमें स्थायी भाव का उल्लेख नहीं मिलता है। अत: स्थायी भाव को मिलाकर रस के चार अंग माने जाते हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. स्थायीभाव
2. विभाव
3. अनुभाव
4. व्याभिचारी भाव

रस के इन चार अंगों का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है -

1. स्थायी भाव :

भरतमुनि से लेकर आज तक के आचार्यों द्‌वारा किए गए विचार विमर्श और निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'सहृदय' सामाजिक के हृदय में जन्मजात वासना रूप में वे अनुभूतियाँ हैं, जो स्थायी रूप से विद्‌यमन रहती है। इन अनुभूतियों को वृत्तियाँ भी कहा जाता है। ये वृत्तियाँ और अनुभूतियाँ अन्य अनुभूतियों और वृत्तियों की तुलना में अधिक तीव्र, गतिशील एवं सूक्ष्म होती है। इन्हें मूल वृत्ति, मौलिक मनोवेग या स्थायी भाव भी कहा जाता है।

स्थायी भाव सहृदय के हृदय में उद्‌दिप्त होकर संचारी भाव की सहाय्यता से रस रूप में परिणत होते हैं। इनका विकास धीरे-धीरे होता है और ये सहृदय के हृदय में देर तक अस्तित्व में रहते हैं। स्थायी भाव मानव चित्त की भावना अथवा संस्कार है। स्थायी भाव सहृदय के हृदय में छिपे रहते हैं, जो विभाव और अनुभाव से उद्‌दिप्त होते हैं। स्थायी भावों की अभिव्यक्ति मनोविकारों और भौतिक या शारीरिक प्रतिक्रियाओं के रूप में होती है।

स्थायी भावों की संख्या को लेकर विद्‌वानों में विवाद है। कुछ विद्‌वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या नौ है, तो कुछ विद्‌वानों के अनुसार स्थायी भावों की संख्या ग्यारह है। मूलत: स्थायी भाव नौ ही माने

जाते हैं, लेकिन कुछ विद्वानों के अनुसार वत्सल और भगवत् प्रेम की गनना भी स्थायी भावों में की जाती है। अत: वत्सल और भगवत् प्रेम को जोडकर स्थायी भावों की संख्या ग्यारह मानी जाती है। स्थायी भावों के नामकरण इस प्रकार किये जाते हैं –

1. रति	2. उत्साह	3. हास
4. क्रोध	5. भय	6. जुगुप्सा
7. शोक	8. विस्मय	9. निर्वेद
10. वत्सल	11. भगवत् प्रेम	

सामाजिक में वासना रूप में विद्यमान इन्हीं स्थायी भावों से व्युत्पन्न ग्यारह रस इस प्रकार हैं –

1. श्रृंगार रस	2. वीर रस	3. हास्य रस
4. रौद्र रस	5. भयानक रस	6. बीभत्स रस
7. करूण रस	8. अद्भुत रस	9. शांत रस
10. वात्सल्य रस	11. भक्ति रस	

2. विभाव :

आचार्य भरतमुनि ने अपने 'रससूत्र' में प्रथम विभाव का ही उल्लेख किया है। भरतमुनि के अनुसार विभाव का अर्थ विज्ञान है। वे व्यक्ति या पदार्थ जो भावोत्तेजना के मूल कारण हैं, वे विभाव कहलाते हैं। वाचिक, आंगिक तथा सात्त्विक अभिनय के सहारे चित्तवृत्तियों का विशेष रूप से विभाजन अर्थात् ज्ञापन करनेवाले हेतु कारण अथवा निमित्त को ही विभाव कहा जाता है। विभाव के दो भेद माने जाते हैं –

(अ) आलंबन विभाव
(आ) उद्दीपन विभाव

(अ) आलंबन विभाव :

किसी भी भाव का उद्गम जिस मुख्य भाव या वस्तु के कारण होता है, वह काव्य में आलंबन है। आलंबन विभाव के कारण आश्रम में स्थायी भाव उद्दीप्त हो जाता है, अर्थात् स्थायी भाव जिसके विषय में होता है, उसे आलंबन विभाव कहा जाता है।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता को देखकर सीता के प्रति राम के हृदय में रति स्थायी भाव जागृत होता है। यहाँ सीता आलंबन है, उसी के कारण तथा उसी के प्रति राम का रति स्थायी भाव जागृत होता है।

आलंबन के कारण जिसके हृदय में स्थायी भाव जागृत होता है, वह आश्रय कहलाता है। प्रस्तुत उदाहरण में राम आश्रय है।

(आ) उद्दीपन विभाव :

आलंबन का रूप एवं उसकी चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव कहलाती हैं। आलंबन का रूप और उसके द्वारा की गयी चेष्टाएँ आश्रय के हृदय में उद्बुद्ध स्थायी भाव को इसी प्रकार उद्दीप्त करती हैं, जिस प्रकार लकडियों द्वारा जलाई गयी अग्नी घी डालने से और भी उद्दीप्त हो जाती है।

उदा. उपर्युक्त पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता की मोहक सुंदरता, मधुर वाणी, आकर्षक वेषभूषा, केशभूषा, मुस्कुराना आदि के कारण आश्रय राम के हृदय में वासना रूप में स्थित रति स्थायी भाव अधिक-से-अधिक उद्बुद्ध होता है। तथा रति स्थायी भाव को अधिक उत्तेजित करने में तथा पुष्ट करने में सीता की मोहक सुंदरता तथा सजना-सँवरना सहायक होता है।

आलंबन के संदर्भ में और एक बात कही जा सकती है कि, कुछ स्थायी भावों के आलंबन निश्चित होते हैं, तो कुछ ऐसे हैं जिनका आलंबन देश कालानुसार कोई भी हो सकता है।

3. अनुभाव :

'अनु' का अर्थ है 'पीछे' अर्थात् स्थायी भाव के पश्चात् प्रकट होनेवाले मनोविकार और आश्रय की चेष्टाएँ अनुभाव कहलाती है। अनुभाव स्थायी भाव और विभाव के पश्चात् आश्रय में प्रकट होते हैं। अनुभाव में आश्रय के मानसिक विकार और शारीरिक क्रियाएँ दृष्टिगत होती हैं। अर्थात् जिनसे भावों का अनुभव होता है, वह अनुभाव है। आचार्य विश्वनाथ ने आलंबन उद्दीपन आदि कारण से उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करनेवाले कार्य को अनुभाव कहा है। अनुभाव वाणी तथा अंग संचालन आदि के कारण आश्रय के हृदय में जागृत होते हैं।

उदा. पुष्पवाटिका प्रसंग में राम आश्रय के हृदय में आलंबन सीता के कारण तथा सीता से प्रकट उद्दीपन विभाव के कारण रति स्थायी भाव प्रकट होता है। तथा उत्तरोत्तर उसमें वृद्धि होती है। उसके पश्चात् आश्रय राम के द्वारा जो चेष्टाएँ या कार्य किए जाएँगे, उन्हें ही अनुभाव संज्ञा से अभिहित किया जाता है।

विद्वानों ने अनुभाव के चार भेद माने हैं -

(क) आंगिक अनुभाव, (ख) वाचिक अनुभाव, (ग) आहार्य, (घ) सात्विक

(क) आंगिक अनुभाव :

इसे कायिक अनुभाव भी कहा जाता है। आश्रय की शरीर संबंधी चेष्टाएँ आंगिक या कायिक अनुभाव कहलाती है। इसके अंतर्गत शारीरिक कृत्रिम चेष्टाओं का समावेश किया जाता है, जैसे - कटाक्ष, भृकुटि भंग, पलकों का उठना, गिरना। नायिका के संदर्भ में होंठ काटना, पैरों से जमिन कुरेदना, पल्लू के साथ खेलना आदि शारीरिक अनुभाव आंगिक या कायिक अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

(ख) वाचिक अनुभाव :

वाणी से संबंधित अनुभाव वाचिक अनुभाव कहलाते हैं। आश्रय की वाणी की मृदुता अथवा उग्रता वाचिक अनुभाव कहलाती है।

(ग) आहार्य :

भाव-व्यंजक अनुभाओं में आश्रय की विशिष्ट वेशभूषा और साज-सज्जा आदि को आहार्य अनुभाव के अंतर्गत रखा जाता है।

(घ) सात्त्विक अनुभाव :

सात्विक अनुभाव ही अयत्नज अनुभाव भी कहलाते हैं। इनकी अभिव्यक्ति सहज अर्थात अपने आप होती है। इसके लिए आश्रय को कोई क्रिया करने की आवश्यकता नहीं होती है। इनका उद्रेक सहज ही होता है। इनकी संख्या आठ मानी जाती है।

1. स्तंभ 2. स्वेद 3. रोमांच 4. स्वरभंग
5. कंप 6. वैवर्ण्य 7. अश्रु 8. प्रलय

1. स्तंभ : प्रेम, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण शरीर की गति का रूक जाना स्तंभ कहलाता है।

2. स्वेद : प्रेम, भय, लज्जा आदि के कारण पसीना आना स्वेद कहलाता है।

3. रोमांच : प्रेम, हर्ष, भय आदि के कारण शरीर के रोओं का खडा होना रोमांच कहलाता है।

4. स्वरभंग : प्रेम, शोक, भय आदि के कारण वाणी का अवरूद्ध होना स्वरभंग कहलाता है।

5. कंप : प्रेमाधिक्य, भय व क्रोध के कारण शरीर का कंपित होना कंप कहलाता है।

6. वैवर्ण्य : भय, शोक, शंका आदि के कारण मुखमंडल का कांतिहीन होना वैवर्ण्य कहलाता है।

7. अश्रु : हर्षातिरेक या शोक के कारण आश्रुओं का आना।

8. प्रलय : विरह, दु:ख, शोक, भय, क्रोध आदि के कारण इंद्रियों का चेतनाशून्य होना प्रलय होता है।

4. संचारी भाव तथा व्यभिचारी भाव :

संचारी भाव वे मानोवेग या शारीरिक प्रतिक्रियाएँ हैं, जो स्थायी भावों की पुष्टि के लिए संचरणशील होते हैं। भरतमुनि ने इसे व्यभिचारीभाव की संज्ञा से अभिहित किया है। किसी एक भाव के साथ इनका नियत संबंध न रहने के कारण इन्हें व्यभिचारी भाव कहा जाता है। इनकी प्रवृत्ति चंचल होती है। इनकी संचरणशील अर्थात् घुमते रहने की प्रवृत्ति, इन्हें संचारी कहलाती है।

संचारी भाव आश्रय के हृदय में उद्दीप्त स्थायी भाव के साथ बीच-बीच में प्रकट होकर उस स्थायी भाव को अधिक पुष्ट बनाने में सहायता करते हैं। यह उद्दीप्त होने पर तुरंत लुप्त हो जाते हैं, अर्थात् संचारी भाव क्षणजीवी होते हैं।

उदा. सागर में लहरें उत्पन्न होती हैं और सागर ही में विलीन हो जाती हैं। वैसे ही स्थायी भाव में संचारी भाव उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं। संचारी भाव स्थायी भाव के पोषक होते हैं।

संचारी भावों की संख्या को लेकर मतभेद हैं। इनकी संख्या समयानुरूप परिवर्तित होती है। फिर भी कुछ विद्वान इनकी संख्या तैंतीस मानते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार संचारी भाव निम्नलिखित हैं –

निर्वेद, आवेग, दैन्य, श्रम, मद, जडता, मोह, विबोध, स्वप्न, अपस्मार, गर्व, मरण, आलसता, अमर्ष, हर्ष, अवहित्य, औत्सुक्य, उन्माद, शंका, स्मृति, मति, व्याधि, संत्रास, लज्जा, असूया, ग्लानि, धति, विदा, चिंता, दैन्य, उग्रता, चपलता, वितर्क।

निष्कर्ष :

रस की निष्पत्ति के लिए स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव इन रस के अंगों का परस्पर संयोग होना अनिवार्य प्रक्रिया है। इस संयोगात्मक प्रक्रिया से ही रस की निष्पत्ति अर्थात सहृदय को रस की अनुभूति हो सकती है। उद्दीपन विभाव के कारण आश्रय के हृदय में रस की गति बढ जाती है और संचारी भावों के कार्यान्वित होने से रस अधिक पुष्ट बन जाता है और सामाजिक अधिक – से – अधिक रसानंद प्राप्त कर सकते हैं।

3.3.3 रस के भेद :

रस अखंड होता है। फलत: अखंड वस्तु के भेदोपभेदों की चर्चा करना उचित नहीं है। फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से रस को समझने और समझाने के लिए उसके भेदोपभेदों की चर्चा करना अनिवार्य है। जब हम रस के भेदों की चर्चा करते हैं, तब हमारा तात्पर्य रस भेदों से न होकर स्थायी भावों के भेदों से होता है, जो विभावादि के संयोग से एक नवीन रूप में उपस्थित होते हैं।

जैसे, प्रकाश एक ही होता है, लेकिन उसे समझने के लिए ट्यूब लाईट, बल्ब लाईट, मरक्यूरी लाईट आदि में उसको विभाजित किया जाता है। तथा अन्न (आहारादि) को हलवा, पूरी, सीरा, रोटी, रबडी आदि एक ही अन्न के घटक है। अपितु समझने तथा समझाने के लिए उसे विविध भेदों में विभाजित किया जाता है। रस भी प्रकाश तथा अन्न के समान एक ही है। अपितु उसके अध्ययन तथा अध्यापन के लिए अर्थात् समझने और समझाने के लिए स्थायी भावों के आधार पर विविध भेदों में विभाजित किया जाता है।

*** रसों की संख्या :**

रसों की संख्या या भेदों को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। रस संप्रदाय के प्रवर्तक भरतमुनि ने 'नाट्यशास्त्र' में श्रृंगार, रौद्र, वीर और बीभत्स केवल इन चार रसों का ही प्रमुख रूप से उल्लेख किया है। इन्हीं से क्रमश: हास्य, करूण, अद्भुत और भयानक रसों की उत्पत्ति मानी है। इस प्रकार भरतमुनि ने नाटक में केवल आठ रस माने हैं। काव्य के लिए प्रारंभ में रसों की संख्या नौ मानी गयी थी। श्रृंगार, वीर, करूण, हास्य, अद्भुत, भयानक, बीभत्स, रौद्र और शांत रस। आगे चलकर हिंदी साहित्य की भक्ति काव्यधारा के प्रवाह से सरसित होकर वात्सल्य और भक्ति रस के रूप में प्रतिष्ठित हुए। फिर भी प्रमुखतया शास्त्रीय विधि से मान्य नौ रस ही है। इन नौ रसों के विश्लेषन के साथ हम वात्सल्य और भक्ति रस का भी विवेचन स्थायी भाव के आधार पर करेंगे।

स्थायी भाव के आधार पर रसों का विवेचन इस प्रकार किया जाता है –

	स्थायी भाव	रस
1.	रति	श्रृंगार रस
2.	उत्साह	वीर रस
3.	हास	हास्य रस
4.	क्रोध	रौद्र रस
5.	भय	भयानक रस
6.	जुगुप्सा	बीभत्स रस
7.	शोक	करूण रस
8.	विस्मय	अद्‌भुत रस
9.	निर्वेद	शांत रस
10.	वत्सल	वात्सल्य रस
11.	भगवत् प्रेम	भक्ति रस

स्थायी भावों के आधार पर सर्वमान्य इन ग्यारह रसों का सोदाहरण विवेचन निम्न प्रकार से किया जाता है–

1. श्रृंगार रस :

'श्रृंगार' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है – 'श्रृंग' और 'आर'। 'श्रृंग' का अर्थ है काम और 'आर' का अर्थ होता है – वृद्‌धि, गति या प्राप्ति। अत: श्रृंगार का अर्थ हुआ – कामोद्रेक की प्राप्ति या वृद्‌धि। विभाव अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से परिपक्व आवस्था में पहुँचा हुआ रति स्थायी भाव श्रृंगार रस में परिणत होता है।

श्रृंगार रस को अधिकांश आचार्यों ने 'रस – राजत्व' की उपाधि दी है। इसका प्रमुख कारण है – श्रृंगार भावना की व्यापकता। श्रृंगार का प्रभाव आश्रय पर तुरंत पडता है।

श्रृंगार रस के.....

देवता : विष्णु माने गए हैं।

वर्ण : वर्ण श्याम माना गया है।

स्थायी भाव : रति है।

आलंबन : नायक या नायिका आदि।

उद्‌दीपन : ऋतु – सौंदर्य, चांदनी रात, सरिता तट, उपवन, एकांत स्थान, वियोग में दु:खद बातें आदि हैं।

अनुभाव : देखना, मुस्कुराना, गुनगुनाना, सिमटना, आँखें झुकाना, ओठों का कंपित होना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : औत्सुक्य, हर्ष, लज्जा, जडता, ग्लानि, उन्माद आदि संचारी माने जाते हैं।

श्रृंगार रस के दो भेद होते हैं –

(क) संयोग श्रृंगार
(ख) वियोग श्रृंगार

संयोग श्रृंगार को संभोग श्रृंगार तथा वियोग श्रृंगार को विप्रलंब श्रृंगार भी कहा जाता है।

(क) संयोग (संभोग) श्रृंगार : संयोग श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ नायक और नायिका की मिलन अवस्था का वर्णन होता है। इसमें नायक-नायिका के परस्पर हास-विलास, आलिंगन, स्पर्श, चुंबन आदि का वर्णन होता है। खासकर परस्पर अवलोकन तथा संभाषण को अधिक पसंद किया जाता है। क्योंकि चुंबनादि तो नग्नता की परिभाषा में आ जाते हैं। इसमें नायक या नायिका तथा स्थिति एक-दूसरे के भाव के आलंबन हो सकते हैं। उद्दीपन विभाव बाह्य और आंतरिक दोनों प्रकार के होते हैं।

संयोग श्रृंगार के.....

आश्रय : नायक या नायिका कोई भी हो सकते हैं।

आलंबन : आश्रय की तरह आलंबन भी नायक या नायिका में से कोई भी हो सकता है।

उद्दीपन :

बाह्य विभाव के अंतर्गत – चाँदनी रात, उपवन, सरिता, तट, एकांत स्थान, वसंत, वर्षा आदि ऋतुएँ, सुगंधित पदार्थ आदि आते हैं।

आंतरिक विभाव के अंतर्गत – आंतरिक उद्दीपन विभाव के अंतर्गत आलंबन की शारीरिक बनावट, प्रेम से देखना, मुस्कराना, गुनगुनाना आदि बातें आती हैं।

संचारी भाव : इसके संचारी भावों के अंतर्गत हर्ष, लज्जा, औस्तुक्य आदि आते हैं।

उदा. : 1.

''हाथ लक्ष्मण ने तुरंत बढा दिए
और बोले एक परिरंभन प्रिये।
सिमट – सी सहसा गयी प्रिय की प्रिया
एक तिक्ष्ण अपांग ही उसने दिया।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : लक्ष्मण है।

आलंबन : उर्मिला है।

उद्दीपन : एकांत स्थान, उर्मिला का कटाक्ष आदि।

अनुभाव : सिमटना।

संचारी भाव : लज्जा, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

''ये रेशमी जुल्फे ये शरबती आँखें,
इन्हें देखकर जी रहे हैं सभी।
जो ये आँखें शरम से झुक जाएगी,
सारी बातें यही बस रूक जाएगी,
चुप रहना ये अफसाना,
कोई इनको ना बतलाना।''

(ख) वियोग (विप्रलंब) श्रृंगार : वियोग श्रृंगार वहाँ होता है, जहाँ नायक और नायिका में परस्पर उत्कट प्रेम होने पर भी उनका मिलन नहीं हो पाता है। इसमें रति स्थायी भाव स्वप्न, चित्र, श्रवण आदि के द्वारा व्यक्त होता है। यह संयोग न होने से और भी तीव्र होता है। मिलन के बाद फिर बिछोह के अवसर पर मान, प्रवास आदि विभिन्न दशाओं में प्रकट होता है, वहाँ भी वियोग श्रृंगार होता है। आचार्यों ने वियोग श्रृंगार की दस दशाएँ मानी हैं।

1. अभिलाषा	2. चिंता	3. स्मरण	4. गुणकथन	5. उद्वेग
6. उन्माद	7. प्रलाप	8. व्याधि	9. जडता	10. मरण।

वियोग श्रृंगार के.....

आश्रय : नायक या नायिका दोनों में से कोई एक या दोनों हो सकते हैं।

आलंबन : संयोग श्रृंगार की तरह इसके आलंबन भी यथास्थिति नायक या नायिका हो सकते हैं।

उद्दीपन : उद्दीपन के अंतर्गत दु:खद बातें आ जाती हैं।

अनुभाव : अश्रु बहाना, प्रलय, स्तंभ आदि अनुभाव के अंतर्गत आते हैं।

संचारी भाव : संचारी भावों के अंतर्गत जडता, ग्लानि, उन्माद आदि हैं।

उदा. : 1.

''हा। गुण खानी जानकी सीता। रूप सील व्रत नेम पुनीता
लछिमन समुझाये बहु भाँति। पूछत चले लता तरू पाँती
हे खग मृग हे मधुकर सेनी। तुम देखी सीता मृग-नैनी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : आश्रय राम है (सीता के रावन द्वारा हरण के पश्चात् राम की आवस्था का चित्रण)

आलंबन : आलंबन सीता है।

उद्दीपन : उद्दीपन शून्य है।

अनुभाव : सीता का गुण-कथन, सीता के लिए विलाप, पशु-पंछी, पेडों से सीता का पता पूछना आदि।

संचारी तथा व्याभिचारी : उन्माद, आवेग, चिंता, व्याधि आदि।

उदा. : 2.

''याद तेरी आयेगी,
मुझको बडा सतायेगी,
जीद ये झूठी तेरी मेरी जान लेके जायेगी।
तेरा साथ छुटा, टूटा दिल तो ये जाना,
कितना है मुश्किल, दिल से यार को भूलाना,
दिल का हमेशा से है, दुश्मन जमाना,
गम ये है, तूने मुझे ना पहचाना।''

2. वीर रस :

सहृदय सामाजिकों के हृदय में वासना रूप में विद्यमान उत्साह स्थायी भाव काव्यादि में वर्णित विभावानुभाव और संचारी भावों के संयोग से उद्बुद्ध होकर रसावस्था में पहुँच कर आस्वाद योग्य बन जाता है, तब वह वीर रस कहलाता है।

वीर रस का....

स्थायी भाव : उत्साह है।

देवता : इंद्र है।

वर्ण : स्वर्ण के समान माना गया है।

आलंबन : नायक, शत्रु, याचक या दीन, तीर्थ-स्थान, ऐश्वर्य, साहसिक कार्य, यश आदि हैं।

उद्दीपन : शत्रु का प्रभाव, शक्ति, अहंकार, याचक या दीन की दशा, उनके द्वारा की गई प्रशंसा, चेष्टा, प्रदर्शन, ललकार आदि हैं।

अनुभाव : रोमांच, आँखों का लाल होना, शत्रुओं के अंगों का संचलन सैन्य का संगठन आदि हैं।

संचारी भाव : गर्व, उग्रता, धैर्य, तर्क, असूया, दया, आवेग, चपलता, हर्ष, क्षमा आदि है।

वीर रस के चार भेद माने गए हैं....

1. युद्धवीर 2. दयावीर 3. धर्मवीर 4. दानवीर

उदा. : 1.

''कायर तुम दोनों ने ही उत्पात मचाया
अरे समझकर जिनकों अपना था अपनाया
तो फिर आओ देखो कैसे होती है बलि
रण गह यज्ञ पुरोहिन ओ किलात ओ आकुली।''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : मनु है।

आलंबन : किलात तथा अकुली है।

उद्दीपन : किलात तथा अकुली द्वारा उत्पात मचाना।

अनुभाव : मनु का ललकारना, युद्ध करना।

संचारी भाव : गर्व, आवेग, चपलता आदि।

उदा. : 2.

''यह चूके हैं सितम हम बहुत गैरों के,
अब करेंगे हर एक वार का सामना,
झूक सकेगा ना अब सरफरोशों का सर,
चाहे हो खूनी तलवार का सामना,
सर पे बांधे कफन हम तो हँसते हुए,
मौत को भी गले से लगा जाएँगे।

3. हास्य रस :

रूप, आकार, वाणी, वेश और कार्य आदि के विकृत हो जाने से हास्य की उत्पत्ति होती है।

हास्य रस का स्थायी भाव : हास है।

इसके देवता : प्रथम शंकर के गण माने जाते हैं।

इस रस का वर्ण : स्वेत है।

आश्रय : हास्य रस का आश्रय व्यक्ति विशेष न होकर प्राय: श्रोता, पाठक, दर्शक सभी हो जाते हैं।

आलंबन : विकृत रूप, आकार, वेशभूषा, विचित्र अनर्गल वचन, विलक्षण चेष्टाएँ, व्यंग्य, मूर्खता के कार्य, निर्लज्जता आदि।

उद्दीपन : हास्यजनक वस्तु या व्यक्ति की चेष्टाएँ, विचित्र अंग भंगिमा, क्रिया कलाप आदि।

अनुभाव : आँखें और मुख का विकसित होना, खिलखिलाना, व्यंग्य वाक्य कहना, ओठ, नासिका और कपोल का स्फुरित होना, नेत्र बंद होना, मुख पर प्रसन्नताजनक दीप्ति आदि।

संचारी भाव : रोमांच, कंप, हर्ष, स्वेद, चंचलता, आलस्य, निद्रा, चलपता, गर्व आदि।

भावों के आधार पर हास्य के छः भेद माने गए हैं.....

1. स्मित 2. हसित 3. विहसित
4. अवहासित 5. अपहसित 6. अतिहसित

उदा. : 1.

''मगर एक 'इंटर' में देखा तो एक,
चढा कोई साहब का रचा करके भेख।
बदन परथी 'पॉलिश' वे जापान की,
औ पतलुन 'गुधडी' के बाजार की।
शक्ल और सूरत की क्या बात थी,
उसे देख भैस की माँ मात थी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : दर्शक तथा पाठक है।

आलंबन : विचित्र पोशाख पहना हुआ आदमी।

उद्दीपन : बदन पर जापान की पॉलिश, गुधडी की पतलुन, भैस से भी बद्तर शक्ल-सूरत।

अनुभाव : खिलखिलाना, हाथ दिखाना, आँखों से पानी आना, आँखों का फैल जाना, कपोल आरक्त होना आदि।

संचारी भाव : चपलता, चंचलता, कंपन, आवेग, हर्ष आदि।

उदा. : 2.

''एक दिन दादाजी को
याद आयी अपनी जवानी
दादी से बोले ए मेरे दिलबर जानी
कल हम पुराने दिनों की तरह जिएँगे
गुलाब लेकर तुम्हारा नदिया के किनारे इंतजार करेंगे

अगले दिन दादाजी ने शाम तक किया इंतजार
पर ना आयी जश्न-ए-बहार
दादाजी झल्लाएँ
तुम कैसी प्रेमिका हो आयी नहीं
दिन भर इंतजार करके
मेरे घुटने का बज गया बाजा
दादीजी शरमाकर बोली
क्या करूँ, माँ ने आने नहीं दिया मेरे राजा।''

4. रौद्र रस :

शत्रु की अपमानजनित चेष्टाओं से तथा गुरू-निंदा, देश-धर्म का अपकार और अपमान होने पर सामाजिक में वासना रूप में क्रोध स्थायी भाव जाग्रत होता है। विभावानुभाव तथा संचारी भावों के उद्दीपन से रौद्र रस का उदय होता है।

देवता : रूद्र माने जाते हैं।

वर्ण : रक्त के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : क्रोध है।

आलंबन : शत्रु, अनुचित बात कहनेवाला, अपराधी, देशद्रोही, समाज द्रोही, दुराचारी व्यक्ति आदि।

उद्दीपन : अपमान और निंदा से भरे वचन, विरोधी दल द्वारा किए अनुचित कार्य, आँखें दिखाना, चिढाना आदि।

अनुभाव : गर्व आवेग, चपलता, अमर्ष, कंप, उग्रता आदि।

उदा. : 1.

''सुनता लखन के वचन कठोरा। परशु सुधारि धेरउ कर धारा।
अब जनि देउ दोष मोहि लोगू। कटुवादी बालक वध जोगू।
राम वचन सुनि कघुक जुडाने। कहि कघु लखन बहुरि मुस्काने।
हँसत देख नख-शिख रिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड पापी।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : परशुराम है।

आलंबन : लक्ष्मण है।

उद्दीपन : लक्ष्मण के कठोर वचन तथा मुस्कुराना।

अनुभाव : परशु हाथ में लेना, लक्ष्मण को पापी कहना, वध करने की बात कहना।

संचारी भाव : व्यग्रता, चपलता, आवेग आदि।

उदा. : 2.

''साक्षी रहे संसार, करता हूँ प्रतिज्ञा पार्थ मैं।
पूरा करूंगा कार्य सब, कथनानुसार यथार्थ मैं।
जो एक बालक को कपट से मार हँसते हैं अभी।
वे शत्रु सत्वर शोक-सागर मग्न दिखेंगे सभी।''

5. भयानक रस :

भयानक, अनिष्ठकारी दृष्य देखने, सुनने या स्मरण करने से सामाजिक में वासना रूप में स्थित 'भय' स्थायी भाव आलंबन, उद्दीपन के कारण उद्बुद्ध होकर संचारी भावों की मदद से तीव्र होता है। सामाजिक रसासक्त होकर 'भयानक रस' की परिणति होती है।

इस रस के.....

देवता : भूत-पिशाच तथा कालदेव माने जाते हैं।

रंग : भयानक रस का वर्ण कृष्ण माना गया है।

स्थायी भाव : भय है।

आलंबन : भयानक व्यक्ति या वस्तु, सिंह, व्याघ्र, हिंसक जंतु, सर्प, आग, नदी की बाढ, भूत, प्रेत की आशंका, एकांत भयानक स्थान, श्मशान, निर्जन स्थान आदि।

उद्दीपन : आलंबन की भयानक चेष्टाएँ और व्यवहार, निर्जनता, उग्र ध्वनि, सिंह की दहाड, व्याघ्र की गर्जना, अकेलापन, सर्प का रेंगना या जीभ निकालना, सागर की उँची लहरें, नदी का तीव्र बहाव, आग से निकलेनवाली लपटे, अनिष्ठ की आशंका आदि हैं।

अनुभाव : काँपना, पसीना आ जाना, रोमांचित हो जाना, आँखें और स्वर का विकृत हो जाना, मुख-मंडल का रंग उड जाना, भागने का उपक्रम करना, मूर्छित हो जाना, गिडगिडाना, चिल्लाना आदि।

संचारी भाव : शंका, मोह, दैन्य, आवेग, चिंता, त्रास, चपलता, मरण, जुगुप्सा आदि इसके स्थायी भाव को पुष्ट करते हैं।

उदा. : 1.

''एक ओर अजगरहि लखि, एक ओर मृगराइ।
विकल बटोही बीच ही, परयौ मूर्च्छा खाई।।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : बटोही (प्रवाशी) है।

आलंबन : अजगर और शेर है।

स्थायी भाव : भय है।

उद्दीपन : अजगर का जिव्हा निकालना, शेर का दहाडना (काव्य में नहीं है) आदि हैं।

अनुभाव : बटोही का मूर्च्छित होना।

संचारी भाव : कंपन, चिंता, दैन्य, आवेग, त्रास आदि।

उदा. : 2.

''झहरात भहरात दावानल आयौ।
घेरि बहुँ ओर करि सोर अन्दोर
उद्यान धरनि आकास चहुँ पास छावै।''

6. बीभत्स रस :

घृणित वस्तुओं को देखकर अथवा उनका वर्णन सुनकर सामाजिकों में वासनागत रूप में विद्यमान 'जुगुप्सा' स्थायी भाव उद्भुत होता है, जो संबंधित विभावानुभावों के संयोग से परिपक्व आवस्था में पहुँचकर तथा संचारी भावों के संचरण से पुष्ट होकर 'बीभत्स रस' में परिणत हो जाता है।

बीभत्स रस के....

देवता : महाकाल माने जाते हैं।

वर्ण : नीला है।

स्थायी भाव : जुगुप्सा है।

आलंबन : घृणोत्पादक प्राणी या पदार्थ, रक्त, मांस, श्मशान, मैली-कुचैली दुर्गंधयुक्त वेशभूषा, सडी-गली तथा दुर्गंधयुक्त वस्तुएँ आदि आलंबन हैं (स्थान : मछली बाजार, कसाई खाना, श्मशान घाट आदि)

उद्दीपन : घृणोत्पादक वस्तुओं में कीडे पडना, किडों का कुलबुलाना, मक्खियों का भिनभिनाना, सडते मांस-पिंडों को गिद्ध, कौओं, कुत्तों आदि द्वारा नोचना-खसोटना, घृणोत्पादक वस्तुओं की चर्चा आदि।

अनुभाव : मुँह फेरना, नाक सिकोडना, थूँकना, छी-छी करना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, आवेग, जडता, चिंता, व्याधि, अपस्मार आदि संचारी कहलाते हैं।

उदा. : 1.

''सिर पै बैठ्यो काग आँख दोउ खात निकारत,
खींचत जीभहि सियार अतिहि आनन्द उरधारत।

गिद्ध जांघ को खोदि खोदि कै मांस उपारत,
श्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खात विदारत।
बहु चील नोचि लै जात तुच मोद भरयो सबको हियो,
मनु ब्रह्म भोज जिजमान कोउ आज भिखारिन दियो।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : राजा हरिश्चंद्र, श्रोता या पाठक हैं।

आलंबन : श्मशान का दृष्य, मरे हुए जानवर को जानवरों या पंछियों द्वारा नोच-नोचकर खाने का दृष्य।

स्थायी भाव : जुगुप्सा है।

उद्दीपन : काक, गिद्ध, चील आदि पंछियों तथा कुत्ते और सियार द्वारा मांस नोचना, उखाडना, खाना आदि।

अनुभाव : मितलाना, थूँकना, नाक सिकोडना आदि।

संचारी भाव : मोह, स्मृति, ग्लानी आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

''कई कब्रों उठ बैठी हैं लाशें
भभकती गंध ये आई वो आई
भटकते श्वान आवारा कई जो
जुबां भुस-काटने को लपलपाई।''

7. करूण रस :

करूण रस अत्यंत प्रभावशाली है। इसमें सभी को द्रवित करने की क्षमता होती है। भवभूति ने इसे एकमात्र रस माना है। किसी आत्मीय तथा प्रिय व्यक्ति के साथ कुछ बुरा घटित होने पर या उसकी मृत्यु होने पर सामाजिको में वासना रूप में विद्यमान शोक स्थायी भाव विभाव तथा अनुभाव के संयोग से उद्दीप्त होकर संचारी भावों के योग से पुष्ट होता है और करूण रस की परिणति होती है।

करुण रस के.....

देवता : यमराज माने जाते हैं।

वर्ण : कपोत के समान माना जाता है।

स्थायी भाव : शोक है।

आलंबन : प्रिय व्यक्ति, प्राणी या वस्तु का अनिष्ठ, हानि या विनाश, वियोग आदि।

उद्दीपन : प्रिय का वियोग, उसके गुण का कथन तथा स्मरण, प्रियजन का शव दर्शन, चित्र का दर्शन, प्रिय के गुणों का श्रवण आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : रूदन, उच्छवास, प्रलाप, भूमि पतन, मूर्च्छा, कंप, दैव निंदा, शरीर का शिथिल होना, छाती पीटना आदि अनुभाव हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, मोह, स्मृति, चिंता, विषाद, अन्माद, दैन्य, व्याध, मरण आदि संचारी हैं।

उदा. : 1.

''पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक
मुट्ठी भर दाने को... भूख मिटाने को
मुह फटी पुरानी झोली को फैलाए...
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : पाठक, श्रोता तथा दर्शक है ।

आलंबन : दैन्य आवस्था में भीख माँगता भिखारी है।

उद्दीपन : भूख के कारण पीठ से चीपका हुआ पेट, फटी-पुरानी झोली, भिखारी का करूण चेहरा, उसकी करुणिक पुकार आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : उच्छवास, दैव निंदा, दया, कंप आदि अनुभाव पाए जाते हैं।

संचारी भाव : निर्वेद, ग्लानि, दैन्य, चिंता, व्याधि, विषाद आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए
बायें से वे मलते हुए पेट को चलते
और दाहिना दया दृष्टि पाने की ओर बढाये
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता भाग्य विधाता से क्या पाते?
घूँट ऑसुगों के पीकर रह जाते।''

8. अद्‌भुत रस :

वस्तु-वैचित्र्य को देखकर सामाजिकों में वासना रूप में स्थित विस्मय स्थायी भाव उत्पन्न होता है। विभाव और आनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों से पुष्टि पाकर आश्चर्य के संसार से अद्‌भुत रस का उदय होता है। आश्चर्यजनक व्यक्तियों, वस्तुओं, विचित्र दृश्यों एवं अलौकिक वस्तु या घटना के द्‌वारा अद्‌भुत रस की उत्पत्ति होती है।

इस रस के....

देवता : गंधर्व माने जाते हैं।

वर्ण : अद्‌भुत रस का वर्ण पीत है।

स्थायी भाव : विस्मय है।

आलंबन : अलौकिक व्यक्ति, वस्तु या घटना, विचित्र दृश्य, आकस्मिक मनोरथ सिद्‌धि आदि आलंबन माने गए हैं।

उद्‌दीपन : अलौकिक के गुणों का श्रवण, अलौकिक के विभिन्न रूप, आश्चर्यजनक वस्तु का विवेचन आदि इसके उद्‌दीपन के अंतर्गत आते हैं।

अनुभाव : रोमांच, स्तब्ध होना, अवाक् हो जाना, स्तंभ, स्वेद, दाँतों तले अंगुली दबाना, नेत्र विस्फारण आदि अनुभाव माने जाते हैं।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, प्रलाप, वितर्क, आवेग, स्मृति, संभ्रम आदि संचारी भाव माने जाते हैं।

उदा. : 1.

''अंबर तो अंबार अमर कियो बंसीधर।
भिष्म, करण, द्रोण शोभार्य निहारी है।
सारी मध्य नारी है कि नारी मध्य सारी है।
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।''

प्रस्तुत उदाहरण में :

आश्रय : भिष्म, करण, द्रोण तथा अन्य दरबारी हैं।

आलंबन : सारियों के अंबार आलंबन प्रतीत होता है।

उद्‌दीपन : निरंतर बढते सारियों के अंबार।

अनुभाव : शोभा निहारना, भ्रमित होना, आश्चर्य चकित होना, विस्मित होना आदि।

संचारी भाव : भ्रम, हर्ष, औत्सुक्य, चंचलता, आवेग, भ्रम आदि संचारी भाव परिलक्षित होते हैं।

उदा. : 2.

''क्षण मार दिया कर कोडे से
रण किया उतरकर घोडे से।
राणा रण-कौशल दिखा दिया
चढ गया उतरकर घोडे से।''

9. शांत रस :

ये रस उदात्त वृत्तियों का प्रेरक है। श्रृंगार, वीर और शांत रसों में से महाकाव्य में प्रधान या अंगी रस के रूप में प्रतिष्ठित होना आवश्यक होता है। अत: श्रृंगार, वीर रसों के साथ ही शांत रस की गणना भी प्रधान रसों में की जाती है। संसार की असारता और क्षणभंगुरता के वशिभूत सामाजिक में स्थित वासना रूप में विद्यमान निर्वेद स्थायी भाव विभावानुभाव के संयोग से उद्यपित होता है और संचारी भावों की मदद से पुष्ट होकर शांत रस में परिणत होता है।

इस रस के.....

देवता : विष्णु माने जाते हैं।

वर्ण : कुंदन पुष्प व चंद्रमा के समान शुक्ल माना जाता है।

स्थायी भाव : निर्वेद है।

आलंबन : संसार की असारता और क्षणभंगुरता, ज्ञात संसार का परम चिंतन आदि है।

उद्दीपन : सत्संग, तीर्थस्थान, मृतक, साधु-संतों के आश्रम, सिद्ध महात्माओं का दर्शन एवं सत्संग शास्त्र परिशीलन आदि।

अनुभाव : रोमांच, अश्रु, पश्चात्ताप, ग्लानि, संन्यास ग्रहण, गृहत्याग, संसार की असारता का बखान आदि।

संचारी भाव : निर्वेद, हर्ष, स्मरण, बोध, मति, धृति आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 1.

''जीव जहाँ खत्म हो जाता
उठते - गिरते
जीवन - पथ पर
चलते - चलते
पथिक पहुँचकर

इसी जीवन के चौराहे पर
क्षणभर रूककर
सूनी दृष्टि डाल सम्मुख जब पीछे
अपने नयन घुमाता
जीवन वहाँ खत्म हो जाता।''

प्रस्तुत उदाहरण में.....

आश्रय : कवि का हृदय है।

आलंबन : पथिक का जीवन है।

उद्दीपन : जीवन पथ, चौराहा, सूनी दृष्टि आदि उद्दीपन हैं।

अनुभाव : चलते - चलते रूकना, पीछे मुड-मुडकर देखना अनुभाव हैं ।

संचारी भाव : जीवन की क्षणभंगुरता का ज्ञान, दृष्टि में सूनापन, मृत्यु बोध आदि संचारी भाव हैं।

उदा. : 2.

''भाग रहा हू भार देख,
तू मेरी ओर निहार देख,
मैं त्याग चला निस्सार देख,
अटकेगा मेरा कौन काम,
ओ क्षणभंगुर भव राम राम।''

10. वात्सल्य रस :

संस्कृत के अधिकांश आचार्यों ने इसे अलग रस न मानकर श्रृंगार के भीतर ही परिगणित किया है। लेकिन भोज, भानुदत्त, विश्वनाथ इसे स्वतंत्र रस मानते हैं। ''बालक या पशु पंछियों के बच्चों का उछलना, कुदना देखकर बुजुर्ग तथा बडे सामाजिकों में वासनागत् वत्सल स्थायी भाव विभाव, अनुभाव के संयोग से तथा संचारी भावों के पुष्ट होने से वात्सल्य रस उद्बुद्ध होता है।'' बच्चों की तुतली बोली, घर के आँगन में उनके द्वारा भरी किलकारियाँ, अबोधजन्य कार्य वात्सल्य रस के उत्पादक कारण हैं। इस रस को नौ रसों में स्थान न होने के कारण इसके कोई देवता या वर्ण विद्वानों ने निश्चित नहीं किया हैं।

इस रस का....

स्थायी भाव : वत्सल है।

आलंबन : बालक या शिशु, पालतु पशु-पंछियों के छोटे बच्चे हैं।

उद्दीपन : बच्चे की भोली-भाली चेष्टाएँ, तुतली बोली, अबोध जिज्ञासाएँ, घुटनों के बल चलना, रेंगना, हठ करना, किलकारियाँ भरना, खेलना, कूदना, गिर पडना आदि।

अनुभाव : आलिंगन, अंग स्पर्श, सिर चूमना, निहारना, हँसना, पुलकित होना, झुलाना आदि।

संचारी भाव : हर्ष, औत्सुक्य, मति, विषाद, चिंता, जडता, शंका, मोह आदि।

उदा. : 1.

''जसोदा हरि पालने झुलावे।
हालरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।।
मेरे लाल की आउ निंदरिया काहे न आति सुलावै।
तू काहे न बेगी सो आवै ताको कान्ह बुलावै।।''

प्रस्तुत उदाहरण में .....

आश्रय : यशोदा है।

आलंबन : कृष्ण का बाल रूप है।

उद्दीपन : बाल कृष्ण की क्रियाएँ आदि हैं।

अनुभाव : यशोदा का हिलना, मल्हाना, गाना आदि है।

संचारी भाव : शंका, हर्ष, चंचलता, चपलता आदि है।

उदा. : 2.

''चलत देखि जसुमति सुख पावै।
ठुमकी-ठुमकी पग धरनि रेंगत, जननी देखि दिखावै।
देहरि लौ चलि जात, बहुरि फिरि-फिरि इतहिं कौ आवै।
गिरि-गिरि परत, बनत नहिं लाँघत सुर-मुनि सोच करावै।

11. भक्ति रस :

पंडित जगन्नाथ ने भक्ति रस को स्वतंत्र रस माना है। भक्ति का स्थायी भाव देवादिविषयक रति है। भक्त के हृदय में स्थित तन्मयता रसोत्कर्ष के लिए अपेक्षित होती है। वात्सल्य रस की तरह इस रस का अंतर्भाव भी नौ रसों में नहीं किया जाता। अत: इसके भी देवता और वर्ण निश्चित नहीं किये हैं।

इस रस का.....

स्थायी भाव : देवरति या भगवत् प्रेम है।

आलंबन : ईश्वर या उसका कोई रूप आदि हैं।

उद्दीपन : पुराणादि का श्रवण है।

अनुभाव : रोमांच, अनन्यासक्तिजनित अश्रु आदि हैं।

संचारी भाव : हर्ष, दैन्य आदि हैं।

उदा. : 1.

''तू दयालू दीन हौं तू दानी हौं भिखारी।
हौ प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी।।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो।
मों समानआरत नहिं आरति हर तोसो।।''

प्रस्तुत उदाहरण में.....

आश्रय : ईश्वर के प्रति अनुराग है।

आलंबन : राम या ईश्वर है।

उद्दीपन : ईश्वर की दानशीलता, दयालुता, करूणा आदि हैं।

अनुभाव : गुण कथन, विनय आदि हैं।

संचारी भाव : दैन्य, हर्ष, गर्व आदि हैं।

उदा. : 2.

''बसौ मोरे नैनन में नंदलाल।
मोहिनी मूरति साँवरी सूरति नैना बने बिसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भक्तवत्सल गोपाल ।''

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

1. श्रृंगार रस को ..... की उपाधि दी गयी है।
   1. रस राज 2. रस शिरोमणी 3. उत्कृष्ट रस 4. दीव्य रस
2. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में ..... रसांगों की गणना की है।
   1. चार 2. तीन 3. दोन 4. पाँच
3. रस शब्द का प्रयोग ..... तत्त्व के रूप में माना जाता है।
   1. गौण तत्त्व 2. न्यून तत्त्व 3. सर्वोत्कृष्ठ तत्त्व 4. प्राण तत्त्व

4. रस सिद्धांत के प्रवर्तक ..... माने जाते हैं।
   1. आचार्य दंडी 2. आचार्य वामन 3. भवभूति 4. आचार्य भरतमुनि

5. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में रस के चार अंगों में से ..... अंग का उल्लेख नहीं किया।
   1. विभाव 2. अनुभाव 3. व्याभिचारी भाव 4. स्थायी भाव

6. विद्वानों ने स्थायी भावों की संख्या ..... मानी हैं।
   1. चार 2. पाँच 3. आठ 4. नौ

7. बीभत्स रस का स्थायी भाव ..... है।
   1. निर्वेद 2. जुगुप्सा 3. शोक 4. वत्सल

8. भरतमुनि के अनुसार 'विभाव' शब्द का अर्थ ..... है।
   1. भाव रहित 2. उत्तेजक 3. विज्ञान 4. शास्त्र

9. विद्वानों ने अनुभाव के ..... भेद माने हैं।
   1. चार 2. पाँच 3. तीन 4. सात

10. संचारी भावों को भरतमुनि ने ..... नाम से अभिहित किया है।
    1. अलौकिक भाव 2. सहज भाव 3. व्यभिचारी भाव 4. अनुभाव

11. संचारी भावों की संख्या ..... मानी जाती हैं।
    1. तेईस 2. तेरा 3. तैंतीस 4. तैंतालीस

12. श्रृंगार रस का स्थायी भाव ..... है।
    1. उत्साह 2. हास 3. भय 4. रति

13. वीर रस के देवता ..... माने जाते हैं।
    1. इंद्र 2. शिव 3. राम 4. कृष्ण

14. हास्य रस का वर्ण ..... माना जाता है।
    1. श्याम 2. भूरा 3. स्वेत 4. नीला

15. गुरू-निंदा सुनने पर ..... रस का उदय होता है।
    1. वीर 2. करूण 3. भयानक 4. रौद्र

16. भवभूति ने ..... रस को एकमात्र रस माना है।
    1. श्रृंगार 2. वीर 3. करूण 4. शांत

17. वात्सल्य रस का स्थायी भाव ..... है।
    1. रति 2. वत्सल 3. उत्साह 4. हास्य

18. भक्ति रस का स्थायी भाव ..... है।

1. भगवत् प्रेम 2. रति 3. जुगुप्सा 4. निर्वेद

19. शांत रस का स्थायी भाव ..... है।

1. वत्सल 2. हास 3. निर्वेद 4. उत्साह

20. विस्मय ..... रस का स्थायी भाव है।

1. रौद्र 2. करूण 3. अद्‌भुत 4. श्रृंगार

लघुत्तरी प्रश्न :

1. वीर रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
2. श्रृंगार रस के लक्षणों को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
3. बीभत्स रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. शांत रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. 'विभाव' का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरी प्रश्न :

1. रस के अंगों का सामान्य परिचय दीजिए।
2. रस के भेदों का विवेचन कीजिए।
3. श्रृंगार रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
4. वात्सल्य रस और भक्ति रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।
5. वीर रस और रौद्र रस का सोदाहरण विवेचन कीजिए।

3.5 पारिभाषिक शब्दावली :

1. **चिन्मय –** चेतना रूप।
2. **अभिव्यक्त करना –** प्रकट करना।
3. **सानुराग अवलोकन –** प्रेमपूर्वक देखना।
4. **परिगणित करना –** गिनना, समाविष्ट करना।
5. **सहृदय सामाजिक –** पाठक, वाचक, श्रोता या दर्शक।
6. **निष्पन्न होना –** अभिव्यक्त होना, परिणत होना।
7. **विभावन करना –** उद्‌बोधित करना, आस्वाद योग्य बनाना।
8. **आलंबन विभाव –** स्थायी भाव के प्रकट होने का मुख्य कारण।

9. **उद्दीपन विभाव –** भावों को उद्दीप्त या उत्तेजित करने वाले कारण।

10. **विवेचन –** स्पष्टीकरण।

11. **पुष्प वाटिका –** फूलों का बगीचा।

3.6 स्वयंअध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. (1)	2. (2)	3. (3)	4. (4)	5. (4)
6. (4)	7. (2)	8. (3)	9. (1)	10. (3)
11. (3)	12. (4)	13. (1)	14. (3)	15. (4)
16. (3)	17. (2)	18. (1)	19. (3)	20. (3)

3.7 सारांश :

1. भरतमुनि ने रस तथा रस के स्वरूप पर सर्वप्रथम विचार किया। अपने 'नाट्यशास्त्र' ग्रंथ में उन्होंने न केवल रस का परिचय दिया, अपितु रस को परिभाषित कर रस के अंगों का भी परिचय दिया है। आचार्य भरतमुनि के पश्चात् आचार्य अभिनव गुप्त, आचार्य विश्वनाथ, आचार्य मम्मट, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. दशरथ ओझा तथा डॉ. भगीरथ मिश्र आदि परवर्ती आचार्यों ने रस को परिभाषित करने का प्रयास किया।

2. भरतमुनि ने अपने 'रस-सूत्र' में विभाव, अनुभाव व व्याभिचारी या संचारी भावों का ही उल्लेख किया है। उन्होंने स्थायी भाव को अपने 'रस-सूत्र' में स्थान नहीं दिया है। अत: स्थायी भाव को जोडकर रस के चार अंग माने जाते हैं।

3. रस की संख्या को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। सामाजिक में वासनागत रूप में नौ स्थायी भाव माने जाते हैं। अत: इसी के आधार पर रसों की संख्या भी नौ ही मानी जाती हैं। भरतमुनि ने शांत रस छोडकर बाकी आठ रसों को मान्यता दी है। तो उद्भट ने उनमें शांत रस को जोडकर रसों की संख्या नौ बना दी है। आचार्य विश्वनाथ ने इसमें और एक रस 'वात्सल्य' का समावेश किया, तो भक्ति के प्रभाव के कारण 'भक्तिरस' भी इन रसों में समाविष्ठ किया गया। अत: रसों की कुल संख्या ग्यारह मानी गयी। रसों के ये भेद सर्वसम्मत हैं।

3.8 क्षेत्रीय कार्य :

1. निराला की कविताओं में प्रयुक्त रसों को पहचानिए।
2. पुराने हिंदी फिल्मी गीतों में रसों की खोज कीजिए।
3. सूर तथा तुलसी के काव्य में वात्सल्य तथा भक्तिरस का आस्वादन कीजिए।
4. कुरुक्षेत्र तथा साकेत महाकाव्य में वीर रस तथा श्रृंगार रस की खोज कीजिए।

3.9 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1.	पाश्चात्य साहित्य सिद्धांत और विविध वाद	:	डॉ. ज्ञा. का. गायकवाड
2.	काव्यशास्त्र	:	डॉ. भगीरथ मिश्र
3.	काव्यशास्त्र	:	शंभुनाथ पांडेय
4.	भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा	:	नगेंद्र
5.	भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिमान	:	जगदीश प्रसाद कौशिक
6.	भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत	:	कृष्णदेव धारी
7.	भारतीय एवं पाश्चात्त्य काव्य सिद्धांत	:	गणपति चंद्र गुप्त

❑❑❑

इकाई 4

अलंकार (शब्दालंकार, अर्थालंकार)

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय – विवेचन

4.3.1 अलंकार

4.3.1.1 अलंकार : स्वरूप एवं परिभाषाएँ

4.3.1.2 अलंकार : महत्त्व

4.3.1.3 अलंकार के भेद

4.3.1.3.1 शब्दालंकार

4.3.1.3.1.1 अनुप्रास

4.3.1.3.1.2 वक्रोक्ति

4.3.1.3.1.3 यमक

4.3.1.3.1.4 वीप्सा

4.3.1.3.2 अर्थालंकार

4.3.1.3.1.1 उपमा

4.3.1.3.1.2 रूपक

4.3.1.3.1.3 अतिशयोक्ति

4.3.1.3.1.4 विभावना

4.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :–

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप,

1. अलंकारों के स्वरूप से परिचित होंगे।
2. अलंकारों के भेदों से अवगत होंगे।
3. शब्दालंकार और अर्थालंकार के बीच का अंतर समझने की क्षमता प्राप्त करेंगे।
4. हिंदी के प्रमुख अलंकारों से परिचित होंगे।
5. अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझ सकेंगे।

4.2 प्रस्तावना :–

साहित्य के कला पक्ष के अंतर्गत विभिन्न सौंदर्यबिंदु आते हैं। उनमें से एक महत्त्वपूर्ण सौंदर्यबिंदु अलंकार है। मूलतः साहित्य या काव्य सुंदर होता है और उसी को अधिक सुसज्जित करनेवाला एक उपादान अलंकार है।अलंकार के कारण सहज उक्ति को एक प्रभावात्मकता तथा चमत्कृतता प्राप्त होती है। साहित्य सृजन करनेवाले लेखक या कवि को और साहित्य का आनंद लेने की इच्छा रखनेवाले पाठक या श्रोता को अलंकारों का ज्ञान होना आवश्यक होता है। साहित्यशास्त्र संबंधी मौलिक चिंतन करनेवाले कई आचार्यों ने अलंकार को काव्य का प्राण तत्व माना है। अलंकार संप्रदाय के आचार्य भामह और अनुवर्ती आचार्यो ने अपने ग्रंथों में अलंकार का स्वरूप, अलंकार के भेद–उपभेद और उनके लक्षण आदि पर प्रकाश डाला है। अध्ययन की सुविधा के लिए पाठ्यक्रम में कुछ शब्दालंकारों और कुछ अर्थालंकारों का समावेश किया गया है। अलंकार का स्वरूप कैसा है? अलंकार की भाषा कैसी है? अलंकार के भेद और अध्ययनार्थ अलंकारों के लक्षण और उदाहरण आदि संबंधी विद्वानों की धारणा क्या है? इस संदर्भ में हम इस इकाई में अध्ययन करेंगे।

4.3 विषय – विवेचन :–

अब हम अलंकार का स्वरूप एवं महत्व, अलंकार शब्द का अर्थ एवं उसकी परिभाषाएँ, अलंकार के प्रकार और पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के लक्षण और उदाहरणों पर विचार करेंगे।

4.3.1 अलंकार : स्वरूप एवं परिभाषाएँ :

अलंकार शब्द में 'अलम' उप पद है, जो 'कृ' धातु से संज्ञा में अथवा 'करण' के अर्थ में 'धत्र' प्रत्यय होकर निर्मित हुआ है। 'अलम' शब्द का अर्थ है भूषण। अत: अलंकार का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ है – जो भूषित, सुशोभित करे वह अलंकार है। भूषित करनेवाला अर्थात्, जो अलंकृत करे वह अलंकार है। जिस प्रकार अलंकारों को धारण करने पर नारी के रूप सौंदर्य में वृद्धि होती है, उसी प्रकार अलंकार से कविता प्रभावी, सरस और सुंदर बनती है। जिस तरह सुंदर वस्तु, व्यक्ति, स्थान, अक्षर, चित्र, नृत्य तथा भाषण आदि मनुष्य का ध्यान आकर्षित करते हैं और अपना प्रभाव मनुष्य के मानस पटल पर छोडते हैं। उसी तरह किसी काव्य में उच्च कोटी के भाव, विचार, कल्पना तत्व के साथ उसका कला पक्ष भी मजबूत हो, तो वह काव्य अधिक प्रभावात्मक और सफलता प्राप्त करता है। आभूषण पहनने पर स्त्री या पुरुष का सौंदर्य अधिक खुलकर सामने

आता है, उसी तरह अलंकार के कारण काव्य में अभिव्यक्त भाव, विचार, कल्पना खुलकर चमत्कृत, प्रभावात्मक रूप से पाठकों के सामने आते हैं। कवि केशवदास ने अलंकार के संबंध में लिखा है –

जद्‌पि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त
भूषण बिनु न बिराजई कविता, वनिता मित्त।।

अर्थात उच्च कुल एवं जाति में जन्मी, सुस्वभाव की, सौंदर्यवान तथा अच्छे लक्षणोंवाली स्त्री का सौंदर्य भूषण पहने से अधिक बढता है। उसी तरह भूषण के बिना कविता शोभती नहीं है।

अत: भारतीय साहित्यशास्त्र में अलंकार का स्थान अक्षुण्ण है। एक कवि, लेखक के लिए जितना महत्त्व अलंकार का है, उतना ही पाठक तथा श्रोता के आनंद की दृष्टि से भी अलंकारयुक्त उक्ति का महत्व है। वस्तुत: अलंकार के कारण कविता कामिनी सुसज्जित होती है। मात्र एक बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि जिस तरह से किसी भी बात की अति अप्रभावात्मक होती है उसी तरह अलंकारों का अति प्रयोग भी कविता को बोझील बनाता है। इस संदर्भ में कवि बिहारी ने लिखा है – ''सुधो पाय न धरि सकै सोभा ही कै भार'' इस दृष्टि से रचनाकार या कवि अलंकारों का प्रयोग करता है, तो संबंधित कविता का कला पक्ष संतुलित बनता है और कविता का आशय प्रभावात्मक रूप से पाठक तथा श्रोता तक पहुँचने में सहायता मिलती है।

अलंकार : परिभाषाएँ :–

अलंकार को परिभाषित करने का प्रयास विभिन्न विद्वानों ने किया है। अलंकारवादी वामन ने 'सौंदर्य कार:' कहकर अलंकार को सौंदर्य का पर्यायवाची माना है। भामह के पूर्व अलंकार शब्द काव्य के अंतर्गत और बाह्य दोनों रूपों को अलंकृत करनेवाले उपादानों के लिए प्रयुक्त होता था। बाद में आचार्यों में मतभेद होने पर अलंकार का व्यापक अर्थ संकुचित हुआ। यहाँ चुनिंदा विद्वानों ने अलंकार की जो परिभाषाएँ की है, वह इस प्रकार हैं–

1. **आ. भामह –** 'वक्राभिधेयशब्दोक्तिरिष्टावाचामलंकृति:'
   अर्थात् – शब्द और अर्थ का वैचित्र्य ही अलंकार है।
2. **आ. दण्डी –** 'काव्यशोभाकरान् धर्मालंकारान् प्रचक्षते'
   अर्थात् – अलंकार काव्य को सौंदर्य प्रदान करनेवाले धर्म हैं।
3. **आ. वामन –** 'काव्यं ग्राह्यमलंकारात् सौंदर्यमलंकार:'
   अर्थात् – अलंकार द्वारा ही काव्य ग्राह्य होता है और सौंदर्य ही अलंकार है।
4. **आ. विश्वनाथ –**

   ''शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन:
   रसादीनुपकुर्वन्तोऽ लांकारास्तेप्रद:दादिवत्।।''

अर्थात अलंकार काव्य–शोभा को बढानेवाले रस, भाव आदि के उत्कर्ष में सहायक शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म हैं। ञ्प्रगंद आदि आभूषणों के समान ही ये अस्थिर धर्म भी काव्य के आभूषण या अलंकार कहलाते हैं।

5. आ. रामचंद्र शुक्ल – भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव करने में कभी-कभी सहायक होनेवाली उक्ति अलंकार है।

अत: विद्वानों ने अलंकार को परिभाषित करते समय अलंकार को केवल काव्य का बाह्य रूप तत्व ही नहीं माना। बल्कि यह स्वीकारा है कि रस, गुण आदि काव्य की अंतरात्मा को पुष्ट करनेवाले सभी तथ्यों का विकास अलंकार के द्वारा होता है। वे अलंकार को काव्य का स्थिर धर्म मानते हैं। भारतीय आचार्यों ने अलंकार में वैचित्र्य एवं सौंदर्य वृद्धि को अधिक महत्त्व दिया है।

4.3.1.2 अलंकार का महत्त्व :–

भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारों को कवि की वाणी को सौंदर्य प्रदान करनेवाले माने जाते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में अलंकारवादी आचार्यों की सुदीर्घ परंपरा रही है। इन आचार्यों ने अलंकारों का स्वरूप, महत्त्व, भेद, लक्षण तथा उदाहरण पर काफी मौलिक चिंतन किया है। साथ ही अलंकारों की काव्य में उपयोगिता और महत्ता पर गंभीर विवेचन भी किया है। यहाँ अलंकार के महत्त्व संबंधी विवेचन प्रस्तुत है–

1. सफल अभिव्यक्ति के लिए :–

साहित्य के दो प्रमुख तत्व होते हैं – भाव पक्ष और कला पक्ष। भावों को प्रभावात्मक रूप से पहुँचाने का कार्य कला पक्ष के अंतर्गत आनेवाली इकाईयाँ करती हैं। अलंकार उनमें से एक प्रमुख इकाई है। इसीकारण ही काव्यशास्त्र में अलंकारों को यथोचित स्थान दिया गया है। डॉ. सभापति मिश्र जी ने अलंकार के महत्त्व संबंधी लिखा है– ''अलंकार को काव्य की आत्मा न मानने पर भी काव्य में अलंकार के महत्त्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भावावेश की भाषा में अलंकारों का समावेश अपने आप हो जाता है। अनुभूतियों की सघनता के साथ-साथ काव्यभाषा स्वयमेव अलंकारों से सुसज्जित हो जाती है। अलंकारों द्वारा अर्थ गांभीर्य सुनिश्चित होता है तथा कवि अपनी बात सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करने में सफल होता है।'' इससे कहना सही होगा कि अलंकार काव्य के कला पक्ष का प्रमुख उपादान है। अलंकारों का प्रयोग भावों की सफल अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है। अलंकार भावों को अधिक रमणीय बनाकर एक सौंदर्य प्रदान करते हैं। डॉ. महेंद्र रघुवंशी के विचारानुसार, ''अलंकार भावों को परिष्कृत करके उन्हें चमत्कारपूर्ण और प्रभावोत्पादक बनाते हैं।'' संक्षेप में अलंकारों के कारण साहित्य चाहे वह गद्य हो या पद्य वह रमणीय तथा आकर्षक बनता है। अत: अलंकारयुक्त भाषा में लिखा साहित्य पढकर पाठक का हृदय रसमय होकर विशिष्ट अंग से आप्लवित हो जाता है।

2. सौंदर्यपरक उपादान :–

सौंदर्य की ओर आकर्षित होना मनुष्य का जन्मजात स्वभाव है। मनुष्य केवल स्वयं को सुंदर रूप में देखना ही नहीं चाहता, तो अपने आपको सुंदर ढंग से अभिव्यक्त भी करना चाहता है। कवि भी स्वाभाविक रूप से मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करने की क्षमता रखनेवाले अलंकार का महत्त्व समझते हैं। जब कवि काव्य अनुभूति के क्षणों को कलापूर्ण अभिव्यक्त करना चाहता है तब अन्य काव्य सौंदर्य के साधनों के साथ अलंकारों

की सहायता लेता है। कवि अलंकारों का सहजता से प्रयोग करके अपना रचना विषय प्रभावात्मक ढंग से प्रस्तुत करता है। प्रतिभावान कवि स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग करता है। अत: सौंदर्यपरक उपादान के रूप में अलंकार का अलग महत्त्व है।

3. कल्पकता को गति देने की दृष्टि से उपयुक्त :–

साहित्य में अलंकारों का स्थान क्या है? इस संदर्भ में विचार करते समय कई विद्वान आलंकारिकता के कारण ही काव्य उपयोगी है ऐसा मानते हैं। तो कई विद्वान अलंकार को एक तरह का बंधन मानते हैं। उनके मतानुसार कवि कल्पना के बंधन में रहकर कल्पना की उडान भरने में असमर्थ होता है। मात्र यह विचार एकांगी एवं पूर्वग्रहदूषितता से प्रभावित है। इसके उलट तटस्थता से चिंतन करें, तो स्पष्ट होता है कि अलंकार कवि की कल्पकता में बाधा नहीं डालते। बल्कि उसकी गति को बढाने का काम करते हैं। जब कवि अपनी काल्पनिकता व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है, तब वह अलंकार का आधार लेकर कल्पना को गति देता है। कवि अलंकारों की सहायता से अपनी काल्पनिक भावनाएँ सटिक रूप में अभिव्यक्त करता है।

4. रहस्यवाद का प्रस्तुतीकरण करने के लिए आवश्यक :–

रहस्यवादी कवि रहस्यवादी विचार साधारण रूप में अभिव्यक्त नहीं करते। ऐसे कवि को रहस्यवादी विचार तथा भावना व्यक्त करने के लिए रूपक और अन्योक्ति अलंकार जैसे अलंकारों का सहारा लेना पडता है। संत कबीर जैसे रहस्यवादी संत कवियों ने रहस्यवाद के प्रस्तुतीकरण के समय अलंकारों का आश्रय लिया है।

5. सामान्य कथन में लाभप्रद :–

अलंकार साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है ही। मात्र लोक व्यवहार में सामान्य कथन को भी अधिक सौंदर्यात्मक, स्पष्टतायुक्त और प्रभावात्मक बनाने में अलंकारों का योगदान रहता है। श्रोताओं को हृदय को छू लेनेवाली अलंकारयुक्त भाषा और शैली आनंद देती है। अलंकारयुक्त भाषा बोलनेवाला व्यक्ति श्रोताओं की दृष्टि से आकर्षण का विषय होता है। इसीकारण केवल कवि ही नहीं पर शब्द, अर्थ, अक्षर, ध्वनि की क्षमता जाननेवाला साधारण मनुष्य और वक्तृत्व कला में माहिर आदमी भी अपनी अलंकारप्रधान वाणी से सामनेवालों के हृदय जीतता है।

6. साहित्य की आत्मा के रूप में महत्त्व :–

आचार्य भामह जैसे अलंकार संप्रदाय के आचार्यों ने तो अलंकार को ही काव्य का सर्वस्व माना है। वे रस का उद्भव भी रसवत् नामक अलंकार से ही मानते हैं। आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा मानकर काव्य के अन्य सौंदर्य अंग रस, ध्वनि को भी अलंकार से प्रभावित माना है। साहित्य की आत्मा को लेकर विद्वानों में एकमत नहीं है। रसवादियों ने 'रस' को, अलंकारवादियों 'अलंकार' को, रीतिवादियों ने 'रीति'. को तो ध्वनिवादियों ने 'ध्वनि' को काव्य की आत्मा माना है। इससे एक निश्चित है कि विद्वानों ने काव्य सौंदर्य की दृष्टि से जो अधिक महत्त्वपूर्ण साधन समझा उसे काव्य की आत्मा घोषित किया है। पर उन्होंने अन्य सौंदर्यबिंदुओं का महत्त्व नकारा नहीं है। अलंकार काव्य की आत्मा हो या न हो, पर काव्य का सौंदर्य बढानेवाला एक कारण है इसे हम नकारते नहीं है।

नि:संदेह काव्य में अलंकारों को अनन्यसाधारण महत्त्व है। अलंकार काव्य में चमत्कार उत्पन्न करते हैं। मात्र यह भी याद रखना आवश्यक है कि अलंकार काव्य सौंदर्य वृद्धि के साधन हैं, साध्य नहीं। अलंकारों का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर वे काव्य के मूलतत्वों का स्थान नहीं ले सकते हैं।

4.3.1.3 अलंकार के भेद

भारतीय आचार्यों ने अलंकार निरुपण करते समय ऐसा माना है कि काव्यगत अलंकार शब्द तथा अर्थ में निवास करते हैं। किसी भी कथन में शब्दगत, अर्थगत और शब्दार्थगत प्रकार का चमत्कार एवं सौंदर्य निर्माण होता है। काव्य में अलंकारों की स्थिति के अनुसार अलंकार के तीन भेद किए जाते हैं – 1. शब्दालंकार, 2. अर्थालंकार, 3. उभयालंकार। आचार्य मम्मट के अनुसार इस विभाजन का आधार 'अन्वय व्यतिरेक संबंध' है। जिसके रहने पर जो रहे वह अन्वय कहलाता है और जिसके न रहने पर जो न रहे वह व्यतिरेक। इसका तात्पर्य यह है कि जिस शब्द के कारण चमत्कार हो उसके स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने पर यदि चमत्कार नष्ट हो जाए तो शब्दालंकार तथा चमत्कार नष्ट न हो तो अर्थालंकार माना जाता है और जहाँ दोनों स्थितियाँ बनी रहे वहाँ शब्दार्थालंकार (उभयालंकार) माना जाता है।

1. शब्दालंकार (Figure of Speech in Words)

जो अलंकार काव्य में शब्द के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं उनको शब्दालंकार कहते हैं। जिस कथन में शब्द को मुख्य और तुलना में अर्थ को गौण स्थान होता है और शब्दों के कारण ही सौंदर्य या चमत्कार निर्माण होता है, वहाँ शब्दालंकार होता है।

शब्दालंकार भाषा का बाह्य सौंदर्य बढाते हैं। इस प्रकार में केवल शब्दगत चमत्कार होता है। शब्दों द्वारा चमत्कार एवं सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है। पर जिन शब्दों के कारण किसी कथन में चमत्कार एवं सौंदर्य उत्पन्न किया जाता है। यदि उन शब्दों के स्थान पर उसी अर्थ के दूसरे शब्द रख दिए, तो वहाँ का चमत्कार और सौंदर्य समाप्त हो जाता है। तात्पर्य यह है कि शब्दालंकार में शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। विद्वान शब्द के दो रूप मानते हैं 1. ध्वनि, 2. अर्थ। ध्वनि के आधार पर शब्दालंकार निर्माण होते हैं। शब्दालंकार में वर्ण या शब्दों की लयात्मकता होती है। राजा भोज ने शब्दालंकार की परिभाषा करते समय लिखा है–

''ये व्युत्पत्यादिना शब्दमलंककर्तुमिहक्षमा :
शब्दालद्द:रसंज्ञास्त।''

जैसे – अनुप्रास यमक, वक्रोक्ति, वीप्सा, पुनरुक्ति प्रकाश, चित्र, श्लेष आदि शब्दालंकार हैं।

2. अर्थालंकार (Figure of Speech in Sense)

जो अलंकार काव्य में अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उनको अर्थालंकार कहते हैं। जिस कथन में अर्थ को मुख्य और तुलना में शब्द को गौण स्थान होता है और अर्थ के कारण सौंदर्य या चमत्कार निर्माण होता है, वहाँ अर्थालंकार होता है।

दूसरे शब्दों में अर्थ वैचित्र्य की रचना द्वारा काव्य को शोभित करनेवाले अलंकारों को अर्थालंकार कहते

हैं। अर्थालंकारों में अर्थ की विचित्रता पर चमत्कार या सौंदर्य निर्माण होता है। अर्थालंकार काव्य को प्राकृतिक सौंदर्य प्रदान करते हैं। अर्थात् शब्द की अपेक्षा अर्थ संबंधी सौंदर्य हो, वहाँ अर्थालंकार होता है। अर्थालंकार में पर्यायवाची शब्द रखने पर भी चमत्कार बना रहता है। जैसे ''सुमनों-सी मुस्कान तुम्हारी'' में सुमनों शब्द के स्थान पर पुष्पों एवं फुलों को रख देने से अलंकार और अर्थगत सौंदर्य में कोई अंतर नहीं पडता। जैसे - उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, भ्रांतिमान, उल्लेख, व्यतिरेक, अन्योक्ती, दृष्टांत, प्रतिव्यस्तुपमा, तुलय-योगिता, दीपक, अपह्नति, निदर्शना, प्रतीप, तद्गुण, मीलित, उन्मीलित, कारणमाला, एकावली, काव्यलिंग, असंगति, परिकर, परिकरांकुर, परिवृत्त, परिसंख्या, प्रत्यनिक, व्याजस्तुति, अप्रस्तुतप्रशंसा, समासोक्ति, मुद्रा, यथासंख्य, पर्यायोक्ति, विभावना, विशेषोक्ति आदि अर्थालंकार हैं।

3. अभयालंकार (Figure of Speech in Words ans Sense)

जो अलंकार काव्य में शब्द और अर्थ दोनों के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करते हैं, उनको उभयालंकार कहते हैं। जिस कथन में शब्दगत और अर्थगत दोनों ही कोटी के चमत्कार प्रधान होते हैं, वहाँ उभयालंकार माना जाता है। जैसे - संसृष्टि, संकर आदि उभयालंकार है।

संक्षेप में, अलंकारों के तीन प्रकार हैं। शब्दसंबंधी चमत्कार एवं सौंदर्य से युक्त अलंकारों को शब्दालंकार कहा जाता है। अर्थ संबंधी चमत्कार एवं सौंदर्य युक्त अलंकारों को अर्थालंकार कहते हैं। जिन अलंकारों को में शब्द और अर्थ दोनों का चमत्कार होता है, उन्हें उभयालंकार कहा जाता है।

4.3.1.3 अलंकार के भेद :

आचार्यों ने अलंकारों को तीन प्रकारों में विभक्त किया है - 1. शब्दालंकार (Figure of Speect in Words), 2. अर्थालंकार (Figure of Speech in sence) 3. उभयालंकार (Figure of Speech in Words and Sense)

4.3.1.3.1 शब्दालंकार

4.3.1.3.1.1 अनुप्रास (Alliteration)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. 'अनुप्रास' शब्द का अर्थ है - 'अनु' अर्थात बार-बार और 'प्रास' का अर्थ पास-पास रखना, अर्थात् जहाँ पर एक ही वर्ण (अक्षर) बार-बार अथवा पास-पास आते हैं, वहाँ पर अनुप्रास अलंकार होता है।

3. जब एक ही वर्ण (अक्षर) की एक की क्रम से आवृत्ति होती है, तब अनुप्रास अलंकार होता है।

4. इसमें केवल व्यंजन वर्णों की समानता या आवृत्ति अपेक्षित है। स्वरों की समानता अपेक्षित नहीं है। स्वर के विषम होने पर भी अनुप्रास अलंकार बना रहता है।

5. अनुप्रास अलंकार के पाँच भेद हैं - छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, श्रुत्यानुप्रास, लाटानुप्रास और अंत्यानुप्रास।

उदाहरण :

1. ''चारू चंद्र की चंचल किरणे
   खेल रही थी जल-थल में।
   स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई थी
   अंबर और अवनी स्थल में।।''

ऊपरोक्त काव्य-पंक्तियों में 'च' और 'ल' वर्ण की पुनरावृत्ति हुई है। अत: यहाँ अनुप्रास अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है

2. ''लाली मेरे लाल की, जिथ देखन तिथ लाल।
   लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में 'ल', 'थ' और 'ख' वर्ण की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हुई है। अत: यहाँ पर अनुप्रास अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति दृष्टव्य है।

4.3.1.3.1.2 वक्रोक्ति (Rhetoric / The Crooked Speech)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. किसी अन्य से कहे हुए वाक्य का दूसरे व्यक्ति द्वारा श्लेष अथवा काकु उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित करना ही वक्रोक्ति अलंकार है।

3. श्रोता जब वक्ता के कथन का अन्य अर्थ कल्पित करता है और उसी कल्पित अर्थ के आधार पर प्रश्न का उत्तर देता है, तो वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

4. वक्रोक्ति के दो प्रमुख भेद हैं - श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति।

उदाहरण :

1. ''एक कबुतर देख हाथ में पूछा कहाँ अपर है?
   उसने कहा, अपर कैसा? वह उड गया सपर हैं।''

उपरोक्त उदाहरण में नूरजहाँ के हाथ में एक कबुतर देखकर जहाँगीर ने पूछा कि दूसरा कहाँ है? जहाँगीर ने अपर का प्रयोग 'दूसरे' के अर्थ में किया। किंतु नूरजहाँ ने 'अपर' का अर्थ पंख विहिन समझा और उत्तर दिया कि वह पर (पंख) वाला था इसलिए उड गया। अत: यहाँ श्लेष वक्रोक्ति अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई हैं।

2. ''है रि लाल तेरे?
   सखी ऐसी निधि पाई कहाँ

है रि खगयान?
कह्यौ हौ तो नहीं पाले हौ?''

प्रस्तुत उदाहरण में निधि और खग श्लेषार्थी है। नटखट बालकृष्ण की शिकायत करनेवाली गोपी यशोदा को कहती है कि तेरा लाल (बच्चा) अच्छा है। ऐसी निधि (धन) कहा मिली? इसमें अभिधार्थ नहीं है, तो श्रीकृष्ण जैसा नटखट लडके की शिकायत का स्वर प्रमुख है। अत: यहाँ वक्रोक्ति अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई हैं।

4.3.1.3.1.3 यमक (Syllables similar in words)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. इस अलंकार में एक शब्द की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार होती है और अलग-अलग जगह पर उस शब्द का अर्थ अलग-अलग होता है।

३. इस अलंकार में एक ही रूप के भिन्नार्थक या निरर्थक समान स्वरवाले व्यंजनसमुदाय की आवृत्ति होती है।

४. यमक अलंकार के चार उपभेद हैं - सार्थक, निरर्थक, सभंगपद और अभंगपद।

उदाहरण :

1. ''अब क्या सोच रहे हो 'कर्ण?'
कर्ण तक खिंच ले धनुष्य की डोर''

ऊपरोक्त उदाहरण में कर्ण शब्द की पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हुई है। पहली पंक्ति में आया हुआ 'कर्ण' शब्द व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में महाभारत का पात्र कर्ण है। तो दुसरी पंक्ति में आया हुआ 'कर्ण' शब्द शरीर का एक अंग के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अत: यहाँ यमक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. ''कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय नर या पार बौराय।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में पहला 'कनक' शब्द स्वर्ण का वाचक है तथा दूसरे 'कनक' का अर्थ धत्तुरा है। अत: यहाँ यमक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.4 वीप्सा (Repetition)

लक्षण :

1. यह शब्दालंकार है।

2. विप्सा का अर्थ है आवृत्ति

3. जब किसी आकस्मिक भाव को प्रकट करने के लिए एक शब्द कई बार दोहराया जाता है, तब वहाँ वीप्सा अलंकार होता है।

4. इस अलंकार में मनोभावों को प्रकट करने के लिए शब्दों या पदों पर विशेष बल देकर उन्हें कई बार दोहराया जाता है।

उदाहरण :

1. ''राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे
घोर भव नीर निधि नाम निज नाव रे।।''

इस उदाहरण में 'राम जपु' शब्द तीन बार प्रयुक्त हुआ है। राम के प्रति भक्ति व्यक्त करने का मनोभाव प्रकट करने के लिए यह शब्द दोहराये गये हैं। अत: यहाँ वीप्सा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

1. ''पुनि-पुनि मोहि दिखान कुठारा।
चहत उडावन फूंकि पहारा।।''

ऊपरोक्त उदाहरण में आकस्मिक भाव प्रकट करनेवाला 'पुनि' शब्द दोहराया गया है। अत: यहाँ वीप्सा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई।

4.3.1.3.2 अर्थालंकार

4.3.1.3.1.1 उपमा (Simile)

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।

2. उपमा का सामान्य अर्थ है किसी वस्तु की अन्य किसी दूसरी वस्तु के साथ समानता के आधार पर तुलना करना।

3. उपमा का शाब्दिक अर्थ है - 'उप' अर्थात समीप से तो 'मा' का अर्थ तौलना (देखना) अर्थात एक वस्तु के समीप दूसरी वस्तु को रखकर उनकी समानता प्रतिपादित करना।

4. जहाँ समान गुण, धर्म या विशेषता के अनुसार एक वस्तु की तुलना किसी दूसरी वस्तु से करके दोनों में समानता देखी जाती है, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

5. उपमा अलंकार के चार अंग हैं-

अ) उपमेय (प्रस्तुत) - जिस वस्तु की तुलना की जाती है उसे उपमेय कहते हैं।

आ) उपमान (अप्रस्तुत) - जिस वस्तु से तुलना की जाती है उसे उपमान कहते हैं।

इ) साधारण धर्म - वह गुण अथवा विशेषता जिसके आधार पर उपमेय और उपमान की तुलना की जाती है, उसे साधारण धर्म कहते हैं।

ई) वाचक शब्द – वह शब्द जिसके द्वारा तुलना का भाव प्रकट किया जाता है, उसे वाचक शब्द कहते हैं। वाचक शब्द – सा, सी, से, सरिस, सदृश्य, समान, तुल्य, जैसा आदि।

उदाहरण :

1. ''दो दिवस रहकर कुटी में
   आग–सी सुलगा गये हैं।
   दीप–सा हिय जल रहा है,
   कह दो तुम्हीं कैसे बुझाऊँ।''

उपर्युक्त उदाहरण में उपमेय हृदय, उपमान– दीप, साधारण धर्म– जल रहा और वाचक शब्द– सा है। यहाँ पूर्णोपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. पीपल पात सरिस मन डोला।

इस उदाहरण में उपमेय– मन, उपमान– पीपल पात, साधारण धर्म – डोलना और वाचक शब्द–सारिस है। अत: यहाँ उपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

3. सीता का मुख चंद्रमा के समान सुंदर है।

इस उदाहरण में उपमेय– सीता का मुख, उपमान– चंद्रमा, साधारण धर्म– सुंदर और वाचक शब्द समान है। अत: यहाँ उपमा अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.2 रूपक (Metaphor) :

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।
2. रूपक का मतलब है रूप ग्रहण करना।
3. जब उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है, वहाँ रूपक अलंकार होता है।
4. इस अलंकार में एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु को इस प्रकार रखा जाता है कि दोनों के बीच का अंतर ही नहीं दिखायी देता है।
5. रूपक अलंकार में उपमा का एक अंग साधारण धर्म का कथन नहीं किया जाता है।
6. इस अलंकार के तीन भेद हैं – अभेद रूपक, तद्रूप रूपक और परंपरित रूपक।

उदाहरण :

1. ''बीती विभावरी जाग री
   अम्बर–पनघट में डुबो रही तारा–घट उषा नागरी।''

प्रस्तुत उदाहरण में अंबर पर पनघट का अभेद रूप से आरोप किया है उसी तरह तारा पर घट (कुंभ)

और उषा (प्रात:काल) पर नागरि (नवयुवती) का अभेद रूप से आरोप किया है। अत: यहाँ रूपक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. नेत्र कमल है।

ऊपरोक्त उदाहरण में नेत्र (उपमेय) और कमल (उपमान) का भेद मिटाकर अभिन्नता दिखाई गई है । नेत्र पर कमल का आरोप है। अत: यहाँ रूपक अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.3.1.3.1.3 अतिशयोक्ति (Hyperbole) :

लक्षण :

1. यह एक अर्थालंकार है।

2. अतिशयोक्ती का अर्थ है अत्याधिक बढा-चढाकर की गई उक्ति (कथन)।

3. जहाँ किसी का वर्णन इतना बढा-चढाकर किया जाता है कि वहाँ लोक सीमा या मर्यादा का उल्लंघन हो जाता है, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

4. दूसरे शब्दों में - ''उपमेय का निगरण कर (निगल कर) उपमान के साथ उपमेय के अभेद की स्थापना को अतिशयोक्ति अलंकार कहते हैं।''

5. अतिशयोक्ति अलंकार के छ: भेद हैं - भेदकातिशयोक्ति, संबंधातिशयोक्ति,चपलातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, रूपकातिशयोक्ति और अत्यन्ताशियोक्ति।

उदाहरण :

1. ''पडी अचानक नदी अपार,
   घोडा कैसे उतरे पार,
   राणा ने सोचा इस पार,
   तब तक चेतक था उस पार।''

ऊपरोक्त उदाहरण में महाराणा प्रताप के घोडे का बढा-चढाकर इतना वर्णन किया है कि लोक-मर्यादा का उल्लंघन हुआ है। अत: यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

2. ''हनुमान की पूँछ में, लगन न पाई आग
   लंका सिगरी जल गई, गए निशाचर भाग।।''

यहाँ लंका गए हनुमान की पूँछ को आग लगाने के प्रसंग का लोक-मर्यादा लाँघकर वर्णन किया गया है। अत: यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार की सुंदर योजना हुई है।

4.3.1.3.1.4 विभावना :

लक्षण :

1. यह अर्थालंकार है।

2. सामान्यत: कारण के बिना कार्य नहीं हो सकत है। कारण संबंधी विलक्षण कल्पना विभावना अलंकार है।

3. जहाँ कारण के अभाव में कार्य की सिद्धि दिखाई जाती है, वहाँ विभावना अलंकार होता है।

4. कारण संबंधी विलक्षण कल्पना छ: प्रकार की होती है। इस आधार पर विभावना के छ: प्रकार हैं – प्रथम विभावना, द्वितीय विभावना, तृतीय विभावना, चतुर्थ विभावना, पाँचवी विभावना और छठी विभावना।

उदाहरण :

1. ''चरण कमल से निकली गंगा विष्णु पति कहलाती।''

ऊपरोक्त उदाहरण में कारण संबंधी विलक्षण कल्पना मिलती है। कमल की उत्पत्ति का कारण जल होता है। किंतु यहाँ कवि ने कमल के चरण से गंगा के उद्‌भव रुपी कार्य का वर्णन किया है। अत: यहाँ विभावना अलंकार है।

2. ''चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कन कन से फूट-फूट मधु के निर्झर से सजल गान।''

ऊपरोक्त उदाहरण में सूर्य के लाल किरण रूपी बाण लगने से निर्झर से गान निकलने का वर्णन है। इसमें गान निकलने के कारण संबंधी विलक्षण कल्पना मिलती है। अत: यहाँ विभावना अलंकार की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है।

4.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए विकल्पों में से उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) अलंकार के कुल मिलाकर ..... प्रकार हैं।

अ) पाँच ब) तीन क) दो ड) छ:

2) ..... भाषा का बाह्य सौंदर्य बढाते हैं।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) मिश्रालंकार ड) उभयालंकार

3) अनुप्रास ..... प्रकार का अलंकार है।

अ) अर्थालंकार ब) शब्दालंकार क) उभयालंकार ड) सुक्ष्मालंकार

4) काव्य में ..... के द्वारा चमत्कार उत्पन्न होता है, तो उनको अर्थालंकार कहते हैं।

अ) भाव ब) शब्द क) विचार ड) अर्थ

5) उपमा अलंकार के कुल ..... अंग हैं।

अ) चार ब) तीन क) सात ड) दो

6) काव्य में शब्द और अर्थ के द्वारा चमत्कार उत्पन्न करनेवाले अलंकार को ..... अलंकार कहते हैं।

अ) अर्थालंकार ब) शब्दालंकार क) उभयालंकार ड) भावालंकार

7) अतिशयोक्ति अलंकार ..... प्रकार का अलंकार है।

अ) अर्थालंकार ब) शब्दालंकार क) उभयालंकार ड) प्रेमालंकार

8) ..... में शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता।

अ) उभयालंकार ब) शब्दालंकार क) अर्थालंकार ड) स्थायी अलंकार

9) ..... अलंकार में पर्यायवाची शब्द रखने पर भी चमत्कार बना रहता है।

अ) पर्याय ब) शब्दा क) अर्था ड) उभया

10) अलंकार साहित्य का ..... पक्ष का एक अंग है।

अ) कला ब) भाव क) विचार ड) कल्पना

11) ..... अलंकार में वर्ण (अक्षर) की पुनरावृत्ति होती है।

अ) यमक ब) दृष्टांत क) अनुप्रास ड) विभावना

12) ..... अलंकार में शब्द की पुनरावृत्ति होती है और उसका अर्थ अलग-अलग स्थान पर अलग-अलग होता है।

अ) यमक ब) दृष्टांत क) अनुप्रास ड) विभावना

13) कथन में ..... के विषम होने पर भी अनुप्रास अलंकार बना रहता है।

अ) व्यंजनों ब) संयुक्त व्यंजनों क) स्वरों ड) क्रियाओं

14) वक्रोक्ति ..... प्रकार का अलंकार है।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) वक्र अलंकार ड) भावालंकार

15) 'लाली मेरे लाल की जिथ देखन तिथ लाल' इस पंक्ति में ..... अलंकार है।

अ) यमक ब) अनुप्रास क) अन्योक्ति ड) श्लेष

16) वक्रोक्ति अलंकार में किसी ने कहे हुए वाक्य का दूसरा व्यक्ति श्लेष अथवा ..... उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित करता है।

अ) काकू ब) सभंग क) अभंग ड) भावपूर्ण

17) 'अब क्या सोच रहे हो कर्ण?' कर्ण तक खिंच ले धनुष्य की डोर।।' इन काव्य-पंक्तियों में ..... अलंकार है।

अ) अनुप्रास ब) विभावना क) यमक ड) उपमा

18) वीप्सा का शाब्दिक अर्थ है .....।

अ) विषमता ब) आवृत्ति क) शांति ड) मौन ध्वनि

19) .....अलंकार में आकस्मिक भाव को प्रकट करने के लिए शब्द या पद दोहराये जाते हैं।

अ) वीप्सा ब) रूपक क) अतिशयोक्ति ड) अनुप्रास

20) ..... अलंकार में किसी एक वस्तु की किसी दूसरी वस्तु के साथ समानता के आधार पर तुलना की जाती है।

अ) उपमेय ब) उपमान क) उपमा ड) विभावना

21) जिस वस्तु की तुलना की जाती है, उसे ..... कहते हैं।

अ) उपमेय ब) उपमान क) उपादेय ड) उपक्रम

22) जब उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है, वहाँ ..... अलंकार होता है।

अ) रूपक ब) अनुप्रास क) यमक ड) वीप्सा

23) ..... अलंकार में लोक-मर्यादा का उल्लंघन होनेवाला कथन होता है।

अ) अनुप्रास ब) भ्रांतिमान क) अतिशयोक्ति ड) उत्प्रेक्षा

24) ..... संबंधी की जानेवाली विलक्षण कल्पना विभावना अलंकार है।

अ) कारण ब) रूपक क) उपमेय ड) उपमान

25) ''अम्बर पनघट में डूबो रही तारा-घट उषा नागरी'' इस काव्य-पंक्ति में 'अंबर' पर ..... का अभेद रूप से आरोप किया है।

अ) उषा ब) आकाश क) तारा ड) पनघट

26) 'राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे' इस काव्य-पंक्ति में ..... अलंकार है।

अ) वीप्सा ब) रूपक क) विरोधाभास ड) दृष्टांत

27) 'पीपल पात सरिस मन डोला' इस काव्य-पंक्ति में उपमेय ..... है।

अ) पीपल ब) पात क) मन ड) डोलना

28) विभावना ..... प्रकार का अलंकार है।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) उभयालंकार ड) विरोधालंकार

29) 'हनुमान की पूँछ में, लगन न पाई आग। लंका सिगरी जल गई, गए निशाचर भाग।।।' इस काव्य-पंक्ति में ..... अलंकार है।

अ) अतिशयोक्ति ब) उपमा क) रूपक ड) विभावना

30) रूपक अलंकार में उपमा का एक अंग ..... का कथन नहीं किया जाता।

अ) उपमेय ब) उपमान क) साधारण धर्म ड) वाचक शब्द

31) उपमा अलंकार में जिस शब्द के द्वारा तुलना का भाव प्रकट किया जाता है उसे ..... शब्द कहते हैं।

अ) लक्ष्यक ब) व्यंगार्थ क) वाचक ड) समानार्थक

32) रूपक ..... प्रकार का अलंकार है।

अ) शब्दालंकार ब) अर्थालंकार क) उभयालंकार ड) रुपालंकार

33) उपमा अलंकार में जिस वस्तु से तुलना की जाती है, उसे ..... कहते हैं।

अ) उपमान ब) प्रस्तुत क) उपमेय ड) वाचक शब्द

34) शब्दालंकार में .....को प्रधान और तुलना में अर्थ को गौण स्थान होता है।

अ) शब्द ब) कर्म क) भाव ड) विचार।

35) ..... के आधार पर शब्दालंकार उत्पन्न होते हैं।

अ) अर्थ ब) पद क) ध्वनि ड) वाक्य

36) अर्थालंकार काव्य को .....सौंदर्य प्रदान करते हैं।

अ) प्राकृतिक ब) रचनागत क) मानवगत ड) स्वभावगत

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. आभूषित - सुशोभित करना।
2. चारू - सुंदर।
3. आवृत्ति - बार - बार आना, पुनरावृत्ति।
4. अभिन्न - जो भिन्न न हो।
5. चंचल - अस्थिर।
6. सुजाति - उच्च वर्ण की।
7. शोभा - कांति, चमक।
8. चमत्कार - अद्‌भूत, अकल्पित बात।
9. उक्ति - चमत्कार कथन, वचन, अनोखा वाक्य।

10. अवनी – पृथ्वी, भूमि।
11. काकु – कंठ ध्वनि।
12. श्लेष – चिपका हुआ।
13. आकस्मिक – अचानक।
14. नीर – जल, पानी, रस ।
15. पुनि – पुनश:।
16. हिय – हृदय।
17. अरुण – सूर्य, लाल रंग।
18. मधु – वसंत ऋतु।
19. निशाचर – दानव, भूत,चोर।
20. कुटी – झोपडी।
21. सरिस – समान।
22. उपादान – प्राप्ति, वह सामग्री जिससे कोई वस्तु बने।

4.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

उचित पर्याय :

1. तीन	2. शब्दालंकार	3. शब्दालंकार	4. अर्थ
5. चार	6. उभयालंकार	7. अर्थालंकार	8. शब्दालंकार
9. अर्था	10. कला	11. अनुप्रास	12. यमक
13. स्वरों	14. शब्दालंकार	15. अनुप्रास	16. काकु
17. यमक	18. आवृत्ति	19. वीप्सा	20. उपमा
21. उपमेय	22. रूपक	23. अतिशयोक्ति	24. कारण
25. पनघट	26. वीप्सा	27. मन	28. अर्थालंकार
29. अतिशयोक्ति	30. साधारण धर्म	31. वाचक	32. अर्थालंकार
33. उपमान	34. शब्द	35. ध्वनि	36. प्राकृतिक

4.7 सारांश :

- अलंकार काव्य की शोभा बढानेवाला प्रमुख साधन है। अलंकार के कारण सामान्य बात विशेष मनोहर रूप में प्रस्तुत हो जाती है।
- अलंकारों के तीन भेद हैं – शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार।
- अलंकार के कारण साहित्य सरस, सुंदर और प्रभावात्मक बन जाता है।

- साहित्य के कला पक्ष का एक प्रमुख सौंदर्यवर्धक उपादन, भावों की सफल अभिव्यक्ति, कल्पकता को गति, रहस्यवाद का प्रस्तुतीकरण तथा श्रोता या पाठक के हृदय को प्रभावित करनेवाला साधन के रूप में अलंकार का विशेष महत्त्व है।
- शब्दालंकारों में शब्दगत सौंदर्य का चमत्कार होता है, तो अर्थालंकार में शब्द की अपेक्षा अर्थ के द्वारा चमत्कार होता है। उभायालंकार में शब्द और अर्थ इन दोनों के कारण काव्य-सौंदर्य में वृद्धी होती है।
- अनुप्रास में एक ही वर्ण की आवृत्ति होती है। वक्रोक्ति में श्लेष अथवा काकु उक्ति से अन्य अर्थ कल्पित किया जाता है। यमक में शब्द की आवृत्ति होती है, परंतु अर्थ में भिन्नता होती है। वीप्सा में मनोभाओं को प्रकट करने के लिए शब्दों या पदों पर विशेष बल देकर शब्द या पद दोहराया जाता है।
- उपमा में किसी वस्तु, व्यक्ति, व्यंजन आदि की समानता के आधार पर किसी दूसरी वस्तु के साथ तुलना की जाती है। रूपक में उपमेय पर उपमान का अभेद रूप से आरोप किया जाता है। अतिशयोक्ति में किसी उक्ति का अत्याधिक बढा-चढाकर वर्णन किया जाता है। कार्य सिद्धि के कारण संबंधी की जानेवाली विलक्षण कल्पना विभावना अलंकार है।

4.8 स्वाध्याय :

1) निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।

   1. अनुप्रास 2. वक्रोक्ति 3. यमक 4. वीप्सा

2) निम्नलिखित अलंकारों के लक्षण और उदाहरण लिखिए।

   1. उपमा 2. रूपक 3. अतिशयोक्ति 4. विभावना

3) शब्दालंकार और अर्थालंकार के बीच का अंतर स्पष्ट कीजिए।

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

1) पाठ्यक्रम में समाविष्ट अलंकारों के अतिरिक्त अन्य भी अलंकारों के लक्षण और उदाहरण समझने का प्रयास करें।
2) मराठी और अंग्रेजी भाषा के अलंकारों का अध्ययन करें।
3) अलंकार संप्रदाय के आचार्यों के अलंकार संबंधी विचारों का संकलन कीजिए।
4) अलंकार सिद्धांत का अध्ययन कीजिए।
5) अलंकार और साहित्यिक सौंदर्य के अन्य साधन (रस, छंद, ध्वनि, शैली आदि का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
6) साहित्यिक रचना पढ़ते समय रचनाकार द्वारा प्रयुक्त अलंकारों के प्रकार पहचानकर पंक्तियों की सूची बनाइए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत : डॉ. गोविंद त्रिगुणायात

2) काव्यशास्त्र : डॉ भगीरथ मिश्र

3) हिंदी व्याकरण रस-छंद-अलंकार सहित : डॉ. उमेशचंद्र शुक्ल

4) साहित्यशास्त्र : डॉ. चंद्रभानु सोनवणे

5) काव्यशास्त्र : विविध आयाम : सं. डॉ. मधु खराटे

6) हिंदी व्याकरण विमर्श : डॉ. ब्रज किशोर प्रसाद सिंह

7) छंद , अलंकार, रस : डॉ उर्मिला पाटिल

8) भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र का संक्षिप्त विवेचन : डॉ. सत्यदेव चौधरी, डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त

❑❑❑

इकाई 1

काव्यभेद (महाकाव्य, प्रगीत, ग़ज़ल)

अनुक्रम

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय – विवेचन

1.3.1 महाकाव्य

1.3.1.1 भारतीय दृष्टि से महाकाव्य

1.3.1.1.1 आचार्य भामह

1.3.1.1.2 आचार्य दण्डी

1.3.1.1.3 रुद्रट

1.3.1.1.4 आचार्य हेमचंद्र

1.3.1.1.5 आचार्य विश्वनाथ

1.3.1.1.6 आचार्य रामचंद्र शुक्ल

1.3.1.1.7 डॉ. बाबू गुलाबराय

1.3.1.1.8 डॉ. शंभूनाथ सिंह

1.3.1.1.9 सुमित्रानंदन पंत

1.3.1.2 महाकाव्य के भारतीय तत्त्व

1.3.1.2.1 कथावस्तु

1.3.1.2.2 पात्र और चरित्र चित्रण (नायक)

1.3.1.2.3 वस्तु व्यापार और परिस्थिति (वर्णन)

1.3.1.2.4 रस और भाव व्यंजना

1.3.1.2.5 छंद

1.3.1.2.6 नाम (शीर्षक)

1.3.1.2.7 उद्देश्य

1.3.2 प्रगीत काव्य

1.3.2.1 प्रगीत शब्द का अर्थ

1.3.2.2 प्रगीत का स्वरूप

1.3.2.3 प्रगीत की परिभाषाएँ

1.3.2.3.1 महादेवी वर्मा

1.3.2.3.2 डॉ. नगेंद्र

1.3.2.3.3 रविंद्रनाथ टागोर

1.3.2.3.4 डॉक्टर गणपती चंद्रगुप्त

1.3.2.3.5 बाबू गुलाब राय

1.3.2.3.6 डॉ. कृष्णदत्त अवस्थी

1.3.2.3.7 रामखेलावन पांडेय

1.3.2.3.8 एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका

1.3.2.3.9 अर्नेस्ट राइस

1.3.2.3.10 हरबर्ट रीड

1.3.2.3.11 हडसन

1.3.2.3.12 हीगेल

1.3.2.3.13 प्रो गुमरे

1.3.2.3.14 रस्कीन

1.3.3.3 प्रगीत काव्य या गीतिकाव्य के तत्त्व

1.3.3.3.1 भावप्रवणता (भाव–तत्त्व)

1.3.3.3.2 संगीतात्मकता

1.3.3.3.3 वैयक्तिकता

1.3.3.3.4 कल्पनाशीलता

1.3.3.3.5 संक्षिप्तता

1.3.3.3.6 रागात्मक अन्विति

1.3.3.3.7 कोमलकांत पदावली का प्रयोग

1.3.3.3.8 सहज भाषा–शैली

1.3.3.3.9 सहज अन्तः प्रेरणा

1.3.3.4 प्रगीत के भेद (प्रकार)

1.3.3.4.1 प्रेम गीत

1.3.3.4.2 व्यंग गीत (Satire)

1.3.3.4.3 शोकगीत (Elegy)

1.3.3.4.4 आख्यान गीत (Ballad)

1.3.3.4.5 संबोधन गीत (Ode)

1.3.3.4.6 प्रयाण गीत (Marching Song)

1.3.3.4.7 राष्ट्र गीत

1.3.3.4.8 भक्ति गीत

1.3.3.4.9 लोकगीत

1.3.3.4.10 चतुर्दशपदी (चतुर्दश–पदी) (Sonnet)

1.3.3.4.11 उपालंभ गीत

1.3.3.4.12 गीतिनाट्य्

1.3.3 ग़ज़ल

1.3.3.1 ग़ज़ल शब्द का अर्थ

1.3.3.2 ग़ज़ल की परिभाषाएँ

1.3.3.2.1 नालंदा विशाल शब्द सागर

1.3.3.2.2 रघुपति सहाय ''फिराक गोरखपुरी''

1.3.3.2.3 डॉ. नगेंद्र

1.3.3.2.4 डॉ. अरशद जमाल

1.3.3.2.5 डॉ. नगेंद्र वशिष्ठ

1.3.3.2.6 डॉ. सरदार मुजावर

1.3.3.2.7 डॉ. मधु खराटे

1.3.3.2.8 डॉ. नरेश

1.3.3.3 ग़ज़ल के रंग

1.3.3.2.1 शेर

1.3.3.2.2 मिसरा

1.3.3.2.3 काफिया

1.3.3.2.4 रदीफ

1.3.3.2.5 मतला

1.3.3.2.6 मकता

1.4 स्वयं – अध्ययन के लिए प्रश्न

1.5 स्वयं – अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

1.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकई पढ़ने के बाद आप,

1. काव्य के विभिन्न भागों से परिचित हो जाएँगे।
2. महाकाव्य विषयक भारतीय तथा पश्चिमी मान्यताओं को समझ सकेंगे।
3. महाकाव्य के भारतीय तथा पश्चिमी तत्वों से अवगत हो जाएँगे।
4. महाकाव्य के तत्वों के आधार पर किसी भी महाकाव्य की समीक्षा करने में समर्थ हो जाएँगे।
5. प्रगीत का स्वरूप, परिभाषाएं, तत्व, भेद आदि से परिचित होंगे।
6. ग़ज़ल शब्द का अर्थ, ग़ज़ल की परिभाषाएं ग़ज़ल के अंग आदि से अवगत हो जाएँगे।
7. महाकाव्य, प्रगीत, ग़ज़ल आदि विधाओं के सृजन की प्रेरणा मिल जाएगी।

1.2 प्रस्तावना :

साहित्य समाज का दर्पण है। वह हमेशा मनुष्य का सहचर बना हुआ है। मनोरंजन तथा ज्ञान का साधन बना हुआ है। साहित्य के अंतर्गत अनेक विधाएँ हैं। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक साहित्य का सृजन हो रहा है। यह कार्य आज भी निरंतर हो रहा है और आगे भी होता रहेगा। युगानुरूप साहित्य बदलता जा रहा है। कविता भी इसके लिए अपवाद नहीं है। हमारे पाठ्यक्रम में महाकाव्य, प्रगीत काव्य तथा ग़ज़ल का समावेश किया गया है। अतः यहाँ हम उन पर विवेचन करेंगे।

1.3 विषय – विवेचन :

अब तक आपने जो पढ़ाई की उसके अंतर्गत अनेक कविताओं का अध्ययन किया होगा लेकिन कभी कार्य के भेदों के बारे में गहराई से सोचा नहीं होगा। बी.ए. भाग दो में अध्ययन करते समय आपने खंडकाव्य

पढ़ा होगा। आधुनिक कविताओं का अध्ययन किया होगा लेकिन महाकाव्य तथा प्रगीत के भेदों के बारे में नहीं सोचा होगा साथ ही आपने ग़ज़ल पढ़ी होगी लेकिन ग़ज़ल के अंगों से आप परिचित नहीं हुए होंगे। इसलिए हम इस इकाई में महाकाव्य क्या है? महाकाव्य विषयक विभिन्न विद्वानों की मान्यताएँ क्या हैं? महाकाव्य के भारतीय तत्व कौन से हैं? प्रगीत काव्य किसे कहते हैं? प्रगीत के तत्व क्या हैं? प्रगीत के भेद कौन से हैं? ग़ज़ल क्या है? ग़ज़ल शब्द का अर्थ क्या है? ग़ज़ल की परिभाषाएँ तथा ग़ज़ल के अंग आदि का विवेचन करेंगे। जिससे आपको इन विधाओं को बेहतर तरीके से समझने में आसानी होगी।

1.3.1 महाकाव्य :

काव्य भेदों के बारे में विभिन्न आचार्यों ने गहन चिंतन के आधार पर अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। रूप रचना या स्वरूप विधान की दृष्टि से काव्य के दो प्रमुख भेद स्वीकार किए गए हैं-

1. प्रबंध काव्य 2. मुक्तक काव्य

प्रबंध काव्य ऐसी सर्जना को कहा जाता है जिसके सभी पद एक ही अन्तर्भूत कथानक के माध्यम से अंतः- संयोजित रहा करते हैं। इसके समग्र स्वरूप में एक ही भाव-संयत विचार की अन्विति एवं एक ही वस्तु की चरम परिणति अंकित की जाती है। प्रबंध काव्य के तीन प्रमुख भेद हैं- 1. महाकाव्य 2. खंडकाव्य 3. एकार्थ काव्य। पाठ्यक्रम के अंतर्गत महाकाव्य का समावेश किया गया है।

महाकाव्य शब्द महत और काव्य इन दो शब्दों के योग से बना है। महाकाव्य एक प्रकार का अर्थ है महत या बहुत बड़ा या विस्तृत काव्य ग्रंथ अथवा सर्वश्रेष्ठ काव्य। जिसमें जीवन का सर्वांगीण रूप विशाल पृष्ठभूमि पर प्रस्तुत किया जाता है।

1.3.1.1 भारतीय दृष्टि से महाकाव्य :

भारतीय काव्यचिंतकों ने महाकाव्य के स्वरूप पर गहन चिंतन एवं अध्ययन किया है। एक ओर महाकाव्य की परिभाषाओं में एकता दिखाई देती है तो दूसरी ओर भिन्नता भी दिखाई देती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि विभिन्न युगों में महाकाव्य विषय चिंतन में परिवर्तन आया । विभिन्न आचार्यों ने युगानुरूप महाकाव्य के लिए मापदंड निर्धारित किए। इसी कारण महाकाव्य की परिभाषाओं में भिन्नता नजर आती है।

1.3.1.1.1 आचार्य भामह :

महाकाव्य की परिभाषा निश्चित करने वाले प्राचीनतम् आचार्य भामह हैं। इन्होंने अपने 'काव्यालंकार' ग्रंथ में महाकाव्य की परिभाषा दी है-

सर्गबद्धो महाकाव्यं महतां च महत्व यत्।
अग्राम्य शब्दमर्थ च सालंकारं सदाश्रयम्।
मंत्र दूत प्रयाणाजिन नायकाभ्युदयश्च वत।
पंचभिः संधि भिर्युक्तं नाति व्याख्येमृध्दियत्।।

इस परिभाषा के आधार पर उन्होंने जिन तत्वों को पकड़ा है वह यह हैं–

1. महाकाव्य में सर्ग बद्धता होनी चाहिए।

2. काव्य का आकार बड़ा होना चाहिए।

3. महाकाव्य का कथानक उदात्त होना चाहिए।

4. महाकाव्य में शब्द चयन और प्रस्तुत विधान उत्कृष्ट होना चाहिए, अर्थात शिष्ट नगर प्रयोग और अलंकृति।

5. महाकाव्य में महान चरित्र और विजयी नायक का समावेश होना चाहिए।

6. महाकाव्य में नाटकीय संधियों का निर्वाह होना चाहिए।

7. महाकाव्य में जीवन के विविध रूपों, अवस्थाओं और घटनाओं का चित्रण होना चाहिए।

8. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से किसी एक फल की प्राप्ति को दिखलाना चाहिए।

9. महाकाव्य में एक प्रधान रस हो, साथ ही अन्य रसों का भी वर्णन हो।

10. महाकाव्य में दरबार, वातावरण, दूतों का योग, युद्ध का अभियान, बाह्य संघर्ष, सूर्य, चंद्र, नदी आदि का वर्णन हो।

11. महाकाल में अलंकारयुक्त, अग्रामीण भाषा का प्रयोग हो।

1.3.1.1.2 आचार्य दण्डी :

दण्डी ने आचार्य भामह की परिभाषा ग्रहण करते हुए महाकाव्य के स्थूल व बाह्य लक्षण पर विशेष बल दिया है। दण्डी ने अपने 'काव्यदर्श' नामक ग्रंथ में महाकाव्य के बारे में लिखा है–

1. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक होना चाहिए।

2. नायक उदात्त एवं चतुर होना चाहिए।

3. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि में से किसी एक फल की प्राप्ति को दिखलाना आवश्यक है।

4. महाकाव्य की भाषा अलंकारयुक्त हो।

5. महाकाव्य आकार में बड़ा होना चाहिए।

6. सर्ग और छंदों पर विशेष ध्यान हो।

7. रस काव्य का प्राण है अर्थात महाकाव्य रसों से भरा हो।

1.3.1.1.3 रुद्रट :

रुद्रट कृत महाकाव्य की परिभाषा संस्कृत के सभी अलंकारवादियों से भिन्न तथा रामायण, महाभारत, एवं प्राकृत–अपभ्रंश के महाकाव्यों की दृष्टि में रखकर बनाई गई प्रतीत होती है। रुद्रट की परिभाषा के अनुसार महाकाव्य के लक्षण निम्न प्रकार से हैं–

1. महाकाव्य की कथा सर्ग बध्द और नाटकीय तत्वों से युक्त होती है।

2. महाकाव्य में प्रसंगानुसार अवांतर कथाएँ होती हैं अर्थात उसमें पुराण और कथा-अख्यायिका के तत्व होते हैं।

3. महाकाव्य में जीवन की समग्रता का चित्रण होता है और किसी प्रधान घटना जैसे- युद्ध या साहसिक कार्य आदि के आश्रय से अलंकृत वर्णन, प्रकृति-चित्रण और विभिन्न नगरों, देशों और भुवनों (स्वर्गादि) के वर्णन का विधान होता है।

4. महाकाव्य का नायक द्विज कुलोत्पन, सर्वगुण संपन्न, महान, वीर और शक्तिमान, नीतिज्ञ और कुशल राजा होता है।

5. महाकाव्य में प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है।

6. महाकाव्य के अंत में नायक की विजय दिखाई जाती है, प्रतिनायक की नहीं।

7. महाकाव्य में महान उद्देश्य जैसे चतुर्थ वर्ग फल की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार रुद्रट ने महाकाव्य के संकीर्ण लक्षणों का नहीं उसके व्यापक और आवश्यक तत्वों का निर्देश किया है।

1.3.1.1.4 आचार्य हेमचंद्र :

हेमचंद्र ने महाकाव्य के लक्षण प्रस्तुत करते हुए अपने पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों की ही पुनरावृत्ति की है। साथ ही इसमें कुछ नवीन सूत्र जोड़कर महाकाव्य के स्वरूप का निरूपण किया है। हेमचंद्र 'समस्तलोकरंजकता' को महाकाव्य का प्रधान उद्देश्य मानते हैं। इनकी द्वितीय मान्यता यह है कि संस्कृत महाकाव्य में सर्ग के स्थान पर आश्वासक में भी कथा का विभाजन हो। समस्त महाकाव्य में इन्होंने एक ही छंद के प्रयोग पर बल दिया है अर्थात संपूर्ण रचना यदि एक ही छंद में लिखी जाए तो दोष नहीं माना जाएगा। इनकी चौथी नवीनता यह है कि महाकाव्य की मूल कथा में नगर, सागर, पर्वत आदि विषयों का समावेश न हो सके तो अवांतर कथाओं के रूप में इनका वर्णन कर इस अभाव की पूर्ति की जा सकती है।

1.3.1.1.5 आचार्य विश्वनाथ :

महाकाव्य की विस्तृत और स्पष्ट परिभाषा आचार्य विश्वनाथ की है। इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों की विशेषताओं का समावेश कर अपने महाकाव्य विषयक मत का व्याख्यान किया है। इनका लक्षण इस प्रकार है -

1. महाकाव्य की कथा सर्गबद्ध होनी चाहिए।

2. महाकाव्य का नायक कोई देवता या धीरोदात्त, कुलीन और छत्रिय हो। एक वंश में उत्पन्न अनेक राजा भी महाकाव्य के नायक हो सकते हैं।

3. महाकाव्य में श्रृंगार, वीर और शांत इन तीनों रसों में से एक प्रधान होना चाहिए और अप्रधान रूप से सभी रस प्रयुक्त होने चाहिए।

4. महाकाव्य में नाटक की सभी संधियों का समावेश होना चाहिए।

5. महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक अथवा किसी सज्जन से संबद्ध रहना चाहिए।

6. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गों में से कोई एक महाकाव्य का फल होना चाहिए।

7. महाकाव्य के प्रारंभ में नमस्कारात्मक, वस्तुनिर्देशात्मक या आशीर्वाद के रूप में मंगलाचरण का विधान होना चाहिए।

8. महाकाव्य में सज्जन की प्रशंसा और दुर्जन निंदा होनी चाहिए।

9. महाकाव्य में न तो अत्यंत बड़े और ना अत्यंत छोटे आठ से अधिक सर्ग हो और प्रत्येक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग किया जाना चाहिए किंतु सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन होना चाहिए।

1.3.1.1.6 आचार्य रामचंद्र शुक्ल :

'महाकाव्य का इतिवृत्त व्यापक और सुसंगठित होना चाहिए, सामाजिक को आंदोलित करनेवाली वस्तुओं और व्यापारों का चित्रण होना चाहिए, रसानुभूति में सहायक, विशद, प्रांजल तथा सुष्ठु भाव व्यंजना होने चाहिए। संवाद रोचक, नाटकीय तथा औचित्य पूर्ण होने चाहिए।'

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी ने महाकाव्य में केवल चार तत्वों की महत्ता स्वीकार की है- इतिवृत्त, वस्तु व्यापार, वर्णन, भावव्यंजना और संवाद। शुक्ल जी ने अप्रत्यक्ष रूप से महाकाव्य में संदेश की महानता और शैली की प्रौढ़ता का उल्लेख किया है।

1.3.1.1.7 डॉ. बाबू गुलाबराय :

'महाकाव्य यह विषयप्रधान काव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।'

1.3.1.1.8 डॉ. शंभूनाथ सिंह :

'महाकाव्य वह छंदबद्ध रचना है, जो तीव्र कथा-प्रवाह के साथ-साथ मानवीय अनुभूतियों का लेखा-जोखा रखती है।'

1.3.1.1.9 सुमित्रानंदन पंत :

'महाकाव्य मानव सभ्यता के संघर्ष तथा सांस्कृतिक विकास में जीवंत पर्वताकार दर्पण है, जिसमें मुख देखकर मानवता अपने को पहचानने में समर्थ होती है।'

उपर्युक्त आचार्यों की विवेचना के आधार पर महाकाव्य विषयक भारतीय दृष्टिकोण का सामान्य रूप प्रस्तुत किया जा सकता है और उनके प्रमुख तत्वों की मीमांसा की जा सकती है।

1.3.1.2 महाकाव्य के भारतीय तत्त्व :

महाकाव्य संबंधी भारतीय धारणा का विश्लेषण करने पर निम्नांकित तत्व बनाए जा सकते हैं।

1.3.1.2.1 कथावस्तु :

काव्य में कथावस्तु अनिवार्य तत्व है। लगभग सभी भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में कथा का होना आवश्यक बताया है। महाकाव्य की कथावस्तु इतिहास पुराण और लोक प्रसिद्ध कथा के आधार पर होनी चाहिए। महाकाव्य का कलेवर विशाल होता है, उसमें नायक के जीवन की संपूर्ण झांकी प्रस्तुत की जाती है। कथावस्तु का प्राण कोई एक घटना होती है। उसी घटना पर आधारित पूरी कथा होती है। प्रारंभ से अंत तक चलने वाली कथा को मुख्य कथानक कहा जाता है। मुख्य कथा का विकास करने के लिए बीच-बीच में प्रासंगिक कथाओं का होना भी महत्वपूर्ण होता है। महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से होना चाहिए। मंगलाचरण तीन प्रकार का होता है- आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक और वस्तुनिर्देशात्मक। महाकाव्य का आरंभ मंगलाचरण से इसलिए किया जाना चाहिए कि महाकाव्य विशाल होता है। इस विशाल काव्य रचना को पूरा करने में कोई बाधा ना आए, निर्विघ्न रुप से महाकाव्य पूरा हो जाए इसलिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। महाकाव्य की कथावस्तु कम से कम आठ वर्गों में विभाजित होनी चाहिए। महाकाव्य के कथानक के लिए ज्यादा से ज्यादा तीस सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु को सर्गों में विभाजित किया जाना आवश्यक है ताकि नाटक की पांचों संधियों की पद्धति सरलता से अपनाई जा सके। नाट्य सन्धियों को अपनाने का कारण यह है कि नाटक की तरह महाकाव्य में संगठितता आ जाए। प्रत्येक सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन किया जाना अपेक्षित है। सर्ग के अंत में आगामी सर्ग की कथावस्तु की सूचना होनी चाहिए। महाकाव्य का प्रत्येक सर्ग एक दूसरे से बंधा होना चाहिए। महाकाव्य की कथावस्तु उदात्त होनी चाहिए। मुख्य फल प्राप्ति के बाद कथानक पूरा हो जाता है। कथावस्तु की समाप्ति पर महाकाव्यकार की कोई महत्वपूर्ण पंक्ति होती है उसे 'भरतवाक्य' कहते हैं।

1.3.1.2.2 पात्र और चरित्र चित्रण (नायक) :

महाकाव्य का दूसरा प्रधान तत्व नायक अथवा अन्य प्रमुख पात्रों का चरित्र चित्रण है । भारतीय आचार्यों के अनुसार महाकाव्य में नायक महत्वपूर्ण स्थान है। महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए। महाकाव्य का नायक कोई देवता या उच्च कुल में उत्पन्न क्षत्रिय राजा होना चाहिए। नायक महाकाव्य के सभी प्रसंगों से जुड़ा होना चाहिए। महाकाव्य का नायक उदात्त, गंभीर, कीर्तिसंपन्न, व्यवहार कुशल, धर्मप्रिय, न्यायप्रिय कलाप्रिय, उत्साही, पराक्रमी, शक्तिशाली होना चाहिए। नायक का चरित्र समाज में सद्प्रवृत्ति का विकास करने वाला होना चाहिए। प्रतिकूल परिस्थिति में भी विजय हासिल करने वाला हो। महाकाव्य में नायक के साथ-साथ अन्य पात्रों का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। महाकाव्य में नायिका का महत्वपूर्ण स्थान है। वह नायक की प्रेमिका अथवा पत्नी होती है। भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य में खलनायक को महत्वपूर्ण माना है। नायक के कार्य का विरोध करने वाला पात्र खलनायक होता है। प्रतिनायक या खलनायक कथावस्तु में संघर्ष को बढ़ाता है, जिससे नायक के चरित्र का विकास होता है। महाकाव्य में उपर्युक्त तीन पात्रों के अतिरिक्त अन्य

पात्र भी होते हैं। इन पात्रों के माध्यम से विविध क्षेत्रों का वर्णन किया जाता है। इतना ही कहा जा सकता है कि महाकाव्य के नायक का स्थान सर्वोच्च या सर्वश्रेष्ठ होना चाहिए।

1.3.1.2.3 वस्तु व्यापार और परिस्थिति (वर्णन) :

अलंकृत महाकाव्य का प्रमुख लक्षण यही है कि उसमें वस्तु व्यापार और परिस्थिति का वर्णन हो। इसके अंतर्गत प्रकृति चित्रण जैसे- प्रेम विवाह, मिलन, कुमारोदय, संगीत, मधुपान, गोष्ठी, राजकाल मंत्रणा, यज्ञ, सैनिक अभियान, युद्ध प्रसंग, ऋतुओं का वर्णन, उत्सवों का वर्णन आदि। इस प्रकार के वर्णन से महाकाव्य में जीवंतता आती है। महाकाव्य में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियों का चित्रण मिलता है। महाकाव्य में विविधता दिखाने के लिए यह तत्व अनिवार्य है।

1.3.1.2.4 रस और भाव व्यंजना :

रस महाकाव्य का महत्वपूर्ण तत्व है। महाकाव्य में सभी रसों का वर्णन होना चाहिए। रस की उत्पत्ति पात्रों और परिस्थितियों के संपर्क तथा संघर्ष एवं प्रतिक्रिया से होती है। रस योजना का अभिप्राय पात्रों की मानसिक स्थिति का वर्णन करना भी है। महाकाव्य में प्रधानत: श्रृंगार, वीर और शांत रस का वर्णन होना आवश्यक है। इन तीनों में से कोई एक प्रधान रस होना चाहिए, अन्य रस गौण रस के रूप में आने चाहिए। रस के कारण महाकाव्य हृदयस्पर्शी और हर्षदायक बनता है। भाव व्यंजना भी महाकाव्य में आवश्यक है, पर वह संवाद रूप में न होकर कवि वर्णन के रूप में होती है।

1.3.1.2.5 छंद :

महाकाव्य सर्गबद्ध तथा छंद बद्ध रचना है। महाकाव्य की कथा का विकास करने के लिए छंद का होना अनिवार्य है। छंद के कारण रसप्रवाह आता है। इसके लिए एक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग किया जाना चाहिए। सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन अपेक्षित है। अंतिम छंद में आने वाले सर्ग की कथावस्तु की सूचना होनी चाहिए। प्रत्येक सर्ग में स्वतंत्र छंद का प्रयोग हो। कभी-कभी चमत्कार वैविध्य एवं अद्भुत रस की निष्पत्ति के लिए एक सर्ग में अनेक शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। छंद के कारण महाकाव्य में एक प्रकार की प्रभावोत्पादकता आती है। गति बनी रहती है। नादमाधुर्य आता है। महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में अलग-अलग छंद होता है लेकिन वे एक दूसरे से संबंधित रहते हैं, पूरक रहते हैं। लगभग सभी आचार्यों ने महाकाव्य में छंद को अनिवार्य माना है।

1.3.1.2.6 नाम (शीर्षक) :

महाकाव्य का शीर्षक या नामकरण महाकाव्य के नायक, नायिका, विषयवस्तु के आधार पर होना आवश्यक है। महाकाव्य का शीर्षक लेखक के उद्देश्य को स्पष्ट करनेवाला होना चाहिए। महाकाव्य का शीर्षक विसंगत ना हो। शीर्षक कथावस्तु के अनुकूल होना चाहिए, औचित्यपूर्ण तथा अर्थपूर्ण होना चाहिए। महाकाव्य का शीर्षक या नाम प्रभावशाली और उदात्त होना चाहिए।

1.3.1.2.7 उद्देश्य :

कोई भी रचना निरुद्देश नहीं होती, हर रचना के पीछे कोई ना कोई उद्देश्य आवश्यक होता है। महाकाव्य तो सोद्देश्य रचना है। महाकाव्य महानता का प्रकाशक होता है। भारतीय आचार्यों ने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि में से किसी एक के फल की प्राप्ति को उद्देश्य माना है। नायक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमेशा संघर्षरत रहता है। महान संदेश देना, किसी व्यक्ति के महान कार्य को उद्घाटित करना, नायक के चरित्र पर प्रकाश डालना, नायक की विजय दिखलाना, असत्य पर सत्य की विजय दिखलाना, सत चरित्र का निर्माण करना, लोकरंजन, राष्ट्रभक्ति, नैतिक आदर्श की स्थापना करना, मानवतावादी मूल्यों की रक्षा करना, नायक के चरित्र से प्रेरणा देना आदि कई उद्देश्य महाकाव्य लेखन के पीछे हो सकते हैं।

1.3.2 प्रगीत काव्य :

भारतीय आचार्य ने काव्य के दो भेद किए हैं- प्रबंध काव्य और मुक्तक काव्य। प्रबंध काव्य में कथा के सूत्र में सारे पद बँधे हुए होते हैं। इसके विरूद्ध मुक्तक काव्य में प्रत्येक पद स्वतंत्र होता है। मुक्तक काव्य में एक भाव, एक अनुभूति या एक कल्पना का चित्रण होता है। मुक्तक में कोई कथा सूत्र नहीं होता। प्रत्येक पद अपने आप में पूर्ण भाव का अर्थ व्यक्त करता है। प्रत्येक पद अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है। मुक्त काव्य के दो भेद किए जाते हैं-

1. पाठ्यमुक्तक
2. गेयमुक्तक

पाठ्य मुक्तक :

पाठ्य मुक्तक रचनाओं में विषय की प्रधानता होती है। इसमें विभिन्न विषयों पर लिखी गई छोटी-छोटी विचार प्रधान रचनाएँ होती हैं, जिनमें किसी प्रसंग को लेकर भावानुभूति का चित्रण होता है। अथवा किसी विचार या रिति का वर्णन किया जाता है। 'तार सप्तक की रचनाएँ', सुमित्रानंदन पंत की 'पतझड़' सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी की 'भिक्षुक, वह तोड़ती पत्थर' आदि रचनाएँ इसी के अंतर्गत आती है।

गेय मुक्तक :

इसे वित्तीय प्रगती काव्य भी कहते हैं यह अंग्रेजी के लिरिक का समानार्थी है। इसमें भाव प्रवणता, आत्माभिव्यक्ति सौन्दर्यमय कल्पना, संक्षिप्त संगीतात्मकता की प्रधानता होती है। कबीर, तुलसी, रहीम के भक्ति एवं नीति के दोहे तथा बिहारी, मतिराम, देव आदि की रचनाएँ इसी कोटि में आती है।

1.3.2.1 प्रगीत शब्द का अर्थ :

काव्य के विभिन्न रूपों के अंतर्गत 'प्रगीत' काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रचलित शब्द 'गीत' में 'प्र' उपसर्ग जोड़कर बनाया गया है। शब्दकोशों में भी प्रगीत का अर्थ 'गीत' या 'गान' दिया है। प्रगीत को अंग्रेजी में (लिरिक) Lyric कहा जाता है। प्रगीत को गीत, गीतिकाव्य आदि नामों से भी अभिहित किया जाता है। प्रगीत में भावों की प्रधानता रहती है। मानव सभ्यता में गीतकाव्य की परंपरा बड़ी प्राचीन मानी गयी है।

1.3.2.2 प्रगीत शब्द का अर्थ :

गीतिकाव्य को प्रगीत भी कहा जाता है। यह एक सर्वाधिक नवीन एवं सशक्त विधा है। भरत के नाट्यशास्त्र में गीत शब्द का प्राचीनतम प्रयोग मिलता है। आचार्य हेमचंद्र ने इस संबंध में लिखा है – ''गीतं शब्दित गानयो:।.'' मुक्तक काव्य के अंतर्गत गीतिकाव्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है। गाया जा सकने वाला काव्य गीतिकाव्य कहलाता है, परंतु प्रत्येक गाए जाने वाले काव्य को गीतिकाव्य नहीं कहा जा सकता। जिस गीत में तीव्र भावानुभूति, संगीतात्मकता, वैयक्तिकता आदि गुण होते हैं, उसे गीतिकाव्य कहते हैं।

गीतिकाव्य में कवि अपने व्यक्तिगत सुख–दुख की तीव्रतम अनुभूति को व्यक्त करने के लिए संगीत प्रधान कोमल शब्दावली को चुनता है। इसमें सरसता, कोमलता, रागात्मकता, लाघव, मार्मिकता और वैयक्तिकता के गुण विद्यमान रहते। गीतिकाव्य कवि के हृदय का स्पंदन होता है, जिसमें वह प्रेम, कलह, वेदना, हर्ष, विषाद आदि का चित्रण करता है। इसकी रचना करने के लिए कवि बाह्य जगत् को अपने अंतःकरण में ले जाकर इसे भावपूर्ण बनाता है। गीत के रूप में उसकी आत्माभिव्यंजना अत्यंत सशक्त होती है। वह शब्द साधना के साथ–साथ स्वर साधना भी करता है।

1.3.2.3 प्रगीत की परिभाषाएँ :

विद्वानों ने गीतिकाव्य को निम्न रूप में परिभाषित करने का प्रयास किया है–

भारतीय विचारकों के गीतिकाव्य संबंधी मत –

1.3.2.3.1 महादेवी वर्मा – ''सुख–दुख की भावावेगमयी अवस्था–विशेष का गिने–चुने शब्दों में स्वर–संधान से उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीति है।''

1.3.2.3.2 डॉ. नगेंद्र : ''गीतिकाव्य की आत्मा है भाव, जो किसी प्रेरणा के भार से दबकर एक साथ गीत में फूट निकलता है।''

1.3.2.3.3 रविंद्रनाथ टैगोर : ''मन में जब एक वेगवान अनुभव का उदय होता है तब कवि से गीत काव्य में प्रकाशित किये बिना नहीं रह सकते।''

1.3.2.3.4 डॉक्टर गणपति चंद्रगुप्त : ''गीतिकाव्य एक ऐसी लघु आकार एवं मुक्तक शैली में रचित रचना है जिसमें कवि निजी अनुभूतियों या किसी एक भाव–दशा का प्रकाशन गीत या लयपूर्ण कोमल पदावली में करता है।''

1.3.2.3.5 बाबू गुलाब राय : ''प्रगीत काव्य में कवि जो कुछ कहता है, अपने निजी दृष्टिकोण से कहता है। उसमें निजीपन के साथ रागात्मकता होती है। रागात्मकता में तीव्रता बनाए रखने के लिए उसका अपेक्षाकृत छोटा होना आवश्यक है आकार की इस संक्षिप्तता के साथ भाव की एकता और अन्विति लगी रहती है। गीतिकाव्य में विविधता रहती है किंतु वह प्राय: एक ही केंद्रीय भाव की पुष्टि के लिए होती है।''

1.3.2.3.6 डॉ. कृष्णदत अवस्थी : ''गीतिकाव्य कवि की व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूति का वह प्रभावपूर्ण संगीतात्मक प्रकाशन है, जिसमें प्रेषणीयता, घनत्व, लाघव स्पष्टता एवं ध्वन्यात्मकता के गुणों का समुचित समावेश हो।''

1.3.2.3.7 रामखेलावन पांडेय : ''सजीव भाषा में व्यक्ति के आंतरिक भावों की सक्षम अभिव्यंजना संगीतात्मकता के आग्रह के साथ जिसमें होती है वह गीतिकाव्य है।''

पाश्चात्य विचारकों के गीती काव्य संबंधी मत –

1.3.2.3.8 एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका : "Lyricaal poetry a general tem for all poetry which is, or can be supposed to be, susceptible of being sung to the accompaniment of a musical instrument."

1.3.2.3.9 अर्नेस्ट राइस : ''सच्चा गीत वही है जो भावात्मक विचार का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो।''

1.3.2.3.10 हरबर्ट रीड : ''गीत का मूल अर्थ तो लुप्त हो गया है लेकिन उसका व्यावहारिक पक्ष प्रचार में आ गया है। अब गीत से उस रचना का बोध होता है जिसमें सूक्ष्म अनुभूतियां हों, जो एकांत आनंद से प्रबुद्ध होती हैं।''

1.3.2.3.11 हडसन : ''गीतिकाव्य की सबसे बड़ी कसौटी वैयक्तिक ता की छाप है। किंतु वह व्यक्ति वैचित्र्य में समाहित न रहकर व्यापक मानवीय भावनाओं पर ही आधारित होती है, जिसमें प्रत्येक पाठक उसमें अभिव्यक्त भावनाओं एवं अनुभूतियों से तादात्म्य स्थापित कर सकें।''

1.3.2.3.12 हीगेल : ''गीतिकाव्य का एकमात्र उद्देश्य शुद्ध कलात्मक शैली में आंतरिक जीवन की विभिन्न अवस्थाओं, उसकी आशाओं, उसके आह्लाद की तरंगों और उसकी वेदना की चीत्कारों का उद्घाटन करना है।''

1.3.2.3.13 प्रो गुमरे : ''गीति काव्य वह अंतर्वृत्ति निरूपिणी कविता है जो वैयक्तिक अनुभूतियों से पोषित होती है, जिसका संबंध घटनाओं से नहीं अपितु भावनाओं से होता है तथा जो किसी समाज की परिष्कृत अवस्था से निर्मित होती है।''

1.3.2.3.14 रस्कीन : ''गीतिकाव्य कवि की निजी अनुभूतियों का प्रकाशन होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर गीतिकाव्य की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं, जो इस प्रकार से है–

1. इसमें व्यक्तिगत अनुभूति की प्रमुखता होती है।
2. प्रगीत काव्य का संबंध बुद्धि से न होकर हृदय से होता है।
3. इसकी शैली प्रवाहमयी होती है।

4. इसमें भावप्रवणता होती है।

5. प्रगीत काव्य में गेयता एवं संगीतात्मकता होती है।

6. इसकी भाषा सरल, मधुर और कोमल होती है।

7. इसमें मार्मिकता, संक्षिप्तता होती है।

8. इसमें पूर्वापार संबंध नहीं होता

9. इसमें सहज अन्तः प्रेरणा होती है।

10. प्रगीत में समाहित प्रभाव होता है।

1.3.3.3.3 प्रगीत काव्य या गीतिकाव्य के तत्त्व :

1.3.3.3.1 भावप्रवणता (भाव–तत्त्व) :

भाव प्रगीत की आत्मा है। गीत में हृदय की कोमल भावनाओं का स्फुरण होता है। अतः भावप्रवणता ही गीतिकाव्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता कही जाती है। हृदय की सुख–दुःखात्मक वृत्तियाँ ही गीतिकाव्य का आधार बनती हैं। कवि के अंतर की अनुभूति जब घनीभूत होकर अपनी तीव्रता की चरम सीमा पर पहुंच जाती है तब गीतिकाव्य का जन्म होता है। प्रत्येक प्रगीत में एक भाव होता है। भाव–प्रवणता प्रगीत के प्रभाव में वृद्धि करती है।

इस विषय में प्रसिद्ध छायावादी कवि पंत लिखते हैं

''वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
उमड़कर आंखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान ।।''

1.3.3.3.2 संगीतात्मकता :

संगीतात्मकता अथवा गेयता प्रगीत काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व माना जाता है। अनुभूति की तीव्रता के कारण प्रगीत में संगीतात्मकता आ जाती है। प्रगीत में संगीत का प्रवाह अपने आप आ जाता है। प्रगीत में एक लय और प्रवाह होता है। इसमें शास्त्रीय शैली का आधार लेना आवश्यक नहीं है। नाद सौंदर्य पर ध्यान देने की आवश्यकता रहती है। यह नाद सौंदर्य कोमलकांत पदावली, वर्णमैत्री आदि द्वारा साध्य होती है। यह नाद सौंदर्य शब्द संगीत का जनक होता है। संगीतात्मकता के कारण गेयता अपने आप आ जाती है। संसार की सभी भाषाओं के श्रेष्ठ गीत गेय हैं।

1.3.3.3.3 वैयक्तिकता :

प्रगीत व्यक्ति प्रधान काव्य है। वैयक्तिकता से ही गीत में प्रभावकारिता आती है। इसे आत्मतत्व भी कहा जाता है। जब कवि के हृदय में आशा–निराशा, हर्ष–विषाद, सुख–दुख आधी मनोवेगों का ज्वार तीव्र गति से उमडता है, तब कवि उसे व्यक्त करने के लिए विवश हो जाता है। वैयक्तिकता का अर्थ एक तो कवि की नितांत अर्थात व्यक्तिगत अनुभूति है, जो कवि द्वारा भोगे जा रहे प्रकृत या व्यावहारिक जीवन से प्राप्त होती है।

वैयक्तिक अनुभूति जितनी तीव्र होती है उतना ही गीत रोचक, रसात्मक एवं ग्राह्य लगता है। उत्कट भाव कवि का संपूर्णतः निजी होना चाहिए। वह निजत्व ही वैयक्तिकता का समावेश करता है। गीतिकाव्य के स्वरुप में वैयक्तिकता के लिए हडसन लिखते है, 'वैयक्तिकता की छाप गीतिकाव्य की सबसे बड़ी कसौटी है किन्तु वह व्यक्ति वैचित्र्य में सीमित न रहकर व्यापक मानवी भावनाओं पर आधारित होती है जिससे पाठक उसमें अभिव्यक्त भावनाओं से तादात्म्य स्थापित कर सके।'

1.3.3.3.4 कल्पनाशीलता :

गीतिकाव्य में कवि अपनी अनुभूतियों को सौंदर्यमयी कल्पना के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इसके लिए वह रूप-विधान, बिंब विधान, प्रतीक, अलंकार आदि का आश्रय लेता है। ऐसा करने से उसकी रचना में अपूर्व सौंदर्य का सृजन हो जाता है। अतः गीतिकाव्य की सृष्टि के लिए सौंदर्यमयी कल्पना का प्रयोग नितांत आवश्यक है।

1.3.3.3.5 संक्षिप्तता :

प्रगीत का एक अन्य प्रमुख तत्व संक्षिप्तता है। प्रगीत का आकार अत्यंत संक्षिप्त होता है। गीति में प्रबंधात्मक विस्तार नहीं होता, वह तो सदैव आकार में छोटा होता है। हिंदी में रासो ग्रंथ तथा रामचरितमानस, पद्मावत आदि प्रबंधात्मक होकर भी गेय हैं, लेकिन यह ग्रंथ विस्तार के कारण गीत नहीं कहे जा सकते। गीति में कवि अपनी खंड अनुभूति को व्यक्त करता है। यह अनुभूति सघन होने के साथ-साथ मार्मिक होती है। यह सघनता और मार्मिकता ही कवि की रचना को गीतिकाव्य का रूप प्रदान करती है। यदि कवि गीतिकाव्य में भावना को विस्तार देगा या कल्पना के कृत्रिम प्रयोग से अनुभूति वर्णन का विस्तार करेगा तो उसके गीतिकाव्य का प्रभाव सघनता व मार्मिकता के कम हो जाने के कारण नष्ट हो जाएगा।

1.3.3.3.6 रागात्मक अन्विति :

रागात्मकता अर्थात प्रेममय, प्रीतिवर्धक; तो अन्विति का तात्पर्य है परस्पर सम्बद्धता। भावान्विति तात्पर्य है जहाँ भावात्मकता और संवेगात्मक एकता हो। प्रेम मनुष्य जीवन की सबसे अनमोल धरोहर है। काव्य यही प्रेम सौन्दर्यानुभूति का कारक होता है। गीत में गीतकार अपने निजी भाव की अभिव्यक्ति करता है। कवि के मन में जो मूलभाव रागात्मकता को लेकर प्रथम पंक्ति में प्रकट होता है, आनेवाली पंक्तियों में उसका विस्तार होता है। गीत में आदि से अंत तक एक ही मनोराग व्याप्त होता है। रागात्मक अन्विति गीत के लिए आवश्यक है।

1.3.3.3.7 कोमलकांत पदावली का प्रयोग :

गीतिकाव्य के लिए कमलकांत पदावली का होना आवश्यक है। गीतिकाव्य में कोमल भावनाएं होती हैं। अतः कवि को उन भावनाओं के अनुसार कोमल और सुंदर कलात्मक भाषा का प्रयोग करना होता है। कबीर, सूर, तुलसी, मीराबाई, विद्यापति आदि कवियों के गीतों में कोमलकांत शब्दावली का स्वाभाविक व प्रभावशाली प्रयोग मिलता है। आधुनिक हिंदी कविता में महादेवी वर्मा के गीतों में भी यही विशेषता देखी जा

सकती है। आदिकालीन कवि विद्यापति और आधुनिक कवयित्री महादेवी वर्मा को संयुक्त रूप से हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गीतिकार कहा जा सकता है।

1.3.3.3.8 सहज भाषा–शैली :

भाव के अनुकूल कोमल–कांत,ओजस्वी एवं सहज–स्फुटित भाषा का महत्व ही इसमें स्वीकार किया जाता है। सामान्यतः गीति में कठोर एवं कर्ण–कटु लगनेवाले वर्णो, शब्दों का प्रयोग वर्जित माना जाता है। दुर्बोध और दार्शनिक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसमें वर्ण शब्द योजना भाव के अनुकूल रहनी चाहिए, जिससे वर्णित भाव के औदात्य की समग्रतः रक्षा संभव हो सके।

1.3.3.3.9 सहज अन्त: प्रेरणा :

प्रगीत में वैयक्तिकता होती है। भावप्रवणता होती है। इसी कारण गीत में सहज अन्तः प्रेरणा आवश्यक होती है। गीत में कोरी कल्पना न हो। कोरी कल्पना से कुछ हासिल नहीं होता। जब गीतकार आवेश के रूप में हार्दिकता को व्यक्त नहीं करता तब तक गीत को सफल नहीं माना जा सकता।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रगीत या गीतिकाव्य कवि के हृदय की मार्मिक अनुभूतियों का संगीतात्मक चित्रण है। वैयक्तिकता व संगीतात्मकता के अतिरिक्त मार्मिकता, भाव–प्रवणता, संक्षिप्तता, सौंदर्यमयी कल्पनाशीलता, कोमलकांत पदावली का प्रयोग आदि गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएं कही जा सकती हैं।

1.3.3.4 प्रगीत के भेद (प्रकार) :

प्रगीत 'भावप्रधान' और 'विचारप्रधान' होते हैं। भावप्रधान गीतों में कवि के मानसिक उद्वेग की प्रधानता होती है। विचार प्रधानगीतों में विचार की प्रधानता होती है। प्रगीत का वर्गीकरण वृत्ति, शैली, आकार आदि के आधार पर किया जाता है। प्रगीत के भेद निम्नांकित हैं।

1.3.3.4.1 प्रेम गीत :

प्रेम गीत प्रगीत का सबसे प्राचीन रूप है। विश्व का प्राचीन साहित्य प्रेमगीतों में ही उपलब्ध है। प्रेमगीत में संयोग और वियोग दोनों पक्षों का चित्रण रहता है। प्रेम गीत का मूलाधार विरहपक्ष है। इस प्रकार के गीतों में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रहती है। 'रामायण' और 'मेघदूत' में अनेक सुंदर गीत मिलते हैं। प्रेम गीतों का सृजन करने वालों में विद्यापति, सूरदास, घनानंद, रसखान, आलम, देव आदि के नाम लिए जा सकते हैं। आधुनिक युग में प्रसाद, पंत, निराला, हरिवंशराय बच्चन आदि ने प्रेमगीत लिखे हैं।

1.3.3.4.2 व्यंग गीत (Satire) :

कवि या गीतकार अपनी खुली आँखों से समाज को देखता है। वह समाज की खटकनेवाली बात पर, विसंगति पर मीठी चुटकी लेता है। अर्थात व्यंग के माध्यम से प्रहार करता है। इसमें उसकी भावना समाज सुधारक की होती है। व्यंग गीत को अंग्रेजी में Satire कहते हैं। व्यंग गीत के उदाहरण के रूप में कवि निराला की

'कुकुरमुत्ता' कविता को ले सकते हैं। पूँजीपतियों द्वारा समाज का शोषण कैसे किया जाता है यह इस कविता में दिखाया गया है। इसमें पूँजीपतियों के शोषण की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है। इसी प्रकार तुलसीदास ने भी परशुराम संवाद में अपनी व्यंग व्यक्ति का परिचय दिया है। इसी तरह नागार्जुन के 'प्रेत का बयान' कविता में व्यंग दिखाई देता है। समकालीन हिंदी कविता व्यंग का उत्तम नमूना है।

1.3.3.4.3 शोकगीत (Elegy) **:**

शोकगीत को अंग्रेजी में Elegy कहा जाता है। हिंदी में इसका सूत्रपात अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से हुआ है। शोकगीत में करुण रस की प्रधानता होती है। इसी प्रधानता को देखकर कुछ विद्वान इसे 'करुण गीत' नाम से भी संबोधित करते हैं। शोकगीत के विषय में वयक्तिक प्रेम विरह, निराशा, मानसिक क्षोभ, द्वेष, जाति का विनाश आदि हो सकते हैं। अपने किसी आत्मीय व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर या किसी महान नेता की मृत्यु हो जाने पर शोक विह्वल होकर जो कविता लिखी जाती है उसे 'शोकगीत' कहते हैं। शोकगीत में कृत्रिमता नहीं होती। लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी आदि नेताओं की स्मृति में लिखे गए गीत शोकगीत के अंतर्गत आते हैं। शोकगीत के उदाहरण के रूप में महाप्राण निराला की 'सरोज स्मृति' कविता को लिया जा सकता है। निराला जी की एकमात्र पुत्री सरोज की मृत्यु पर लिखी कविता शोकगीत का अनूठा उदाहरण है।

1.3.3.4.4 आख्यान गीत (Ballad) **:**

आख्यान गीत में किसी वीर योद्धा की वीरता का गुणगान होता है। इसे वीर गीत नाम से भी पहचाना जाता है। इसके वर्णन में प्रवाहमयता होती है। गति की स्वच्छंदता होती है। इस प्रकार की गीतों में कथा और संगीत का मिश्रण होता है। आख्यान गीतों की भाषा प्रसाद और ओज गुणों से युक्त होती है। आख्यान गीत में साहित्यिकता, नाट्यमयता, स्वाभाविकता होती है। इस गीत को सुनने के बाद पाठकों में भी उत्साह का संचार होता है। आख्यान गीत के उदाहरण के रूप में सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झांसी की रानी' नामक कविता को देखा जा सकता है।

1.3.3.4.5 संबोधन गीत (Ode) **:**

संबोधन गीत को अंग्रेजी में Ode कहा जाता है। संबोधन गीत में गीतकार या कवि किसी को संबोधित करते हुए अपने भावों को अभिव्यक्त करता है। इसकी शैली उदात्त होती है। प्राचीन काल में भी किसी दूत, दूति अथवा पक्षी को संबोधित कर के गीत लिखे जाते थे। कालिदास के 'मेघदूत' में यक्ष मेघ को संबोधित करके अपनी मनोदशा का का वर्णन करता है। निराला की 'यमुना के प्रति' कविता भी इसके अंतर्गत आती है ।

1.3.3.4.6 प्रयाण गीत (Marching Song) **:**

जब कोई सेना युद्ध के लिए निकलती है, तब उनका उत्साह बढ़ाने के लिए जो गीत गाये जाते हैं उसे प्रयाण गीत कहते हैं। इस प्रकार के गीतों में एक लय होती है। अंतः स्फूर्ति होती है। अंग्रेजी में इसे Marching Song कहते है। जयशंकर प्रसाद का 'हिमाद्रि तुंग भृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती' नामक प्रयाण गीत है।

1.3.3.4.7 राष्ट्र गीत :

आजकल राष्ट्र गीतों की रचना हो रही है। इस प्रकार के गीतों में राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना प्रकट की जाती है। इन गीतों में सांस्कृतिक महिमा का वर्णन होता है। इस प्रकार के गीतों के माध्यम से राष्ट्र का गौरव गान किया जाता है। राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया जाता है। राष्ट्र गीतों से लोगों के बीच में चेतना जागृत की जाती है। जयशंकर प्रसाद जी ने 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' नामक राष्ट्रीय गीत लिखा है। इस गीत में प्रसाद जी ने भारत की संस्कृति एवं प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है। इसी तरह पंत मैथिलीशरण गुप्त, निराला आदि कवियों ने भी राष्ट्रीय गीत लिखे हैं।

1.3.3.4.8 भक्ति गीत :

भक्ति गीत में अपने आराध्य के प्रति निष्ठा, आस्था, भक्तिभाव आदि का वर्णन होता है। भक्ति गीत में समर्पण भाव महत्वपूर्ण होता है। हिंदी भक्तिकाल में इस प्रकार के गीतों का सृजन अधिक मात्रा में हुआ है। कबीर, तुलसी, मीरा, सूरदास, रविदास आदि ने अनेक भक्ति गीत लिखें हैं।

1.3.3.4.9 लोकगीत :

लोकगीत अत्यंत सहज स्वाभाविक ढंग से अभिव्यक्त किए जाते हैं क्योंकि लोकगीतों के रचयिता अनपढ़ होते हैं। इसी कारण इन गीतों में अलंकरण की प्रवृत्ति कम होती है। इसमें सजीवता होती है। इस प्रकार के गीत शुद्ध गेयात्मक होते हैं। लोकगीतों में स्थानीय संस्कृति का चित्रण होता है। इसमें संगीत तत्व प्रधान होता है। लोकगीत प्राय: सामूहिक रूप में गाए जाते हैं। अतः इसे 'कोरस गीत' भी कहते हैं। हिंदी में इस प्रकार के गीतों की संख्या बहुत कम है। लोकगीतों में अनेक प्रकार होते हैं जैसे- धार्मिक गीत, संस्कार गीत, उत्सव गीत, ऋतु गीत आदि।

1.3.3.4.10 चतुर्दशपदी (चतुर्दश-पदी) (Sonnet) :

चतुर्दश-पदी को अंग्रेजी में Sonnet कहा जाता है। चतुर्दशपदी पाश्चात्य ढंग के आधार पर लिखी जाती है। इसे विशिष्ट नियमों के अनुसार लिखा जाता है। इसमें 14 पंक्तियां होती हैं। चतुर्दशपदी में विचार तत्व की प्रधानता होती है। इस प्रकार की गीतों में भावना विस्तार के लिए कोई स्थान नहीं होता। भावनाओं पर नियंत्रण आवश्यक होता है। पंक्तियों की संख्या सीमित होने के कारण इस प्रकार की गीतों में कृत्रिमता की संभावना अधिक होती है। अंग्रेजी में सेक्सपियर तथा मिल्टन ने सॉनेट लिखे हैं।

1.3.3.4.11 उपालंभ गीत :

उपालंभ का अर्थ है- 'किसी अनुचित या अनिष्ट व्यवहार के कारण की जाने वाली शिकायत।' इस प्रकार के गीत प्रिय की निष्ठुरता के स्मरण से उत्पन्न होते हैं। इसमें प्रिय का उपेक्षाभाव हृदय को संतप्त कर देता है, तभी कोमल उलाहनों से युक्त गीत की सर्जना की जाती है। उपालंभ गीत एक प्रकार से शिकायत गीत है, ऐसा कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उपालंभ काव्य के उदाहरण के रूप में सूरदास के 'भ्रमरगीत' को देखा जा सकता है।

1.3.3.4.12 गीतिनाट्य् :

नाटकीय प्रणाली पर आधारित गीत गीतिनाट्य होते हैं। इसमें कवि अपनी अनुभूतियों और भावनाओं की अभिव्यक्ति विभिन्न पात्रों द्वारा करवाता है। इसमें गीतिकाव्य और नाटक की विशेषताएँ होती है। जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय', निराला का 'पंचवटी प्रसंग', भगवती चरण वर्मा का 'तारा' उत्कृष्ट गीतिनाट्य हैं।

इसके अतिरिक्त और भी इस प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं जैसे 'चरणगीत', 'पत्र गीत', 'नृत्य गीत', 'गौरव गीत' आदि।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यही कहा जा सकता है कि प्रगीत काव्य का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रगीत काव्य में आत्माभिव्यक्ति होती है। वह विभिन्न भावों के स्तर पर होती है। प्रगीत में भाव की प्रधानता के साथ विचार की प्रधानता भी होती है। प्रगीत में प्रभावात्मकता, संगीतात्मकता आदि गुण होते हैं। प्रगीत काव्य मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञान तथा शिक्षा देने का काम करता है। समाज को प्रेरित करता है। इस कारण पर गीतिकाव्य का काव्य के विभिन्न भेदों में महत्वपूर्ण स्थान है।

1.3.3 ग़ज़ल :

ग़ज़ल सदैव से ही अति लोकप्रिय काव्यविधा रही है। ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा की एक काव्यविधा है। ग़ज़ल शब्द भी अरबी भाषा का ही है। फारसी कवियों ने जब इस विधा को अरबी से उधार लिया तो उन्होंने शिल्पगत सीमाओं के पालन में तो अरबी ग़ज़लकारों का अनुकरण किया लेकिन विषय वस्तु की दृष्टि से वे अरबी ग़ज़लकारों से आगे निकल गए। अरबी भाषा की तुलना में फारसी भाषा में ग़ज़लों का अधिक मात्रा में सृजन हुआ है। अपनी भावनाओं तथा विचारों को प्रस्तुत करने का एक सशक्त माध्यम ग़ज़ल है। ग़ज़ल का जब सूत्रपात हुआ तब उसमें श्रृंगारिकता को प्रधानता दी जाती थी। समय के साथ-साथ ग़ज़ल के विषयों में भी विविधता आने लगी। हिंदी में 13 वीं शताब्दी से ग़ज़लें मिलती हैं। ग़ज़ल यह विधा फारसी से हिंदी तथा उर्दू में आयी है। आधुनिक युग में ग़ज़ल जीवन के कड़वे सच को प्रस्तुत करती है।

1.3.3.1 ग़ज़ल :

ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में विद्वानों में एकमत नहीं है। ग़ज़ल वस्तुतः अरबी भाषा का शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है प्रेमी-प्रेमिका का वार्तालाप। ग़ज़ल का कोशगत अर्थ है- कातना-बूनना। अरबी के शायर राय बादशाहों की प्रशंसा में कुछ लिखते जिनका प्रारंभिक भाग प्रेम परकता और श्रृंगारिकता से ओतप्रोत रहता था। कसीदे का अर्थ है- किसी की शान में कुछ कहना।

ग़ज़ल के बारे में और एक शब्द मिलता है- 'गजाल'। गजाल का अर्थ है- 'मृग'। संभव है हिरन जैसी आँखोंवाली सुंदरियों के लिए इस शब्द का प्रयोग किया गया हो। ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति की बारे में और एक मान्यता है कि अरब में ग़ज़ल नाम का एक कवि था। इस कवि ने अपने पूरे जीवन में प्रेम को महत्व दिया, प्रेमपरक कविता लिखी। अत: उसी के नाम से इस विधा का नामकरण हुआ।

मानक हिंदी शब्दकोश खंड दो में ग़ज़ल का अर्थ इस प्रकार दिया है– 'वह कविता जिसमें नायिका के सौंदर्य और उसके प्रेम के प्रति वर्णन हो।' ग़ज़ल के बारे में अंग्रेजी में भी कहा गया है कि– 'The Conversatiion with Women.'

ग़ज़ल शब्द प्रेमी और प्रेमिका के वार्तालाप के लिए या औरतों के बात करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ था, लेकिन अब उसमें परिवर्तन आया है। विविध विषयों को लेकर ग़ज़ले लिखी जा रही हैं।

1.3.3.2 ग़ज़ल की परिभाषाएँ :

साहित्य के अंतर्गत हर विधा को परिभाषित करने की एक परंपरा दिखाई देती है। ग़ज़ल जैसी प्रेमाभिव्यक्ति की विधा इससे कैसे अछूती रह सकती है? ग़ज़ल शब्द की व्युत्पत्ति या अर्थ के बारे में विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं, लेकिन उनमें इस बात पर एकमत हो गया है कि 'ग़ज़ल प्रेम अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।' अनेक विद्वानों ने अपनी–अपनी प्रतिभा के अनुसार ग़ज़ल को परिभाषित करने का प्रयास किया है ग़ज़ल की परिभाषाएं निम्नांकित हैं–

1.3.3.2.1 नालंदा विशाल शब्द सागर :

'नालंदा विशाल शब्द सागर में ग़ज़ल को फारसी और उर्दू की शृंगार रस की कविता कहा है।'

1.3.3.2.2 रघुपति सहाय 'फिराक गोरखपुरी' :

'ग़ज़ल असम्बद्ध कविता है। ग़ज़ल का मिजाज मूलतः समर्पणवादी होता है।'

1.3.3.2.3 डॉ. नगेंद्र :

'ग़ज़ल उर्दू का सर्वाधिक प्रसिद्ध और सरस भेद है। उस का स्थाई भाव प्रेम है, जिसमें रहस्यानुभूति, मस्ती, धार्मिक विद्रोह आदि भावनाएँ संचारी रूप में ओत–प्रोत रहती है। विषय के अनुरूप उसका एक विशिष्ट काव्यरूप भी है, जो मतला, मकता, गिरह, काफिया और रदीफ में परीबद्ध रहता है।'

1.3.3.2.4 डॉ. अरशद जमाल :

'ग़ज़ल का मतलब है औरतों से अथवा औरतों के बारे में बातचीत करना। यह भी कहा जा सकता है कि ग़ज़ल का सर्वसाधारण अर्थ है– माशूक से बातचीत का माध्यम।'

1.3.3.2.5 डॉ. नगेंद्र वशिष्ठ :

'ग़ज़ल का मूल क्षेत्र नारी–विषयक भावों से संबंधित है। दरअसल ग़ज़लगोई का अधिकतर संबंध विरहजन्य व्यथा से रहा है। अतः इसमें हृदय को छू लेने की क्षमता ही बहुत ऊंचा गुण माना गया है।'

1.3.3.2.6 डॉ. सरदार मुजावर :

'मन के भावों को शेरों के माध्यम से अभिव्यक्त करने की कला का नाम का ग़ज़ल है।'

1.3.3.2.7 डॉ. मधु खराटे :

'ग़ज़ल वह गेयान्मक विधा है, जिसमें प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का चित्रण किया जाता है। साथ ही

जिसमें सामाजिक, राजनीतिक एवं हास्य-व्यंग्यात्मक भावभूमि पर सामान्य व्यक्ति के मानस में दबी पीड़ा को वाणी प्रदान की जाती है, जो प्रभावोत्पादक गुणों से युक्त होती है और जिसका अपना एक रूप होता है।'

1.3.3.2.8 डॉ. नरेश :

शिल्प की दृष्टि से ग़ज़ल क़ाफ़िया-रदीफ़ के बंधन में रहकर, एक लयखंड में रचे गए, विभिन्न शेरों की माला होती है, जिसका पहला मनका 'मतला' और अंतिम मनका 'मकता' होता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यही कहा जा सकता है कि, ग़ज़ल गेयात्मक विधा है। ग़ज़ल मन के भावों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। ग़ज़ल के अनेक विषय हो सकते हैं। ग़ज़ल में व्यंग्यात्मकता भी होती है। ग़ज़ल में प्रेम के दोनों पक्षों का चित्रण होता है। संक्षिप्तता और भावात्मकता यह ग़ज़ल की महत्वपूर्ण विशेषताएँ हैं ग़ज़ल पाठकों के मन तथा मस्तिष्क पर प्रभाव डालती है।

1.3.3.3 ग़ज़ल के अंग :

ग़ज़ल एक लिरिक विधा है, जिसकी अपनी कुछ शर्ते हैं। यही शर्ते उसके स्वरूप और ढांचे को निर्मित करती हैं। किसी भी काव्य विधा के स्वरूप को निर्धारित करने वाली शर्तें, उस विधा विशेष के तत्व या अंग कही जाती है। ग़ज़ल के भी अपने तत्त्व हैं जो इस प्रकार है।

1.3.3.3.1 शेर :

शेर शब्द अरबी भाषा का है, जिसका अर्थ है- जानना, जुल्फ, बाल। इसी कारण ग़ज़ल को यदि सुंदरी कहा जाता है तो शेर उसके गेसू (बाल) हैं। शेर की तुलना माशूक के चेहरे पर बनी दोनों भौंहों से की जाती है।

'शेर' दो पंक्तियों का होता है। दो पंक्तियों के उस काव्य रूप को शेर कहते हैं, जिसके द्वारा हमें किसी विशेष बात या भाव का पता चलता है। ग़ज़ल के समान शेर को भी उसके शब्द- कोशीय अर्थ के अनुसार परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि अरबी-फ़ारसी के विद्वानों ने शेर-रचना के लिए यह शर्त रखी है कि वह 'कलामे-मौज़ूँ-मुक़फ्फ़ा-बिल्क़स्द' होना चाहिए। इसका अर्थ है कि, 1) शेर किसी एक बहर-वज़न में कहा जाना चाहिए तथा उसमें अभिव्यक्त किया गया विचार या भाव संतुलित,समुपयुक्त एवं रुचिकर होना चाहिए (कलामे-मौज़ूँ)। 2) शेर में वृत्तान्विती के साथ साथ तुकांत अर्थात् क़ाफ़िया होना चाहिए (मुक़फ़्फा)। 3) शेर में अभिव्यक्त किया जाने वाला विचार या भाव पूरी तरह से निश्यच करने के बाद ही अभिव्यक्त किया जाना चाहिए (बिल्क़स्द)। ताकि प्रतिपाद्य से किसी प्रकार की भ्रांति उत्पन्न न हो और पाठक उससे कवि द्वारा अभिप्रेत अर्थ के अतिरिक्त दूसरा कोई अर्थ ग्रहण न कर सके।

परखना मत, परखने में कोई अपना नहीं रहता
किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता।

बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना
जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता।

हजारों शेर मेरे सो गये कागज की कब्रों में
अजब मां हूं कोई बच्चा मेरा ज़िन्दा नहीं रहता।

तुम्हारा शहर तो बिल्कुल नये अन्दाज वाला है
हमारे शहर में भी अब कोई हमसा नहीं रहता।

मोहब्बत एक खुशबू है, हमेशा साथ रहती है
कोई इन्सान तन्हाई में भी कभी तन्हा नहीं रहता।

कोई बादल हरे मौसम का फ़िर ऐलान करता है
ख़िज़ा के बाग में जब एक भी पत्ता नहीं रहता।

– बशीर बद्र

इस ग़ज़ल की प्रत्येक दो पंक्ति शेर कहलाती है।

1.3.3.3.2 मिसरा :

शेर की प्रत्येक पंक्ति को मिसरा कहते हैं। दो मिसरे मिलकर एक शेर की संरचना होती है।

उदा.

प्रथम – बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना
द्वितीय – जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता

यह दोनों पद स्वतंत्र मिसरे हैं।

थोड़े और बारीकी में जाए तो शेर के प्रथम मिसरे को 'मिसरा ऊला'कहते हैं और द्वितीय मिसरे को 'मिसरा सानी' कहते हैं।

बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना– मिसरा ऊला
जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता– मिसरा सानी

1.3.3.3.3 क़ाफ़िया :

ग़ज़ल में पाई जाने वाली तुक को काफिया कहते हैं। ग़ज़ल के शेरों में रदीफ़ से पहले आने वाले उन शब्दों को क़ाफ़िया कहते हैं, जिनके अंतिम एक या एकाधिक अक्षर स्थायी होते हैं और उनसे पूर्व का अक्षर चपल होता है। ग़ज़ल में रदीफ़ की अपेक्षा क़ाफ़िया का महत्त्व होता है।

इसे आप तुक कह सकते हैं जो मतले में दो बार रदीफ़ से पहले आती है और हर शे'र के दूसरे मिसरे में रदीफ़ से पहले। काफ़िया ग़ज़ल की जान होता है और कई बार शायर को क़ाफ़िया मिलने में दिक्कत होती है तो उसे हम कह देते हैं कि क़ाफ़िया तंग हो गया।

उदा. **मत, परखने में कोईअपना नहीं रहता**
किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता।

बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना
जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता।

उपर्युक्त ग़ज़ल के शेरों में 'अपना', 'चेहरा' और 'दरियाब' यह शब्द क़ाफ़िया के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं।

1.3.3.3.4 रदीफ़ :

रदीफ़ का शब्दकोशीय अर्थ 'अनुगामी' है। प्रायः घुड़सवार के पीछे बैठे व्यक्ति को रदीफ़ कहा जाता है। रदीफ़ का पारिभाषिक अर्थ है वह अक्षर, शब्द या शब्द-समूह जो किसी ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में, क़ाफ़िये के पीछे, लगातार और बार-बार दोहराया जाता है।

ग़ज़ल के शेरों के अंत में जिन शब्दों की पुनरावृत्ति होती है उसे रदीफ़ कहते हैं। रदीफ़ क़ाफ़िये के बाद आती है और प्रत्येक शेर में अपनी जगह स्थिर रहती है। उसमें कभी परिवर्तन नहीं होता। अधिकतर ग़ज़लों में रदीफ़ का प्रयोग होता है। अपवाद स्वरूप कुछ ग़ज़ल में रदीफ़ का प्रयोग नहीं किया जाता। वैसे बिना रदीफ़ के ग़ज़ल को गैर-मरद्दफ़ ग़ज़ल कहा जाता है।

उदा.

मत, परखने में कोई अपना नहीं रहता
किसी भी आईने में देर तक चेहरा नहीं रहता

बडे लोगों से मिलने में हमेशा फ़ासला रखना
जहां दरिया समन्दर में मिले, दरिया नहीं रहता

उपर्युक्त ग़ज़ल के शेरों में नहीं रहता यह शब्द का प्रयोग रदीफ़ के रूप में किया गया है।

1.3.3.3.5 मतला :

ग़ज़ल का पहला शेर मतला कहलाता है। मतला का शाब्दिक अर्थ है- उदयस्थल। इसी कारण ग़ज़ल के प्रथम शेर को मतला कहा जाता है। मतले के दोनों मिसरे में रदीफ़ और क़ाफ़िया होता है, जबकि ग़ज़ल के अन्य शेरों में दूसरी पंक्ति में यह विशेषता पायी जाती है।

उदा.

हर इक बात पे कहते हो तुम कि तू क्या है
तुमहीं कहो कि ये अन्दाज़े-गुफ़्तगू क्या है

उपर्युक्त शेर की दोनों पंक्तियों में 'तू', 'गुफ्तगू' क़ाफ़िया है तथा 'क्या है' रदीफ़ है। जिससे दोनों पंक्तियों में तुक मिलती है। अतः यह शेर ग़ज़ल का मतला है।

1.3.3.3.6 मकता :

ग़ज़लग के अंतिम शेर को 'मकता' कहते हैं। मकता का शाब्दिक अर्थ है– काटा हुवा, तराशा हुआ। इसमें ग़ज़लकार अपने उपनाम का प्रयोग करता है। ग़ज़लकार ग़ज़ल के अंतिम शेर को इस तरह तराशता है कि इसमें इसका उपनाम नगीने की तरह जड़ा जाए, इसलिए इस शेर को मकता कहते हैं। यह उपनाम पढ़ते ही हम समझ जाते हैं कि यहाँ ग़ज़ल मुकम्मल (पूरी) हो गई। इस शेर में ग़ज़लकार अपनी छाप छोड़ जाता है। अगर किसी ग़ज़ल के समाप्ति पर अंतिम शे'र में उपनाम न हो तो उसे ग़ज़ल का आखरी शे'र कहा जाता है।

उदा.

हुआ है शह का मुसाहब फिरे है इतराता
वरना शहर में 'ग़ालिब' की आबरू क्या है

उपर्युक्त शेर में 'ग़ालिब' उपनाम का प्रयोग किया गया है। अतः इस शेर को मकता कहा जाएगा।

ग़ालिब की एक प्रसिद्ध ग़ज़ल

हर इक बात पे कहते हो तुम कि तू क्या है
तुमहीं कहो कि ये अन्दाज़े–गुफ़तगू क्या है– मतला

न शोले में ये करिश्मा न बरक में ये अदा
कोई बतायो कि वो शोखे–तुन्द–ख़ू क्या है– क़ाफ़िया

ये रश्क है कि वो होता है हमसुख़न तुमसे
वरना ख़ौफ़–ए–बद–आमोज़ीए–अदू क्या है– रदीफ़

चिपक रहा है बदन पर लहू से पैराहन
हमारी जैब को अब हाजते–रफ़ू क्या है

जला है जिसम जहां, दिल भी जल गया होगा
कुरेदते हो जो अब राख, जुसतजू क्या है

रग़ों में दौड़ने–फिरने के हम नहीं कायल
जब आंख ही से न टपका तो फिर लहू क्या है

वो चीज़ जिसके लिये हमको हो बहशत अज़ीज़
सिवाये वादा–ए–गुलफ़ाम–ए–मुशक बू क्या है

पीयूं शराब अगर ख़ुम भी देख लूं दो–चार
ये शीशा–ओ–कदह–ओ–कूज़ा–ओ–सुबू क्या है

रही न ताकते–गुफ़तार और अगर हो भी
तो किस उम्मीद पे कहये कि आरज़ू क्या है

हुआ है शह का मुसाहब फिरे है इतराता
वगरना शहर में 'ग़ालिब' की आबरू क्या है– मकता

डॉ. नरेश जी ने ग़ज़ल के स्वरूप को निम्न रूप से समझाने के प्रयास किया है –

1. ग़ज़ल विभिन्न शेरों की एक योजना होती है।

2. ग़ज़ल का प्रत्येक शेर कथावस्तु की दृष्टि से स्वतंत्र इकाई होता है

3. गज़ल के किसी भी शेर की कथावस्तु का प्रसार ऐसा नहीं होना चाहिए कि शेर का अर्थ जानने के लिए उसके पूर्व या बाद के शेर से सहायता देनी पड़े।

4. गज़ल के शेरों का काफ़िया और रदीफ़ के नियमानुसार रचा जाना आवश्यक है।

5. ग़ज़ल के शेरों का एक ही लयखण्ड (बहर–वज़न) में रचा जाना अनिवार्य है।

6. गज़ल का प्रारंभ मतले से होना चाहिए।

7. गज़ल का अंत मक़ते से किया जाना चाहिए।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ग़ज़ल अरबी भाषा का शब्द है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से भले ही उसके अर्थ अलग–अलग हैं लेकिन ग़ज़ल एक स्वतंत्र विधा है। ग़ज़ल में क़ाफ़िया और रदीफ़ का महत्व होता है। ग़ज़ल में प्रत्येक अंग का अपना–अपना महत्व है। शेर को ग़ज़ल की अधिकारिक इकाई माना गया है। शेर के दो भेदों में मतला और मकता का भी उतना ही महत्व है जितना की अन्य अंगों का महत्व है। ग़ज़ल में गेयता होती है। ग़ज़ल में प्रवाहमयता, भावात्मकता, प्रभावात्मकता की आवश्यकता होती है।

1.4 स्वयं–अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) महाकाव्य ..... काव्य का भेद है।
(मुक्तक/प्रगीत/एकार्थ/प्रबंध)

2) महाकाव्य ..... रचना है।
(सर्गमुक्त/रीतियुक्त/रीतिबद्ध/सर्गबद्ध)

3) महाकाव्य का नायक ..... होना चाहिए।
(धीरगंभीर/धीरप्रशांत/धीरोदात्त/धीरलालित)

4) महाकाव्य को अंग्रेजी में ..... कहते हैं।
(Epic/Elegy/Ode/Drama)

5) महाकाव्य ..... से अधिक सर्ग होते हैं।
(सात/आठ/दस/बीस)

6) महाकाव्य में ..... का प्रकाशक होता है।
(लघुता/ अलंकारिकता/ अपूर्णता/महानता)

7) महाकाव्य में प्रतिनायक (खलनायक) के ..... का चित्रण होता है।
(विजय/पराजय/ कोमलता/ धीरोदात्तता)

8) आचार्य भामह ने ..... ग्रंथ में महाकाव्य विषयक चिंतन प्रस्तुत किया है।
(काव्यालंकार सूत्र वृत्ति/काव्यालंकार/ काव्यशोभा/ काव्यादर्श)

9) महाकाव्य का उद्देश्य ..... होता है।
(लघु/ विस्तृत/महान/ सीमित)

10) आचार्य दंडी ने ..... ग्रंथ में महाकाव्य विषय चिंतन किया है।
(काव्यालंकार सूत्र वृत्ति/ काव्यालंकार/ काव्यशोभा/काव्यदर्श)

11) आचार्य विश्वनाथ के काव्य ग्रंथ का नाम ..... है।
(समर्पण/साहित्यदर्पण/ नाट्यदर्पण/ हितोपदेश)

12) ..... ने महाकाव्य विषयक विवेचन में गुरुत्व, गांभीर्य तथा महानता को विशेष स्थान दिया है।
(डॉ. नगेंद्र/ डॉ. गुलाबराय/डॉ. शंभूनाथ सिंह/ रामचंद्र शुक्ल)

13) 'महाकाव्य दीर्घकाल का कथात्मक अनुकरण है' यह मत ..... का है।
(एवरक्राम्बे/अरस्तू/ वॉल्टेअर/ इलियट)

14) पाश्यात्य दृष्टि में एपिक ..... काव्य है।
(छंदयुक्त/ रसमुक्त/वर्णनात्मक/ अलंकारप्रधान)

15) आचार्य विश्वनाथ के अनुसार धर्म, अर्थ, काम और ..... की प्राप्ति महाकाव्य का बृहत्तर उद्देश्य है।
(मोक्ष/ क्षमता/ ममता/ करुणा)

16) एवरक्राम्बे के अनुसार महाकाव्य के ..... भेद हैं।
(पाँच/दो/तीन/ चार)

17) प्रगीत को अंग्रेजी में ..... कहा जाता है।
(Poetcis/Sonnet/Lyric/Ode)

18) वैयक्तिकता यह ..... की विशेषता है।
(खंडकाव्य/प्रगीतकाव्य/ महाकाव्य/ चंपूकाव्य)

19) प्रगीत काव्य ..... के अंतर्गत आता है।
(महाकाव्य/ खंडकाव्य/मुक्तक काव्य/ ग़ज़ल)

20) व्यंग्यगीत को अंग्रेजी में ..... कहते हैं।
(Ode/Sonnet/Satire/Maarching Song)

21) शोकगीत को अंग्रेजी में ..... कहते हैं।
(Elegy/Ballad/Lyric/Satire)

22) किसी वीर योद्धा का गुणगान ..... में होता है।
(आख्यान गीत/ संबोधन गीत/ शोकगीत/ प्रेमगीत)

23) जब कोई सेना युद्ध के लिए निकलती है, तब उनका उत्साह बढ़ाने के लिए ..... गीत गाए जाते हैं
(प्रयाण गीत/ संबोधन गीत/ विलापिका/ नृत्य गीत)

24) राष्ट्र के प्रति सम्मान की भावना ..... में होती है।
(भक्ति गीत/ उपालंभ गीत/राष्ट्रगीत/ धार्मिक गीत)

25) ..... गीतों में स्थानीय संस्कृति का चित्रण होता है।
(लोक/ भक्ति/ व्यंग्य/ संबोधन)

26) चतुर्दशपदी को अंग्रेजी में ..... कहते हैं।
(Sonnet/Ode/Lyric/Ballad)

27) संबोधन गीत को अंग्रेजी में ..... कहते हैं।
(Marching song/Ballad/ Ode Eelegy))

28) अपने आराध्य के प्रति निष्ठा, आस्था, भक्तिभाव ..... गीतों में होता है।
(राष्ट्रीय गीत/ नृत्यगीत/भक्तिगीत/ लोकगीत)

29) ..... गीत को 'कोरस गीत' भी कहा जाता है।
(लोकगीत/ व्यंगगीत/ प्रेमगीत/ नृत्यगीत)

30) शोकगीत में ..... रस की प्रधानता होती है।
(करुण/ वीर/ श्रृंगार/ शांत)

31) सॉनेट (चतुर्दशपदी) में ..... पंक्तियाँ होती है।
(दस/ बारह/ तेरह/चौदह)

32) ..... में बुद्धि से अधिक हार्दिक भावनाओं का महत्व होता है।
(चंपू काव्य/ महाकाव्य/ खंडकाव्य/प्रगीत काव्य)

33) ग़ज़ल ..... भाषा का शब्द है।
(अरबी/ फारसी/ पंजाबी/ हिंदी)

34) 'क़ाफ़िया' का अर्थ ..... है।
(तुक/ ग़ज़ल/ मतला/ मकता)

35) शेर शब्द का अर्थ है ..... ।
(केश/ आँखे/ कान/ नाक)

36) फारसी और उर्दू में श्रृंगार रस की कविता ..... कहलाती है।
(गीत/ ग़ज़ल/ तश्बीब/ रदीफ़)

37) ग़ज़ल का शाब्दिक अर्थ ..... है।
(प्रेमिका से वार्तालाप/ उत्कट भाव/ वाणी/ हाथी)

38) ग़ज़ल के पहले शेर को ..... कहते हैं।
(क़ाफ़िया/ मतला/ मकता/ रदीफ़)

39) ग़ज़ल के अंतिम शेर को ..... कहते हैं।
(क़ाफ़िया/ मतला/मकता/ रदीफ़)

40) मिसरा शेर की प्रत्येक ..... को कहते हैं।
(पंक्ति/ शब्द/ वाक्य/ अर्थ)

1.5 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित पर्याय

1. प्रबंध	2. सर्गबद्ध	3. भामह	4. Epic
5. आठ	6. महानता	7. पराजय	8. काव्यालंकार
9. महान	10. काव्यादर्श	11. साहित्यदर्पण	12. डॉ. शंभूनाथ सिंह
13. अरस्तू	14. वर्णनात्मक	15. मोक्ष	16. दो

17. Lyric	18. प्रगीतकाव्य	19. मुक्तक काव्य	20. Satire
21. Elegy	22. आख्यायन गीत	23. प्रयाण गीत	24. राष्ट्रगीत
25. लोक	26. Sonnet	27. Ballad	28. भक्तिगीत
29. लोकगीत	30. करुण	31. चौदह	32. प्रगीत काव्य
33. अरबी	34. तुक	35. केश	36. गजल
37. प्रमिका से वार्तालाप	38. मतला	39. मकता	40. पंक्ति

1.6 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. इतिवृत्तात्मकता – घटनाप्रधानता।
2. गुरुत्व – बड़प्पन, श्रेष्ठता, महानता।
3. सर्गबद्ध – सर्गों में बंधा हुआ।
4. सर्ग – अध्याय, प्रकरण।
5. धीरोदात्त – भावनाओं पर पूर्ण नियंत्रण रखनेवाला नायक।
6. मंगलाचरण – ग्रंथ के प्रारंभ में लिखा जानेवाला मांगलिक पद।
7. कोमलकांत पदावली – मृदु कोमल वर्णों से युक्त पदावली।
8. प्रबंध – काव्य का भेद।
9. मुक्तक – काव्य का वह भेद जिसमें वर्णित बातों का कोई पूर्वापर संबंध न हो।
10. उपालंभ – किसी के अनुचित या अशिष्ट व्यवहार के कारण उससे की जाने वाली शिकायत/ उलाहना।
11. रदीफ़ – ग़ज़लों आदि में प्रत्येक क़ाफ़िये या अंत्यानुप्रास के बाद आने वाला शब्द या शब्दसमूह।
12. मिसरा – ग़ज़ल में वर्णित शेर की प्रत्येक पंक्ति।
13. क़ाफ़िया – कविता या पद्य में अंतिम चरणों में मिलाया जानेवाला अनुप्रास/ अंत्यानुप्रास/ तुक।
14. बहर छंद की तरह एक फ़ारसी मीटर/ताल/लय/फीट जो अरकानों की एक विशेष तरक़ीब से बनती है.
15. अरकान – फ़ारसी भाषाविदों ने आठ अरकान ढूँढे और उनको एक नाम दिया जो आगे चलकर बहरों का आधार बने। रुक्न का बहुबचन है अरकान।बहर की लम्बाई या वज़्न इन्ही से मापा जाता है, इसे आप फ़ीट भी कह सकते हैं। इन्हें आप ग़ज़ल के आठ सूर भी कह सकते हैं।
16. अरूज़ – बहरों और ग़ज़ल के तमाम असूलों की मालूमात को अरूज़ कहा जाता है और जानने वाले अरूज़ी.

17. तख़ल्लुस – शायर का उपनाम मक़ते में इस्तेमाल होता है। जैसे मैं ख्याल का इस्तेमाल करता हूँ।

18. वज़्न – मिसरे को अरकानों के तराज़ू में तौल कर उसका वज़्न मालूम किया जाता है इसी विधि को तकतीअ कहा जाता है।

1.7 सारांश :

- प्रबंध काव्य का हिंदी साहित्य में अनूठा स्थान है। प्रबंध काव्य के अंतर्गत महाकाव्य और खंडकाव्य आते हैं।
- महाकाव्य विषयक भारतीय तथा पश्चिमी विद्वानों ने चिंतन किया है। यह चिंतन मौलिक तथा नवीन है। जिससे महाकाव्य के स्वरूप पर प्रकाश डाला जा सकता है। महाकाव्य महानता का प्रकाशक होता है।
- महाकाव्य की कथावस्तु ऐतिहासिक कथा सज्जनाश्रित होती है। महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है। महाकाव्य में कम से कम आठ सर्ग होने चाहिए। महाकाव्य के भारतीय तत्वों में कथावस्तु, नायक, रस, छंद, वर्णन, नाम (शीर्षक) उद्देश्य आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें से किसी एक के अभाव में महाकाव्य की सफलता में क्षति पहुँच सकती है।
- महाकाव्य के लिए अंग्रेजी में एपिक शब्द मिलता है। एपिक वर्णनात्मक होता है। एपिक के पाश्चात्य तत्वों में कथानक, पात्र एवं चरित्र चित्रण, वर्णन, शैली उद्देश्य आदि तत्व महत्वपूर्ण होते हैं।
- प्रगीत काव्य को गीतिकाव्य के नाम से भी अभिहित किया जाता है। प्रगीत काव्य में स्वतंत्र भाव होता है। प्रगीत को अंग्रेजी में लिरिक्स (Lyric) कहा जाता है। प्रगीत काव्य के तत्वों में संगीतात्मकता, तीव्र भावानुभूति, आत्माभिव्यक्ति, रागात्मक अन्विति, प्रवाहमयी शैली, सहज अन्त:प्रेरणा का स्थान महत्वपूर्ण है।
- प्रगीत काव्य के अनेक भेद किए गये हैं जैसे प्रेमगीत, व्यंग्यगीत, आख्यान गीत, राष्ट्रीय गीत, भक्तिगीत, लोकगीत, चतुर्दशपदी आदि।
- प्रेमाभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में ग़ज़ल को देखा जाता है। ग़ज़ल यह अरबी भाषा का शब्द है। उसका शाब्दिक अर्थ प्रेमिका से बातचीत, वार्तालाप या औरतों से बात करने के अर्थ में लिया जाता है। ग़ज़लकार कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों को भर देता है। ग़ज़ल में लयबद्धता होती है। क़ाफ़िया, रदीफ़, शेर, मतला, मकता, मिसरा आदि ग़ज़ल के अंग हैं।

1.8 स्वाध्याय :

1) महाकाव्य के भारतीय तत्वों पर प्रकाश डालिए।
2) महाकाव्य विषयक पाश्चात्य मान्यता बताते हुए पश्चिमी तत्वों का विवेचन कीजिए।
3) प्रगीत का स्वरूप बताकर प्रगीत के भेदों को संक्षेप में लिखिए।
4) प्रगीत का स्वरूप बताकर तत्वों पर प्रकाश डालिए।

5) ग़ज़ल की परिभाषा देकर अंगूर का सामान्य परिचय दीजिए।

6) बहरमहाकाव्य का भारतीय स्वरूप स्पष्ट करते हुए महाकाव्य के भारतीय तत्वों का विवेचन कीजिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य :

- महाकाव्य विषयक विभिन्न मान्यताओं के आधार पर किसी भी महाकाव्य की समीक्षा कीजिए।
- रामचरितमानस, पद्मावत, साकेत, कामायनी, कुरुक्षेत्र आदि महाकाव्यों का अध्ययन कीजिए।
- प्रगीत के विभिन्न भेदों को ध्यान में रखकर उसके उदाहरण ढूँढ लीजिए।
- किसी भी ग़ज़लकार की ग़ज़ल की किताब पढ़िए।
- मराठी भाषा के महाकाव्य, गीत तथा ग़ज़ल विधाओं का अध्ययन कीजिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र- भगीरथ मिश्र।

2) भारतीय साहित्यशास्त्र कोश- डॉ राजवंश सराय 'हीरा'।

3) हिंदी ग़ज़ल का सौंदर्यशास्त्र- डॉ राम प्रकाश 'पथिक'।

4) हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा- डॉ नरेश।

5) काव्यशास्त्र के विविध आयाम- सं. डॉ मधु खराटे।

6) भारतीय काव्यशास्त्र- डॉ अशोक के शाह।

7) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र- डॉ यतीन्द्र तिवारी।

8) साहित्य रूप: शास्त्रीय विश्लेषण- डॉ ज्ञानराज गायकवाड।

9) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र- डॉ रामप्रकाश।

10) बृहत भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र- डॉ सुरेश अग्रवाल और डॉ जगदीप शर्मा।

11) हिंदी ग़ज़ल: उद्भव और विकास- डॉ रोहिताश्व अस्थाना।

12) हिंदी ग़ज़ल के प्रमुख हस्ताक्षर- प्रा. मधु खराटे

13) हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में- डॉ सरदार मुजावर।

❑❑❑

इकाई 2

गद्य विधाएँ

(एकांकी, कहानी और उपन्यास)

अनुक्रम

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय – विवेचन

- 2.3.1 एकांकी
- 2.3.1 प्रस्तावना
- 2.3.2 एकांकी : स्वरूप
- 2.3.3 एकांकी : तत्त्व

- 2.3.2 कहानी
  - 2.3.2.1 प्रस्तावना
  - 2.3.2.2 कहानी : स्वरूप
  - 2.3.2.3 कहानी : तत्त्व

- 2.3.3 उपन्यास
  - 2.3.3.1 प्रस्तावना
  - 2.3.3.2 उपन्यास : स्वरूप
  - 2.3.3.3 उपन्यास : तत्त्व

2.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

2.1 उद्देश्य :

1. एकांकी, कहानी और उपन्यास के मानदंडों के आधार पर छात्रों में इन विधाओं की समीक्षण की क्षमता निर्माण करना।
2. छत्रों में हिंदी एकांकी, कहानी और उपन्यास के आस्वादन की क्षमता एवं रुचि उत्पन्न करना।
3. साहित्य कृतियों के माध्यम मे साहित्य के शिल्प एवं सौंदर्य से परिचित कराना।
4. एकांकी के स्वरूप एवं तत्वों से परिचित कराना एवं समीक्षण क्षमता निर्माण करना।
5. कहानी के स्वरूप एवं तत्त्वों से परिचित कराना एवं समीक्षण क्षमता निर्माण करना।
6. उपन्यास के स्वरूप एवं तत्त्वों से परिचित कराना एवं समीक्षण क्षमता निर्माण करना।
7. उपर्युक्त विधाओं के स्वरूप एवं तत्वों के अध्ययन के उपरांत छात्रों में विविध विधाओं में लेखन करने की क्षमता एवं रूचि उत्पन्न करना।

2.2 प्रस्तावना :

आधुनिक युग में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से भारतीय साहित्य में अनेक विधाओं का आगमन भारतेंदू युग में हुआ। उपन्यास, नाटक, कहानी, डायरी, निबंध, एकांकी आदि गद्य विधाओं का विकास हुआ। इन विधाओं के तात्त्विक विवेचन के बारे में हमें यहाँ सोचना है। एकांकी का स्वरूप एवं तत्व, कहानी का स्वरूप एवं तथा उपन्यास का स्वरूप एवं तत्त्व आदि के तात्विक मुद्दों पर हमें इस ईकाई में अध्ययन करना है।

2.3 विषय – विवेचन :

2.3.1 एकांकी : स्वरूप एवं तत्त्व :

आधुनिक मानवजीवन जटिलताओं से भरा है। संपूर्ण मानव जीवन संघर्ष जीविका के साधन जुटाना और सामाजिक आवडंबर बनाये रखने में व्यस्त है। परिणामस्वरूप समयाभाव के कारण जीवर्नाद प्राप्त करा देनेवाले माध्यमों का समय सीमित होता चला गया और दिर्घकाय साहित्यिक माध्यम संक्षिप्त होते चले गये। जैसे महाकाव्यों से खंडकाव्य, उपन्यासों से कहानियाँ और नाटकों से एकांकी आदी। यह साहित्यिक माध्यम अपनी संक्षिप्तता के साथ भारतीय साहित्य में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव से अलग–अलग विधा के रूप में एक सशक्त माध्यम बनकर प्रस्तुत हुए। जिसमें हिंदी में एकांकी विद्या का आगमन अंग्रेजी 'वन ॲक्ट प्ले' के प्रभाव से हुआ है। अंग्रेजी 'वन ॲक्ट प्ले' का आरंभिक रूप 'कर्टन रेझर' में माना जाता है। जो पाँच–छ: दशक पूर्व लंडन में प्रेक्षागृह में जल्दी पहुँचनेवाले दर्शकें के लिए मुख्य नाटक से पहले मनोरंजनार्थ दूसरे छोटे–छोटे नाटक प्रस्तुत किये जाते थे जो 'कर्टन रेसर' के नाम से विकसित हो गये।

विदेश में इल्सन ने 'एकांकी विधा' को स्वतंत्र रुप में सामने लाया। पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव स्वरूप आधुनिक विचारों के प्रभावों से प्रेरित होकर भारतेंदूकालीन (सन् 1873-1929) साहित्यकारों ने सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, राष्ट्रीय तथा हास्य–व्यंग एकांकी लिखे। परंतु इन एकांकीकारों पर संस्कृत नाट्य शैली का प्रभाव रहने से संस्कृत नाटक शैली के भाण, प्रहसन, विथि, विकासिका, प्रकरणिका, हल्लिस तथा भणिका का

रूप इनमें दिखाई देता है। भारतेंदू का 'विषस्य विषमौषधम्' नाटक है, जिसमें एकांकी के रूप का दर्शन होता है। लेकिन भारतेंदू के बाद हिंदी एकांकी का प्रारंभ जयशंकर प्रसादजी के 'एक घूँट' एकांकी से माना जाता है।

आज एकांकी विधा विकसित होकर नई नई शैलियों में प्रस्तुत हो रही है। जेसे, रेडिओ से प्रसारित होनेवाली ध्वनि एकांकी (रेडिओ एकांकी), फैंटसी, प्रहसन एवं गीतिनाट्य आदि नए रूप सामने आ रहे है। वर्तमान युग में विष्णू प्रभाकर, प्रभाकर माचवे, गिरजाकुमार माथुर तथा अनिलकुमार, सत्येंद्र, शरद, सुरेंद्र वर्मा, भारतभूषण अग्रवाल आदि प्रमुख है। अपनी दिर्घ विकास यात्रा के परिणामस्वरूप आज एकांकी में गुणात्मकतता के साथ साथ सूक्ष्मता, गहनता एवं कलात्मकता का निरंतर समाहार हो रहा है। जिसके आधार पर कह सकते है कि, हिंदी एकांकी रचना का भविष्य उज्ज्वल हे। समकालीन समय की सशक्त विधा के रूप में सामने आई एकांकी विधा का स्वरूप एवं तत्त्व निम्न प्रकार से है।

2.3.2 एकांकी : स्वरूप :

एकांकी नाम में ही स्पष्ट होता है कि यह एक अंक में समाप्त होनेवाला नाटक है। अर्थात्, अपने विस्तार एवं व्यापकता के धरातल पर एकांकी का विस्तार नियंत्रित एवं संयमित होता है। एकांकी अपनी संक्षिप्तता एवं लघुता के कारण नाटक की अपेक्षा न्यूनातिन्यून समय (लगभग 20 मिनिट से 60 मिनिट तक) लेता है। परिणाम स्वरूप : एकांकी में जीवन के एक पक्ष विशेष पर प्रकाश डाला जाता है कि उसके प्रभाव ऐक्य से पाठकों और दर्शकों का मन आकृष्ट और आक्रांत हो जाए।

एकांकी स्वरूप विश्लेषण पर प्रकाश डालने से पूर्व एक-दो परिभाषाएँ देखेंगे जिससे एकांकी का स्वरूप समझने में सहायता होंगी।

सिडनी फॉक्स की परिभाषा :

''एकांकी साहित्य की वह नियंत्रित और संयमित विधा है। जिसमें एक ही घटना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया जाता है कि उसके प्रभाव ऐक्य से पाठकों और दर्शकों का मन आकृष्ट और आक्रांत हो जाए।''

प्रो. नगेंद्र लिखते है –

''स्पष्टतया एकांकी एक अंक में समाप्त होनेवाला नाटक है और यद्यपि इसके अंक के विस्तार के लिए कोई नियम नहीं है, फिर भी छोटी कहानी की तरह उसकी एक सीमा तो है ही। परिधि का यह संकोच कथा-संकोच की ओर इंगित करता है और एकांकी जो एकांकी के स्वरूप विवेचन की दृष्टी से महत्त्वपूर्ण है। हमें जीवन का क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर उसके एक पहलू, एक महत्त्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिती अथवा एक उद्दिप्त क्षण का चित्र मिलेगा।''

श्री सद्गुरूशरण अवस्थी का इस संबंध में विचार है ''एकांकी नाटक का सुनिश्चित एवं सुकल्पित एक लक्ष्य होता है। उसमें केवल एक घटना, परिस्थिती अथवा समस्या प्रबल होती है। कार्यकारण की घटनावली

अथवा कोई गौण परिस्थिती अथवा समस्या के समावेश का उसमें स्थान नहीं होता। एकांकी के वेग संपन्न प्रवाह में किसी प्रकार के अंतरप्रवाह के लिए अवकाश नहीं होता। वह तो समूचा की केंद्रीभूत आकर्षण है। उसके रूप में परमता और उत्कर्षता सर्वत्र ही बिखरी रहती है। विवरण में शैथिल्य उसका घातक है। कथावस्तू, परिस्थिती, व्यक्तित्व इन सबके निदर्शन में मितव्ययता और चातुरी का जो रूप अच्छे एकांकी नाटकों में मिलता है। वह साहित्य कला की अद्‌वितीय विधि है।''

रामकुमार वर्मा कहते है –

''एकांकी नाटक में एक ही घटना होती है और यह घटना नाटकीय कौशल्य से ही कौतुहल का संचय करती हुई चरमसीमा (क्लाइमेक्स) तक पहुँचती है। उसमें काई अप्रधान प्रसंग नहीं रहता। विस्तार के अभाव में यह घटना कली की भाँति खिलकर, पुष्प की भाँति विकसित हो उठती है। उसमें लता के समान फैलने की उच्छृंखलता नहीं है।''

उपर्युक्त परिभाषाएं एकांकीकारों ने स्वअनुभव एवं अभिव्यक्ति के आधार पर दी हैं। जिसमें एकांकी की विशेषताएँ अधोरेखित हुई है। जो एकांकी के स्वरूप विवेचन की दृष्टी से महत्त्वपूर्ण है।

एकांकी की विशेषताएँ :

1. आकार की लघुता : एकांकी एक अंक में समाप्त होनेवाला नाटक अवश्य है, किन्तु अंक विस्तार के संबंध में कोई नियम नहीं है। सामान्यत: एक बैठक में पढा जा सकता है। स्वभावत: इसमें विस्तार की गुंजाइश कम और मितव्ययता अधिक आ जाती है। कभी–कभी एकाधिक दृश्यों की योजना भी होती है।

2. एकान्विति : एकांकी के विस्तार की लघुता के कारण इसमें जीवन के केवल किसी पहलू, महत्त्वपूर्ण घटना अथवा किन्हीं उद्‌दिप्त क्षणों का चित्रण मिलता है। कथा संरचना में प्रासंगिक कथाओं तथा घटनाओं को स्थान नहीं मिलता हैं मुख्य कथासूत्र के कुछ संदर्भ अवश्य जुडे रहते है। कथा की संक्षिप्तता एवं एकायामिता के कारण पात्रों की संख्या भी सिमित रहती है। इस दृष्टी से कथासूत्र अथवा प्रभावत्मकता एकान्विति एकांकी की महत्त्वपूर्ण विशेषता बनती है।

3. प्रभावपूर्ण शैली : एकांकी की कथावस्तू को संक्षिप्तता में ढालने की आवश्यकता के कारण एकांकी की शैली में गतिशीलता, प्रवेग और मार्मिकता के साथ कौतुहल और उत्कट प्रभावक्षमता भी महत्त्वपूर्ण होती है।

4. संघर्ष और नाटकीयता पर बल : संघर्ष और नाटकीयता नाट्यविधा का प्राण है। एकांकी नाटक में भी कार्यारम्भ और कार्य की समाप्ति में बहुत कम अंतर होता है। कार्यरी होकर शीघ्र ही चरम उत्कर्ष पहुँचता है। इसलिए बिखराव के बदले कसाव के साथ कौतुहल, संघर्ष आदि नाटकीयता के सूत्रों का कलात्मक नियोजन करना पडता है। जिसमें तीव्र जाति के साथ लक्ष्य की प्राप्ति करने में सहाय्य हो जाता है।

5. अभिनेयता : एकांकी नाट्यवर्ग की विधा होने के कारण एकांकी में रंग संकेत एवं अभिनेयता अपेक्षित

होता है। साथ ही संकल्पनत्रय के निर्वाह की आवश्यकता भी महत्त्वपूर्ण होती है, जिससे एकांकी एक सुनिश्चित रूप में सामने आती है।

इसतरह उपर्युक्त विशेषताओं को लेकर सामने आनेवाली एकांकी श्रेष्ठ एकांकी कहलाने की अधिकारिणी बन जाती है।

2.3.3 एकांकी के तत्त्व :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि, एकांकी नाटक का ही भेद है। परंतु उसका स्वरूप छोटा होता है। इसमें मानव जीवन के एक पहलू या उद्दिप्त क्षण को सामने लाया जाता है। इसलिए भावुकता तथा जीवन से निकटता, यथार्थता आधुनिक एकांकी की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। इसलिए एकांकी की संरचना के तत्त्व नाटक के सामन है। परंतु एकांकी की लघुता और मितव्ययता के कारण एकांकी की सृजनशीलता में विशिष्ट कुशलता की माँग है। उसी कुशलता पर ध्यान देते हुए एकांकी के तत्त्व निम्न प्रकार के है।

1) कथावस्तू, 2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण, 3) कथोपकथन, 4) देशकाल / संकलनत्रय, 5) भाषाशैली, 6) उद्देश्य.

1) कथावस्तू :

एकांकी की कथावस्तू में एकांकीकार की अन्त:प्रेरणा विशेष रूप से सहायक होती है। परिणाम स्वरूप एकांकीकार अपने स्वभाव, रुचि, अनुभूति या विचारधारा को लोकरूचि से जोडकर जीवन यथार्थ को सामने लाता है। कथा का आधार पौराणिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक एवं यथार्थजीवन होता है। जिसके माध्यम से सामाजिक समस्या, सामाजिक जीवन की असंगतियाँ, मानवप्रकृतियाँ, मानव मन के द्वंद्व, आदर्श इत्यादी को सामने लाया जाता है। इसतरह एकांकी के कथा विषय के लिए कोई सीमा नहीं होती। परंतु सीमा है आधार की। क्योंकि, एकांकी में जीवन के कुछ उद्दिप्त क्षणों का, पहलुओं का या किसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है। अधिकारिक कथा का प्रारंभ ही विश्वसनीयता से प्रारंभ होकर अन्त की ओर विकसित होता है। इसलिए इसमें जटिलता नहीं होती है। अधिकारिक कथा के साथ-साथ गौण घटना का भी संबंध आकर वह कार्यकारण संबंध में बंधी होनी चाहिए। जिसके लिए कोई भी कार्य अपने पूर्वघटित अथवा संकेतिक कारण की परिणिती के रूप में स्वाभाविकता से उभरना चाहिए।

कथानकद्वारा ही एकांकी का ताना-बाना बुना जाता है। इसलिए कथानक का चयन जटिल नहीं होना चाहिए। बल्कि, कथासूत्र सुनिश्चित लक्ष्य की तरफ विशेष गति से बढता है। कथा विकास में स्वाभाविकता एवं कौतुहल, जिज्ञासा और रोचकता का संयोजन हो। जिसमें एकांकी की एकाग्रता, उद्देश्योन्मुखता और उत्तेजना में कोई बाधा न हो और एकांकी सफल हो जाए।

कथावस्तु के विकास में एकायामिता और प्रभावान्विती बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। जिसके लिए विस्मय, जिज्ञासा, अंतर या बाह्य संघर्ष और कौतुहल का समावेश होता है। इसलिए कथानक या कथावस्तू के तीन चरण महत्त्वपूर्ण माने है - 1) प्रारंभ, 2) विकास, 3) चरमोत्कर्ष (अंत) एकांकी के प्रारंभ में इतनी नाटकीयता

होनी चाहिए की पाठक दर्शक का मन तुरंत आकृष्ट हो। जिसके लिए प्रारी रोचक, आकर्षक और जिज्ञासावर्धक होता है।

कथावस्तु की पूर्वभूमिका को स्पष्ट करने के लिए रंगसंकेत महत्त्वपूर्ण होते है। कथानक की कडियों को जोडने अभिनय में सहाय और पात्र की रूप कल्पना के लिए रंग संकेत सहाय्य करता है।

एकांकी की दूसरी स्थिती विकास है, इसमें आरंभ में उठाई गयी समस्या, संघर्ष या भावविस्तार होता है। इसमें उलझने, रहस्यपूर्ण संकेत तथा तीव्रतम भावावेग की स्थितियाँ पैदा होती है।

एकांकी की चरमोत्कर्षता और परिसमाप्ति सामान्यत: एक साथ ही घटित होने की बात की जाती है, इस बिंदू पर साकांक्षता भी पूरी ऊँचाई पर पहुँच जाती है। जिसमें प्राय: पात्रों के दो वर्ग हो जाते हैं, जिनमें अवरुंधन चलता है और जिज्ञासा, विस्मय और कौतुहल की अवतारणा करते हुए एकांकी चरमसीमा पर पहुँचते हुए अपने लक्ष्य को प्राप्त करता है।

2) पात्र तथा चरित्र–चित्रण :

कथानक के कारण एकांकी में घटना, प्रसंगों के निर्माता–भोक्ता पात्र अनिवार्यत: संमलित रहते है। एकांकी का कलेवर छोटा होने के कारण पात्रों की संख्या कम रहती है। अधिक पात्र होने से कथानक में उलझाव आ जाता है।

स्वाभाविक रूप में चरित्र–चित्रण होने हेतू पात्र संख्या कम रखना महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए एकांकी में कथानक की रोचकता कायम रखी जा सकती है। इसलिए एकांकी में केवल दो या अधिक से अधिक पाँच–छह पात्र ही हो, वही एकांकी के लिए सर्वोत्तम है।

एकांकी में केवल दो प्रकार के पात्र हो सकते हैं – मुख्य और गौण। इनमें एक या दो प्रमुख पात्र है। अन्य गौण पात्र मुख्य पात्र की चारित्रिक विशेषताओं को उभारने या कथावस्तु को विकसित करने में सहायक होकर एकांकी में अपना स्थान प्राप्त करते है। गौण पात्र मुख्य पात्र की चारित्रिक, विशेषताओं को उभारने या कथावस्तु को विकसित करने में सहायक होकर एकांकी में अपना स्थान प्राप्त करते है। गौण पात्र मुख्य पात्र को स्वगत से बचने में महत्त्वपूर्ण सहायक बनकर अपनी भूमिका के अनुरूप उत्तेजक, माध्यम, सूचक या प्रभाव व्यंजकता के कार्य करते है।

एकांकी के चरित्र में स्वाभाविकता, यथार्थता और मनोवैज्ञानिकता का ध्यान रखना आवश्यक होता है। क्योंकि चारित्रिक, स्वाभाविक, स्पष्टता एवं नि:ष्पक्षता ही एकांकी को पूर्णत्त्व प्रदान करता है। इसलिए पात्रों की संख्या सिमित होती है। आजकल तो एक पात्री एकांकी सामने आई है। जिन्हें 'मोनोलॉग' या 'मोनोप्ले' कहते है; यह एकंकी बहुत ही सफल हो रहे है।

3) कथोपकथन संवाद :

'संवाद' भावभिव्यक्ति का माध्यम हैं। संवाद चरित्रांकन, कथावस्तु का विकास एवं घटनाओं को गति देने को महत्त्वपूर्ण कार्य करते है। इसलिए संवाद या कथोपकथन को एकांकी का प्राण कहा जाता है।

एकांकी के संवाद नाटक की अपेक्षा संक्षिप्त और मर्मस्पर्शी होने चाहिए। एकांकी के संवादों में कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक भावों और विचारों को व्यंजित करने की क्षमता होनी चाहिए। परंतु साथ ही वह बोझिल ना हो। बल्कि, कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक प्रभाव उत्पन्न करने की क्षमता हो। इसलिए प्रत्येक शब्द नाप-तोलकर चुनना चाहिए।

इसलिए एकांकी के संवाद प्रसंगानुरूप एवं पात्रानुकूल ही होने चाहिए। वे उचित वातावरण एवं नाटकीय परिस्थितियाँ उद्दिप्त करने में सहाय करते है। इलिसए संक्षिप्त और गर्भित, पात्रानुकूल, स्वाभाविक एवं वाग्विद्ग्धतापूर्ण संवाद एकांकी की प्रभावात्मकता को बनाये रखते है।

आधुनिक एकांकी में स्वाभाविकता को बनाये रखने के लिए स्वगत से बचाया जाता है। बल्कि टेलिफोन पर बातचीत, आकाशभाषित संवाद तो कभी-कभी पशु-पक्षियों को माध्यम बनाकर मानसिक स्थिती को व्यक्त करने में साह्य लिया जाता है।

4) देशकाल वातावरण या संकलन त्रय :

एकांकी के इस तत्त्व में कथा से संबंधित स्थान, समय तथा कार्य की एकता की ओर विशेष ध्यान रखा जाता है। इसमें दो बातें महत्त्वपूर्ण होती है। प्रथम-जिस समय तथा जिस स्थान अथवा देश तथा अंचल विशेष से कथावस्तु संबंधित रहती है उसके अनुरूप वातावरण प्रस्तुत किया जाये, जिससे एकांकी की समग्र रूप से स्वाभाविकता प्रतीत हो। द्वितीय-एकांकी में घटित होनेवाली घटना का क्षेत्र, स्थान और घटित होने की अवधि ऐसी हो जो एकांकी के समय को देखते हुए अस्वाभाविक न बन जाये। इस तत्त्व को ही संकलन-त्रय कहते है।

आधुनिक काल में संकलनत्रय के निर्वाह को कठोरता से पालन करने की प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती है, फिर भी एकांकी में अंतर्निहित भाव, विचार या संवेदनागत एकसूत्रता आवश्य मानी गयी है।

साथ ही संकलनत्रय में घटना-प्रसंगों के अनुकूल परिवेश देने के लिए दृश्यसज्जा, प्रकाशयोजना, ध्वनि-योजना आदि का समोचित प्रयोग एकांकी को प्रभावशाली बनाने में सहायभूत होता है।

5) अभिनय :

एकांकी घटना विधा का छोटा रूप होने के कारण इसमें 'अभिनय' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुछ विद्वान एकांकी को रेडिओ के लिए लिखी जानेवाली विधा मानते है। परंतु आज एकांकी का बढता मंचन उसके अभिनय तत्त्व को रेखांकित करता है। आज कल संस्थाओं, विद्यालयों तथा क्लबों में एकांकी-मंचन अधिक हो रहे है। इसलिए अभिनय तत्त्व का एकांकी में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

6) शैली :

एकांकी विधा में शैली तत्त्व अनिवार्य तत्त्व हैं। एकांकी शैली के अंतर्गत पात्रों की भाषा, रंगमंच की व्यवस्था और एकांकीकार के विचार, भाव, मनोवृत्तियों आदि बाते आती है। एकांकी की संकल्पना के लिए

शैली के साथ-साथ भाषा का भी स्थान महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि रंगमंच एवं अभिनेयता की दृष्टी से अनुकूल, भाव एवं विचार अभिव्यक्ति महत्त्वपूर्ण होती है जिसका माध्यम भाषा है। इसलिए एकांकी की भाषा अत्यंत सरल, सहज तथा स्वाभाविक होनी चाहिए। प्रसंगानुकूल और पात्रानुकूल भाषा एकांकी के प्रथम गुण है।

क्योंकि प्रसंगानुरूप भाषा में उतार-चढाव होने से एकांकी की कथा में निखार आता है।

आधुनिक एकांकी यथार्थवाद को सामने लाती है। इसलिए ऐसी ही भाषा का प्रयोग करे जो प्रतिदिन प्रयोग में लायी जाती हो। जिसमें एकांकी वास्तविक एवं सच्चे लगे। आधुनिक एकांकी में 'स्वगत-कथन' को दूर रखा जाता है। प्रसंगानुरूप रंग संकेत का प्रयोग किया जा रहा है। साथ ही आधुनिक एकांकीकार यथार्थता को सामने लाने के लिए भावात्मक, विचारात्मक, आत्मकथात्मक, विश्लेषणात्मक एवं गवेषणात्मक आदि शैलियों का प्रयोग कर रहे है।

7) उद्देश्य :

आधुनिक एकांकी जीवन के अधिक निकट है। अत: वह सो उद्देश्य लिखी जाती है। आज साहित्य (कला) का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ जीवन के लिए उपयोगिता एवं सार्थकता है। एकांकी का मुख्य उद्देश्य जीवन के किसी महत्त्वपूर्ण घटना, पहलू और उद्दिप्त क्षणों को प्रस्तुत करना है। जिसके माध्यम से एकांकीकार जीवन यथार्थ को सामने लाकर भावाभिव्यंजना द्वारा दर्शक पर स्थायी प्रभाव छोडने का उद्देश्य रखता है। अत: कह सकते है कि एकांकीकार समाज में सुधार लाने हेतु एकांकी नाटक का निर्माण करता है।

इस तरह हिंदी में एकांकीनुमा नाटक लेखन की परंपरा भारतेंदू हरिश्चंद्र से प्रारंभ होकर आज तक विविध रूपों को लेकर प्रस्तुत हो रही है। आधुनिक काल में तो एकांकी के रचनातंत्र की सहाय्यता से 'लघुनाटक' लिखे जा रहे और वे प्रचलित भी हो रहे है।

2.3.2 कहानी : स्वरूप एवं तत्त्व :

2.3.2.1 प्रस्तावना :

आज साहित्य में कहानी विधा एक स्वतंत्र कला के रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य प्रकार है।। आज कहानी विधा, उपन्यास विधा की अनुजा होते हुए भी अपने स्वतंत्र कलात्मक विकासद्वारा साहित्य में विशिष्ट स्थान ग्रहण कर चुकी है।

कथा साहित्य की उत्पत्ति सर्वप्रथम कहाँ और किस रूप में हुई, यहा आज बता सकना कठीण है। परंतु, मनुष्य की अभिव्यक्ती की लालसा अत्यंत प्राचीन है। इसलिए भाषा के विकास के साथ अभिव्यक्त होने का धीरे-धीरे विकास होता रहा और यही कहानी का प्रारंभ होगा। जो कहानी का अस्तित्व मनुष्य जीवन में अत्यंत पुराना रहा है। और यह सर्वकाल तथा सर्व देश में विद्यमान है। अंत: कहानी के रूपों में भी देशकाल तथा परिस्थितियों की विभिन्नता के अनुरूप परिवर्तन आते गए है। आज कहानी अपने प्राचीन रूप में पर्याप्त विभिन्न एवं विकसित रूप में है। प्रारंभ में वह मनोरंजन प्रधान, नितीप्रधान, आध्यात्मिक दिखाई देती हैं परंतु, इसके

पश्चात उसका प्रमुख लक्ष्य मनोरंजन रहा है। लेकिन आधुनिक कहानी का लक्ष्य वर्तमान मानवी जीवन यथार्थ को सामने लाना है।

2.3.2.2 कहानी का स्वरूप :

प्राचीन भारतीय साहित्य में कहानी का मूल रूप कथा (आख्यान, उपख्यान) तथा आख्यायिका में दिखाई देता है। परंतु, आज कहानी इन प्राचीन रूपों से अलग रूप धारण कर चुकी है, वह निरंतर विकासशील हो रही है और दूसरी ओर मूल में अनेक विभिन्न तत्त्व कार्य कर रहे, जिससे आधुनिक कहानी को एक परिभाषा में बाँधना कठीण हो गया है। इसलिए कहानी की एक-दो परिभाषाओं के लेखन के बाद हम कहानी के स्वरूप पर विचार कर सकते है।

कहानी, गल्प, लघुकथा अथवा आख्यायिका कहानी के रूप एक ही है। गल्प साहित्य को आधुनिकतम रूप प्रदान करने वाले अंतरिका के सुप्रसिद्ध गल्पकार एडगर एलिन पो प्रमुख है। वह कहानी परिभाषा इस प्रकार देते है, ''छोटी कहानी एक ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा है कि एक बैठक में पढा जा सके और जो पाठक पर एकही प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए लिखा गया हो। उसमें ऐसी बातों को त्याग दिया जाता है जो उसकी प्रभावोत्पदकता में बाधक हो। वह स्वत: पूर्ण होती है।''

हिंदी के सुप्रसिद्ध कहानीकार मुन्शी प्रेमचंद कहानी के बारे में कहते हैं,

''गल्प ऐसी रचना है जिसमें जीवन के किसी एक अंग या किसी एक मनोभाव को प्रदर्शित करना ही लेखक का उद्देश रहता है। उसके चरित्र, उसकी शैली, उसका कथा-विन्यास सब उसी एक भाव को पुष्ट करते है। उपन्यास की भाँति उसमें मानव जीवन का संपूर्ण तथा बृहद् रूप दिखाने का प्रयास नहीं किया जाता, न उसमें उपन्यास की भाँति सभी रसों का संमिश्रण होता है। वह ऐसा रमणीय उद्यान नहीं जिसमें भाँति-भाँति के फूल, बेल, बूटे सजे हुए है, बल्कि एक ऐसा गमला है जिसमें एक ही पाँधे का माधुर्य अपने समुन्नत रूप में दृष्टीगोचर होता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखने पर कहानी के स्वरूप के बारे में कह सकते है कि कहानी में मानवजीवन की यथार्थ घटनाओं के एक अंग, एक अंश, एक पहलू तथा एक संवेदना को संक्षिप्त और संश्लिष्ट रूप में अभिव्यक्त करती है। अर्थात् मनुष्य जीवन के विविध रूपों में से एक रूप की ही अभिव्यक्ति मात्र कहानी है। जिसमें वह अपना एक-ही-एक प्रभाव छोडती है, जिसमें वैयक्तिक दृष्टिकोण की प्रधानता और तन्मयता होती है। इसके हेतु उसमें घटना और तथ्य-निरूपण की प्रधानता रहती है। उसमें वैयक्तिकता की प्रधानता के साथ साथ पात्रों के समावेश, चरित्र-चित्रण और निरूपण द्वारा एक ही घटना तथा तथ्य का वर्णन करते हुए प्रभावात्मक ढंग से निश्चित उद्देश्य की अभिव्यक्ति होती है। जिसमें पात्रों के क्रिया कलाओं, वार्तालापों, मानसिक संघर्षों को आवश्यक रूप में प्रकट करने के लिए भाषा-शैली साधन के रूप में सहाय करती है।

उपर्युक्त विवेचन से कहानी के निम्न तत्त्व दृष्टव्य है - 1) कथानक या कथावस्तु, 2) पात्रों का चरित्रचित्रण, 3) कथोपकथ या संवाद, 4) देश-काल वातावरण, 5) भाषा-शैली, 6) उद्देश्य।

कुछ कहानीकारों ने कहानी के शीर्षक को भी तत्त्व के अंतर्गत रखा है।

2.3.2.3 कहानी के तत्त्व :

प्रस्तावना :

आधुनिक हिंदी साहित्य की कहानी विद्या इस सर्वाधिक लोकप्रिय साहित्य विधा पाश्चात्य साहित्य (Fiction) पिकक्षण से प्रभावित है। जिसमें Fiction का हिंदी पर्याय कथा साहित्य है। जिसके उपन्यास और कहानी में उपन्यास और कहानी 'कथा' शब्द कथन पर एक साहित्य में संबंधित है जिसके रूप प्राचीन भारतीय साहित्य में आख्यायिका, कथा, आख्यान, उपख्यान के रूप में मौखिक कथाओं से पौराणिक कथाएँ, निती कथाएँ, प्रतीक कथाएँ तथा आचारकथाएँ आती है। तो मनोरंजनक कथा के अंतर्गत शिकार कथाएँ, साहसिक कथाएँ, आश्चर्यजनक, अनुभव कथाएँ, दंतकथाएँ, उपख्यान, सत्य कथाएँ, ऐतिहासिक कथाएँ आती है।

भारतीय साहित्य में कथा साहित्य की पुरानी परंपरा है। जिसके आख्यायिका, कथा (आखयन, उपख्यान) मौखिक रूप प्रचलित थे। जैसे पौराणिक कथाएँ, निती कथाएँ, प्रतीक कथाएँ तथा आचार कथाएँ आती हैं हिंदी में यह विधा 'कहानी' नाम से प्रचलित है। कथा शब्द अंग्रेजी शब्द Short Story के लिए हिंदी पर्याय है। इसकी उत्पत्ति कथ् धातू से हुई है, जिसका साधारण अर्थ होता है – वह जो कहा जाए। अर्थात् कथा साहित्य के लिए कहनेवाले और सुननेवाले आदि दोनों का होना अनिवार्य होता हैं अर्थात् जो कहा जाये वह सब कथानक के अंतर्गत नहीं आता। बल्कि कथा साहित्य में घटना का आत्याधिक महत्त्व होता है। जिसमें मनुष्य जीवन के किसी विशेष घटना, अंश, एकांकी को क्रमबद्ध तरीके से वर्णित करना पडता है। अर्थात् कहानी के लिए वर्णनात्मकता महत्त्वपूर्ण होती हैं आधुनिक काल में कहानी साहित्य मनुष्य जीवन के यथार्थ से जुडी हुई है। जो कहानी मनुष्य के वास्तविक जीवन से संबंध रखती है। अत: वर्तमानकाल में कहानी विधा अत्याधिक लोकप्रिय हो रही है। जिसके निम्न तत्त्व है।

1) कथानक अथवा कथावस्तु :

कहानी की कथा संक्षिप्त होती है। इसमें जीवन की कोई घटना या उसका एक अंग या एक अंश या कोई अनुभूति या एक संवेदना कहानी का कथानक हो सकता है। इतिहास, पुराण, धर्म, समाज, राजनिती, मनोविज्ञान, दैनिक जीवन की घटनाएँ, कल्पनाएँ आदि कहीं से भी लिखा जा सकता है। आज की कहानी यथार्थता से जुडी है। जिसमें मार्मिक अनुभूति दृष्टव्य हे।

कहानी की कथावस्तु में मौलिकता एवं रोचकता के साथ-साथ विश्वसनीयता और क्रमबद्धता अनिवार्य है। कहानी की कथावस्तु किसी सत्य को उद्घाटित करने में समर्थ होनी चाहिए। जिस कारण उसमें संवेदना, संघर्ष, कौतुहल, उत्सुकता और शिल्पगत नवीनता का होना महत्त्वपूर्ण गुण माने गए है। इन गुणों से कहानी की प्रभावात्मकता बढकर वह सफल बन जाती है।

उपर्युक्त कहानी प्रधान गुणों के साथ-साथ कहानी लेखन के निम्न अंग महत्त्वपूर्ण होते है –

1) कहानी का शीर्षक, 2) कहानी का आरंभ, 3) कथानक का मध्य या विकास, 4) चरमसीमा, 5) कहानी का अंत।

1) कहानी का शीर्षक : कहानी का शीर्षक मोहक एवं आकर्षक होना चाहिए क्योंकि कहानी का शीर्षक पढकर ही पाठक की उत्सुकता बढकर वह उसे पढने या पढाने का निर्णय लेता है। शीर्षक संक्षिप्त, संबंध और रंजक होना चाहिए।

2) कहानी का आरंभ : कहानी का आरंभ आकर्षक होना चाहिए। आरंभ में ही कथानक के मुख्य सूत्र का संकेत दिया जाए। उसमें पात्र का संक्षिप्त परिचय हो। साथ ही रोचकता से मुख्य आरंभ पाठक का कुतुहल बनाने में सक्षम हो।

3) कथानक का मध्य या विकास : घटना को विचार देने के लिए पात्रों के कार्य व्यापार को सुव्यवस्थित एवं सोद्देश्य विस्तार देकर कथा सूत्र का विकास कायम रखकर चरमसीमा की ओर ले जाना चाहिए।

4) चरमसीमा : कथानक के विकास क्रम में एक ऐसी स्थिती निर्माण हो जाती है कि विषय वस्तु, चरित्र या उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है।

5) कहानी के अंत की अवस्था : कहानी के अंत की अवस्था चरम सीमा के बाद तुरंत आ जाती है। जिसमें कहानी की दिशा को बदलकर मुख्य कथानक से अंत संबंधित प्रभाव पैदा कर पाठक को चौका देनेवाला हो। जिसमें संवेदनात्मक अन्विति, प्रभाव की प्रमुखता हो।

2) कहानी में चरित्र–चित्रण :

कहानी में जीवन के किसी एक घटना, अंश या संवेदना का चित्रण होने से कहानी का आकार लघु होता है। अपनी संक्षिप्तता के कारण कहानी में पात्रों की संख्या बहुत कम होती है। पात्रों के व्यवहार में स्वाभाविकता, वास्तविकता और मनोवैज्ञानिकता प्रतीत हो। पात्र कथानरूप, चारित्रिक विशेषता से युक्त पात्रों का चरित्रचित्रत्रण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष आदि दो पद्धतियों से किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रणाली में लेखक स्वयं पात्रों का वर्णन करता है और अप्रत्यक्ष प्रणाली में पात्रों के परस्पर संवादों के द्वारा पात्रों का चरित्र उद्घाटित किया जाता है। प्रत्यक्ष प्रणाली में घटना, पात्रों के संवादों, आत्मकथनों, आत्मचिंतन द्वारा अप्रत्यक्ष चरित्र–चित्रण होता है। प्रत्यक्ष प्रणाली में पात्रों के चरित्र चित्रण के संबंध में लेखक स्वयं परिचय देता है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रणाली के अलावा परिचयात्मक और विश्लेषणात्मक पद्धतियों का प्रयोग भी किया जाता है। परिचयात्मक पद्धति में लेखक स्वयं पात्र संबंधी सबकुछ कहता है। वही विश्लेषणात्मक पद्धति में लेखक घटना–प्रसंगों, विभिन्न दृश्यों अथवा मनोभावों के द्वारा चरित्र का उद्घाटन करता है।

3) कथोपकथन या संवाद :

कथोपकथन को संवाद, वार्तालाप, बातचीत आदि भी कहा जाता है। कथावस्तु के विकास अथवा घटनात्मक नियोजन के लिए वार्तालाप का उपयोग किया जाता है। कहानी में कथोपकथन तीन कार्य के लिए

सहायक होता है। 1) चरित्र-चित्रण में, 2) घटनाओं को गतिशील बनाने और 3) भाषा-शैली का निर्माण करने के लिए। कथोपकथन से कहानी में प्रवाह, सजीवता और औत्सुक्य को निर्माण किया जाता हैं जिसके लिए कहानी के संवाद, पात्रानुकुल, देशकाल वातावरण और परिवेश से युक्त होने चाहिए। कथोपकथन संधिग्धता, सूक्ष्मता, स्वाभाविकता, कुतूहल, रोचकता, नाटकीयता, चमत्कारिकता आदि गुणों से युक्त होने चाहिए। जिसके लिए संवादों में संक्षिप्तता, स्वाभाविकता, उपयुक्तता, अनुकूलता, संबंद्धता और मार्मिकता यह विशेषता आवश्य होनी चाहिए। जिससे कहानी रोचक एवं स्वाभाविक बनकर प्रभावशाली सिद्ध हो।

4) देशकाल-वातावरण :

कहानी आकार से संक्षिप्त होने के कारण एक ही उद्देश्य अथवा प्रभाव पर पाठक का ध्यान केंद्रित करने के लिए उचित वातावरण निर्माण की आवश्यकता होती है। अत: स्थानों, विभिन्न दृश्यों, परिस्थितियों, विभिन्न भावों के विस्तृत चित्रण को कहानी में स्थान नहीं होता है। पाश्चात्य विद्वानों ने कहानी के वातावरण निर्माण में स्थानीय रंग की योजना को महत्त्वपूर्ण माना है। इससे पात्रों के मनोभाव जागृत होते है। कहानी में वातावरण तीन प्रकार का कार्य करता है। 1) भावों का उद्दीपन, 2) सौंदर्य की अनुभूती और 3) सहानुभूति निर्माण करना आदि। साथ ही पात्रों के भाव-विशेष, मनोवैज्ञानिक स्थिति के चित्रण के लिए वातावरण से सजीवता उत्पन्न की जाती है। उचित वाताावरण निर्माण से कहानी के काल्पनिक चित्रण को भी सजीव, विश्वसनीय और रोचक बनाया जा सकता है। इसलिए कहानी में देश, काल तथा वातावरण का चित्रण बनाया जा सकता है। इसलिए कहानी में देश, काल तथा वातावरण का चित्रण बहुत स्वाभाविक आकर्षक और यथासंम्भव पात्रों की मानसिक स्थिती के अनुकूल होना चाहिए।

5) भाषा और शैली :

कहानी के अन्य सभी तत्त्वों से भाषा और शैली तत्त्व संबंधित रहता है। क्योंकि साहित्य का मूल साधन भाषा ही है। कहानी की भाषा सरल, स्पष्ट, सशक्त और कलापूर्ण होनी चाहिए। भाषा की सजीवता और व्यावहारिकता कथा में गतीशीलता उत्पन्न करने में सहायक होती है। कहानी में प्रभावोत्पादकता निर्माण के लिए लेखक द्वारा शब्द शक्तियाँ, लक्षण, व्यंजन तथा अलंकार का प्रयोग होता है और उपकरण के रूप में लोकोक्तियों, कहावतों और मुहावरों का प्रयोग होना चाहिए।

भाषा की शक्ति पर शैली की उत्कृष्टता अवलंबित रहती है। इसलिए कहानी के विषय, उद्देश्य के अनुसार भाषा की विशेषताएँ सामने आती है। जैसे वर्तमान प्रधान कहानी में किसी प्रसंग, घटना अथवा दृश्य के वर्णन के लिए भाषा की प्रवाहात्मकता कहानी में प्रभाव उत्पन्न करती है। प्राकृतिक दृश्यों अथवा अनुभूती से युक्त प्रसंगों में चित्रात्मक भाषा का प्रयोग अधिक प्रभाव पैदा करता है। वही कहानी की संक्षिप्तता को ध्यान में रखकर भाषा की व्यंजकता की ओर ध्यान देना महत्त्वपूर्ण होता है। साथ ही कहानी की भाषा प्रसंगानुकूल, चटपटी, गंभीर, रसग्राही होनी चाहिए। प्रसंग को समग्रता, सहजता और प्रभाव के साथ चित्रित करने की क्षमता होनी चाहिए। पात्रों का चरित्र उद्घाटित करने के लिए पात्रों का सामाजिक स्तर, उम्र, शिक्षा, आचार-विचार, भावस्थिती आदि के अनुरूप पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग होना चाहिए।

आधुनिक कहानी पाश्चात्य कहानी पर आधारित है। परिणाम स्वरूप कहानियों के संगठन और स्वरूप और शैलियों में काफी परिवर्तन हुआ है। जिससे आधुनिक कहानी में सरलता अधिक है और भाषा के विश्लेषण, मानसिक संघर्ष और चरित्र-चित्रण पर अधिक बल दिया जाता है। बौद्धिकता की प्रधानता के कारण मानव जीवन के यथार्थ का सूक्ष्मता से अंकन कहानी के विकास के साथ शैलियों का विकास भी करता है। जिसके लिए आज कहानीकार विचार-भाव और अनुभूतियों के आधार पर विविध शैलियों के प्रयोग कर रहे है। जैसे वर्णनात्मकशैली, विश्लेषणात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, संवादात्मक शैली, पत्रशैली, डायरी शैली आदि प्रमुख शैलियों का प्रयोग हो रहा है। इन शैलियों में आलंकारिता, प्रतीकात्मकता, प्रवाहात्मकता, रोचकता, भावात्मकता, व्यंग्यात्मकता और आंचलिकता आदि विशेषताओं का विषय पात्र एवं स्थान के आधार पर उपयोजित कर कहानी की प्रभावात्मकता को बढावा देकर कहानीकार कहानी को सफल बना सकता है।

6) कहानी का उद्देश्य :

कहानी का उद्देश्य प्रमुखत: मनोरंजन ही रहा है। परंतु इस मनोरंजन के पीछे एक ध्येय वर्तमान रहता है। और यह ध्येय मानव जीवन की किसी मार्मिक अनुभूति को अभिव्यक्त करना होता है। कहानीकार मानव-मन के उन तथ्यों को या गहरी अनुभूतियों को व्यक्त करता है, जो जीवन के अंतरम से संबंधित होती है। जिससे मानव जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है।

वर्तमानयुग की कहानियों में चरित्र-चित्रण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। क्योंकि चरित्र-चित्रण में पात्रों के मनोविश्लेषण के माध्यम से जीवन की विसंगतियों, जटिलताओं, समस्याओं एवं सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला जा सकता है। इसलिए वर्तमान कहानियों का उद्देश्य उपदेश न रहकर मानवजीवन के रहस्यों को खोलना है। उसकी विभिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्या करना है और इस प्रकार कहानी के उपरोक्त छह: तत्त्व अनिवार्य होते हैं। साथ ही कहानी के लिए शीर्षक तत्त्व भी महत्त्वपूर्ण माना जाता है। कहानी का शीर्षक छोटा एवं संक्षिप्त, आकर्षक होना चाहिए। शीर्षक में संपूर्ण कथा का अर्थ विहित होता है। घटना या पात्र के आधार पर भी शीर्षक दिया जाता है। इस तरह कहानी के उपरयुक्त तत्त्वों को लेकर आधुनिक कहानी नए नए विचार, जीवनदृष्टियों को लेकर नये नये रूपों में प्रस्तुत हो रही है।

2.3.3 उपन्यास : स्वरूप एवं तत्त्व :

2.3.3.1 प्रस्तावना :

आधुनिक युग की महत्त्वपूर्ण विधा 'उपन्यास' है। आज उपन्यास मनोरंजन की अपेक्षा मानसिक विश्लेषण और सामाजिक निरीक्षण की मात्रा अधिक है। इस विधा को विदेशी साहित्य से प्रभावित माना जाता है। परंतु भारत में उपन्यास विधा कथा, आख्यायिका के रूप में प्राचीन काल से चली आ रही है। लेकिन आधुनिक युग के जटिलता से भरे मानव मन की अंतरिक अनुभूति, कोमलतम, कल्पना और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति से युक्त मानव जीवन की व्याख्या लानेवाली यह विधा अत्याधिक प्रसिद्ध हुई है। इसलिए जहाँ प्रारंभ में उपन्यास की रचना मनोरंजन के लिए की जाती थी, वहीं आज उपन्यास व्यक्ति, समाज और उसकी बौद्धिक तथा नैतिक

धारणाओं के विश्लेषण के लिए लिखे जाने लगे है। जीवन के अधिक निकट रहने के कारण आज उपन्यास विधा सबसे चर्चित विधा के रूप में दिखाई देती है।

2.3.3.2 उपन्यास – स्वरूप :

आधुनिक उपन्यास विधा का रूप संस्कृत लक्षण ग्रंथों में दिखाई देता है। परंतु उनका विस्तृत अर्थ आज जिस अर्थ में लिया जा रहा है। वैसा प्राचीन ग्रंथों में नहीं था। 'नाट्यशास्त्र' में वर्णित प्रतिमुख संधि का एक उपभेद उपन्यास है। 'नाट्यशास्त्र' में उपन्यास की परिभाषा इसप्रकार दी है।

''उपपत्तिकृतोह्यर्थ : उपन्यास : प्रकिर्तीत:।''

अर्थात्, किसी शब्दों को उसके युक्ति युक्त अर्थ में प्रस्तुत करने को ही उपन्यास कहा जाता है। परंतु आज उपन्यास शब्द के अंतर्गत गद्य द्वारा अभिव्यक्त संपूर्ण कथा को स्वीकारा जाता है। इसलिए आज 'उपन्यास' का अर्थ इस रूप में देखा जाता है। उपन्यास 'उप' और 'न्यास' दो शब्दों से मिलकर बना है। 'उप' का अर्थ समीप और 'न्यास' का अर्थ होता है 'रखना'। इस प्रकार उपन्यास का अर्थ हुआ पास रखना। अर्थात् उपन्यास वह है जिसमें उपन्यासकार मानव जीवन की यथार्थ घटनाओं को लेकर कल्पना का जामा पहनकर एक नये रूप में प्रस्तुत करता है। उपन्यासकार इसमें मानव जीवन से संबंधित सुखद एवं दु:खद किन्तु मर्मस्पर्शी घटनाओं को निश्चित तारतम्य के साथ चित्रित करता है।

आधुनिक काल में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से सर्वप्रथम बंगला साहित्य में प्राप्त होता है। सन् 1856-57 में ऐतिहासिक उपन्यास के नाम से 1861 में एक अद्भुत उपन्यास के रूप में और 1864 में बंगाल की पत्रिका 'बंगदर्शन' में उपन्यास शब्द का प्रयोग हुआ दिखाई देता है।

अंग्रेजी में उपन्यास को (Novel) कहते है। इसके प्रभाव से गुजरात में उपन्यास को 'नवल कथा' कहा जाता है। दोनों में नया अर्थ निहित है। यह विधा नई रही है। इसलिए शायद इसे नयी कविता नयी कहानी की तरह 'नवल कथा' कहा है। हिंदी में सबसे पहले 1871 में 'मनोहर' उपन्यास में उपन्यास शब्द प्रयुक्त हुआ। परंतु विद्वानों ने इसे उपन्यास नहीं माना है। बल्कि हिंदी का प्रथम उपन्यास 'परिक्षा गुरू' को स्वीकार किया गया है।

उपन्यास के स्वरूप को समझने के लिए एक-दो परिभाषा देखनी आवश्यक है। उपन्यास सम्राट मुन्शी प्रेमचंद्र उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार करते हैं, ''मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र-मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्त्व है। बाबू गुलाबराय इस सिद्धांत के अनुसार उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार करते है, ''उपन्यास कार्य-कारण-श्रृंखला में बंधा हुआ वह गय कथानक है जिसमें अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा पेचीदगी के साथ वास्तविक जीवन का प्रतिनिधित्व करनेवाले व्यक्तियों से संबंधित वास्तविक काल्पनिक घटनाओं द्वारा मानव जीवन के सत्य का रसात्मक रूप से उद्घाटन किया जाता है।''

डॉक्टर श्यामसुंदर दास उपन्यास की परिभाषा इस प्रकार देते है, ''उपन्यास मनुष्य के वास्तविक जीवन की काल्पनिक कथा है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं को देखनेपर उपन्यास का स्वरूप इस प्रकार दिखाई देता है। उपन्यास मानव जीवन की आंतरिक और बाह्य परिस्थितियों का उसके मन के संघर्ष का, उसके चारों ओर के वातावरण एवं समाज का एक काल्पनिक कथा चिज है। अर्थात् उपन्यास जनसाधारण के धरातल पर लिखा हो। उसकी कथावस्तु काल्पनिक होते हुए भी जीवन के यथार्थ ले ली गई हो। उसके अवांतर कथाओं के मेल रहने पर भी उसकी इसकथा का स्वरूप स्पष्ट हो। भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए। उपन्यासकार उपन्यास में जिन विचारों को व्यक्त करता है, उसकी दो विधियाँ अपनाता है – प्रत्यक्षविधी, अप्रत्यक्षविधी। प्रत्यक्षविधी में लेखक अवकाश निकालकर स्वयं किसी सिद्धांत का प्रतिपादन करने लगता है और अप्रत्यक्ष विधी में वह पात्रों के माध्यम से बोलता है। प्राय: लेखक अपने प्रधान पात्रों के माध्यम से बोलते है। जिसमें जीवन के सदृश्य व्यक्तित्व-विश्लेषण और इतिहास के सदृश्य घटनाओं का चित्रण होता है। वही दूसरी ओर कविता की कल्पना, भावों की पुष्टता एवं शैली का सौंदर्य और रोचकता हो जिससे उपन्यास को सफलता मिलेगी।

2.3.3.3 उपन्यास के तत्त्व :

प्रस्तावना : आधुनिक उपन्यास अंग्रेजी साहित्य Novel से प्रभावित है। इसलिए उसकी रूप-रचना पाश्चात्य उपन्यास शिल्प से प्रभावित है। अंत: हिंदी उपन्यास के तत्त्वों का विवेचन पाश्चात्य उपन्यास शास्त्र के आधारपर होना चाहिए। पाश्चात्य साहित्य में उपन्यास के छ: तत्त्व माने गए हैं। वही हिंदी उपन्यास के लिए पात्र है।

1) कथावस्तु, 2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण, 3) कथोपकथन संवाद, 4) देशकाल-वातावरण, 5) भाषाशैली, 6) उद्देश्य।

1) कथावस्तु :

'उपन्यास' का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व कथावस्तु होता है। उपन्यास में प्रयुक्त होनेवाले साधनों में कथानक का अत्याधिक महत्त्व रहता है। उपन्यास या कथा का संपूर्ण ढाँचा कथानक के आधार पर ही खडा होता है। क्योंकि जो तत्त्व रीढ की हड्डी के समान सारी घटनाओं को गतीशील बनाता है, उसे कथानक कहते है। उपन्यास की कथावस्तु में कार्य कारण संबंध प्रमुख होता है और आगे की घटनाओं का कोई न कोई उचित कारण दिया जाता है। अर्थात् कथावस्तु उपन्यास में वर्णित घटनाओं का वह संग्रह है जिस पर उपन्यास का ढाँचा खडा होता है। जिसके द्वारा उपन्यासकार के विचार सामुहिक रूप में अभिव्यक्त होते है। उपन्यासकार अपने कथानक का चुनाव एक सामान्य घटना से लेकर राज्यक्रांती तक कर सकता है। अर्थात् इतिहास पुराण या जीवन के किसी भी क्षेत्र से घटना का चुनाव किया जा सकता है। परंतु उपन्यासकार जिस किसी विषय का चुनाव करे उस विषय का उसे संपूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

उपन्यासकार को संपूर्ण कथानक को सुसंबंधित रूप में प्रस्तुत करना होता है। इसलिए उपन्यास की

कथावस्तु इतनी छोटी न हो कि उसमें सौंदर्य उत्पन्न हो न हो पाए और न इतनी अधिक बडी हो कि आगे पढते चले जाए और पीछे का भूलते जाए। कथावस्तु का पूर्ण निर्वाह प्रारंभ से अंततक होना चाहिए। सभी उलझने अंत तक पहुँचते-पहुँचते सुलझती जानी चाहिए। जीवन के किसी भी विषय पर लिखना हो उस का स्वअनुभव लेकर उसे कल्पना का पुट देना होता है। कथावस्तु ऐतिहासिक हो या काल्पनिक किंतु लेखक को न्यूनाधिक रूप में अपनी कल्पना का आश्रय लेकर उसे सरलता एवं प्रभावकरिता प्रदान करनी पडती है। कथावस्तु जीवन से संबंधित किसी भी प्रकार की हो सकती है। चाहे वह राजनीतिक हो या धार्मिक, साहित्यिक हो या सांस्कृतिक, ऐतिहासिक हो या पौराणिक, रोमांटिक हो या जासूसी उनमें अलौकिक या अस्वाभाविक अंश का समावेश नहीं होना चाहिए। बल्कि कथानक में विषयानुरूप मानव जीवन, समाज और स्थिति का वर्णन स्वाभाविक हो।

उत्तम कथावस्तु में संगठन, अनुपात, घटनाओं का सहज विकास, रोचकता, गति, स्वाभाविकता, मौलिकता तथा सत्यता के गुण विद्यमान रहते है। उपन्यास की कथावस्तु में मानव जीवन की परिस्थितियों एवं उनकी समस्याओं का ऐसा सजीव चित्रण होना चाहिए जो बिल्कुल सत्य हो या यथार्थ होते हुए भी रोचक हो। समाज के आदर्श चरित्रों के माध्यम से उपन्यास में प्रकट होते है। जीवन के उत्थान-पतन का मनोवैज्ञानिक चित्र उपन्यास की कथावस्तु में होता है। सभी घटनाओं को एक श्रृंखला में रखना चाहिए। जिससे वे समन्वित रूप में एक प्रतीत हो।

सामान्यत: उपन्यास को कथावस्तु प्रत्यक्ष प्रणाली या आत्मकथा प्रणाली अथवा 'पत्र प्रणाली' के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।

2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण :

उपन्यासों की सबसे बडी विशेषता पात्रों का व्यक्तित्व या चरित्र-चित्रण होता है। उपन्यास में चित्रित घटनाएँ जिनसे संबंधित होती है या जिनको लेकर उन घटनाओं का घटित होना दिखाया जाता है। वे पात्र कहलाते है। पात्रों के बिना कथानक नहीं चल सकता है। उपन्यास का विषय मानव जीवन से संबंधित होने के कारण पात्रों का चयन समाज के किसी भी वर्ग से किया जा सकता है। विभिन्न प्रकृति और प्रवृत्ति के पात्र उपन्यास में होते हैं। उसका मुख्य उद्देश्य मानव की कमजोरियों के साथ ही उसकी सफलताओं का प्रदर्शन भी है। क्योंकि समाज के कोई भी दो प्राणी एक जैसे नहीं होते, हर एक में कुछ न कुछ भिन्नता होती है। इस संदर्भ में प्रेमचंद कहते है, ''किन्ही भी दो आदमियों की सूरते नहीं मिलती, उसी भाँति आदमियों के चरित्र भी नहीं मिलते। जैसे सब आदमियों के हाथ, पाँव, आँख, कान, नाक, मुँह होते हैं। उसी भाँति सब आदमियों के चरित्रों में बहुत कुछ समानता होते हुए भी कुछ विभिन्नताएँ होती हैं। यही समानता और विभिन्नता दिखाना उपन्यास का मुख्य कर्तव्य होता है।

चरित्र-चित्रण की विभिन्न पद्धतियों, प्रणालियाँ प्रचलित है किन्तु मुख्य रूप में वर्णनात्मक प्रणाली और अभिनयात्मक प्रणाली ये दो पद्धतियाँ प्रचलित है। सामान्यत: चरित्र के चार प्रकार होते है - 1) वर्गप्रधान चरित्र, 2) व्यक्तिप्रधान चरित्र, 3) आदर्श चरित्र, 4) यथार्थ चरित्र।

वर्ग प्रधान चरित्रों में जातीय विशेषताओं को दर्शाया जाता है। आदर्श चरित्र में किसी पात्र विशेष के जीवन में आदर्शवादी दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की जाती है और यथार्थवादी चरित्रों में पात्र देव, आसूर या मानव किसी भी कोटि के हो सकते है।

चरित्र-चित्रण के लिए मौलिकता, स्वाभाविकता, अनुकूलता, सजीयता, सहृदयता आदि गुणों का होना महत्त्वपूर्ण है।

1) मौलिकता : उपन्यास के कथाओं के विशिष्ट पात्रों के कुछ ऐसे गुण होते है कि उनका व्यक्तित्व प्रभावोत्पदकता निर्माण करके मौलिक बन जाते है। जो उपन्याासकार जितना मौलिक होता है, उसके पात्र भी उतने ही मौलिक और हमारे मन को स्वाभाविकता लानेवाले होते हैं। उपन्यास के पात्र अपने समाज से जुडे रहे और प्राणियों जैसी विशेषताओं से युक्त हो किन्तु उनमें दूसरों की अपेक्षा रहनेवाला भेद भी स्पष्ट हो सके।

2) स्वाभाविकता : स्वाभाविकता का अभिप्राय यह है कि, पात्रों का चित्रण इस प्रकार होना चाहिए कि, वे इसे इसी जगत के अपने आसपास के प्राणी प्रतीत हो।

3) अनुकूलता : पात्रों का कथानक के अनुकूल होना उपन्यास की श्रेष्ठता के लिए आवश्यक गुण माना जाता है। पात्रों का सृजन कथाविषय और स्थिति के अनुकूल होना चाहिए।

4) सजीवता : अनुकूलता और स्वाभाविकता आदि गुण जब चरित्र-चित्रण में उपस्थित रहते हैं तभी उसमें सजीवता आ जाती है। इसलिए उपन्यास के पात्र निर्जीव और नि:ष्प्रभ प्रतीत होने की अपेक्षा सजीव प्रतीत होने चाहिए।

5) सहृदयता : उपन्यास के पात्र अधिक से अधिक मानवीय और हमारे सुख-दु:ख आदि के साथ जुडे रहने चाहिए। हमारी सहानुभूति और संवेदना के वे अधिकारी हो तथा वे हमें अपने विश्वास में ले सके ऐसा होना आवश्यक है। जिसमें आदर्श और यथार्थ के संमन्वय से ही किसी उद्देश्य की पूर्ति हो।

3) कथोपकथन :

उपन्यास के पात्र जिस पारंपारिक वार्तालाप द्वारा कथावस्तु को आगे ले जाते हैं और अपने चरित्र को प्रकाशित करते है, उसे कथोपकथन कहते है। इसलिए कथोपकथन को उपन्यास का आवश्यक तत्त्व माना जाता है। उपन्यासकार को यह ध्यान रखना पडता है कि कथोपकथन विषय संगत, सजीव एवं स्वाभाविक हो। जो पात्रों के बौद्धिक और मानसिक स्थिति के अनुकूल होने चाहिए। इसलिए अधिक तत्त्व कथोपकथन की जगह सरल, सुबोध और मनोहर संवाद हो। कथोपकथन में नाटकीयता और स्वाभाविकता होनी चाहिए। कथोपकथन से उपन्यास में नाटकीयता उत्पन्न होती है; अंत: यथासंभव उनमें पात्रों के मनोभावों, संकल्प-विकल्पों, प्रतिक्रियाओं आदि का भव्य चित्र प्रस्तुत करना होता है। इसलिए नाटक की तुलना में उपन्यास के कथोपकथन विस्तृत होते है। उपन्यास में चित्रित पात्र के अनुकूल, स्वाभाविकता, मनोविज्ञान की उपयुक्तता और उपन्यास की रोचकता और आकर्षण को बनानेवाली अभिनयात्मकता और सरलता आवश्यक है।

कथोपकथन के द्‌वारा तीन विशेषताएं स्पष्ट होती है।

1) कथानक का विकास
2) चरित्र-चित्रण में सहाय्यक
3) लेखक के दृष्टिकोण की झाँकी।

उपर्युक्त बातों की ओर ध्यान देते हुए कथोपकथन को सूक्ष्म, स्वाभाविक, सशक्त और प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

4) देश, काल तथा वातावरण :

उपन्यासों में स्वाभाविकता और सजीवता का आभास देने के लिए देश, काल तथा वातावरण की ओर विशेष ध्यान देना महत्त्वपूर्ण होता है।

देशकाल के अंतर्गत किसी भी समाज या राष्ट्र की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिस्थितीयाँ, आचार-विचार, रहन-सहन, रीति-रिवाज का वर्णन आता है। उपन्यास में चित्रित घटना की सजीवता में वृद्‌धि करने के लिए 'वातावरण' चित्रण उपयुक्त सिद्‌ध होता है। देश काल तथा वातावरण के चित्रण में भी सूक्ष्मता का ध्यान रखना पडता है। इसको सरस बनाने के लिए इसमें कल्पना का पुट भी देना चाहिए। साथ ही वातावरण का वर्णन वहीं तक उचित होना चाहिए। जहाँ तक की वे कथा-प्रवाह में सहायक हो।

पात्रों के व्यक्तित्व का चित्र उनकी बातचीत से हमारे सामने आता है, किन्तु पात्र जिस परिस्थिति और वातावरण में रहते है और विकास पाते हैं, उस परिस्थिति स्थान और काल का पूरा-पूरा चित्र दिया जाए। जिसमें कथानक की घटनाएँ घटित होती दिखाई गई हो। क्योंकि बिना देशकाल के पात्रों का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। इसलिए कथानक के पात्र भी वास्तविक पात्र की भाँति देश-काल के बंधन में रहनेवाले चित्रित होने चाहिए। जिसकी सहायता घटनाक्रम को समझने में होती है।

5) भाषाशैली :

लेखक की अभिव्यक्ति का साधन शैली है और भाषा इसकी सहायिका है। 'शैली' एक साहित्य का ऐसा तत्त्व है जो साहित्य के सभी अंगों में समान रूप में व्यक्त रहता है। इस बारे में डॉ. श्यामसुंदर दास कहते है, ''भाव, विचार और कल्पना तो इसमें नैसर्गिक अवस्था में वर्तमान रहती है और साथ ही उन्हें व्यक्त करने की स्वाभाविक शक्ति भी इसमें रहती है। अब यदि इस शक्ति को बढाकर संस्कृत और उन्नत करके हम उनका उपयोग कर सके तो उन भावों, विचारों और कल्पनाओं के द्‌वारा हम संसार के ज्ञानभंडार की वृद्‌धि करके उसका बहुत कुछ उपकार कर सकते है। इसी शक्ति को साहित्य में 'शैली' कहते है।''

उपन्यास की भाषा जन-जीवन के जितने ही समीप हो, वह उतनी ही सरल लगेगी और पाठक आकृष्ट होंगे। लोकोक्तियों एवं मुहावरों के स्वाभाविक प्रयोग से उसमें सजीवता आती है। भाषा शैली को अधिक ग्राह्य

बनाने के लिए उपन्यासकार ने हास्य और व्यंग्य का यथोचित प्राविधान करना चाहिए। साथ ही पात्रानुकुल भाषा शैली में उपन्यास से प्रवाह एवं प्रांजलता जैसे गुण स्वत: आ जाते है। जिसके लिए भाषा शैली, प्रसाद और माधुर्य गुण से युक्त होनी चाहिए।

शैली जहाँ एक ओर लेखक के व्यक्तित्व को प्रस्तुत करती है, वहाँ इसी ओर पाठक को भी विमुग्ध रखती है।

उपन्यासकार उपन्यास में प्राय: निम्न शैलियों का प्रयोग करते हैं। 1) वर्णनात्मक शैली, 2) आत्मकथात्मक शैली, 3) पात्रात्मक शैली, 4) डायरी शैली.

1) वर्णनात्मक शैली : वर्णनात्मक शैली में लेखक पात्रों एवं घटनाओं का वर्णन करता है। यह शैली सर्वाधिक प्रचलित है। वस्तु वर्णन एवं प्रकृतिवर्णन की सुविधा इस शैली में सर्वाधिक रहती है।

2) आत्मकथात्मक शैली : आत्मकथात्मक शैली में एक पात्र ही स्वत: सारी कहानी आपबीती के रूप में प्रस्तुत करता है।

3) पात्रात्मक शैली : पात्रात्मक शैली में पत्र के माध्यम से कथावस्तु विकसित होती है।

4) डायरी शैली : डायरी शैली में 'डायरी' के माध्यम से कथावस्तु का विकास किया जाता है।

6) उद्देश्य :

उपन्यासकार उपन्यास का उद्देश्य मनोरंजन के साथ-साथ जीवन की मीमांसा करना होता है। वस्तुत: कलात्मक सौंदर्य को सहभागी बनाकर जीवन दर्शन और आनंद का समान्वयात्मक चित्रण करना उपन्यासकार का लक्ष्य होना चाहिए। मुन्शी प्रेमचंद ने मानव जीवन पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना उपन्यास का लक्ष्य माना है।

उपन्यास चाहे सुखान्त हो या दु:खान्त, दोनों से आनंद की अनुभूति होती है और इसी अनुभूति की सिद्धी कर सकने पर लेखक का यान सफल हो जाता है। शाश्वत जीवन मूल्यों और प्रश्नों की व्याख्या करनेवाले कलाकार की ही कृति अमर होती है। उपन्यासकार भी इन्ही की साधना करता है। वह सौंदर्य का तृष्टा है; उसका कार्य उपदेश या प्रचार नहीं होता हैं।

2.4 स्वयं-अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) 'एकांकी' को अंग्रेजी में पर्यायी शब्द ..... है।

अ) ड्रामा ब) कर्टन क) स्टोरी ड) वन ॲक्ट प्ले।

2) भारतेंदू के नाटक ..... में प्रथमत: एकांकी रूप का दर्शन होता है।

अ) निहूष ब) हिंसा हिंसा न भवती क) विषस्य विषमौषधम्

3) हिंदी एकांकी का प्रारंभ जयशंकर प्रसादजी की एकांकी ..... से माना जाता है।
अ) एक घूँट ब) विभूति क) शैतान ड) आदिम युग

4) विदेश में एकांकी विधा को स्वतंत्र रूप में सामने लाने का श्रेय ..... को चला जाता है।
अ) हेनरी ब) इल्सन क) आर्थर ड) जार्न बनार्ड शॉ

5) एकांकी में ..... अंक होते हैं।
अ) दो ब) तीन क) एक ड) पाँच

6) भारत में आधुनिक एकांकी का प्रारंभ ..... से माना जाता है।
अ) डॉ. रामकुमार वर्मा ब) जगदीशचंद्र माथुर क) भारतेंदू ड) बालकृष्ण भट्ट

7) एकांकी में पात्रों की संख्या ..... होती है।
अ) सिमित ब) अधिक क) बडी संख्या में ड) अगणित

8) आज के एक पात्री एकांकी के लिए अंग्रेजी शब्द ..... का प्रयांग किया जाता है।
अ) वन ॲक्ट प्ले ब) ड्रामा क) वेबसिरिज ड) मोनोलॉग

9) कथा साहित्य के दो प्रमुख प्रकार ..... है।
अ) एकांकी और नाटक ब) निबंध और कहानी
क) कहानी और उपन्यास ड) उपन्यास और नाटक

10) कहानी के लिए अंग्रेजी पर्याय शब्द ..... है।
अ) Story ब) Drama क) one-act play ड) Short

11) कथोपकथन के अर्थ में अन्य शब्द ..... आते हैं।
अ) कथोपकथन, संवाद, बातचीत ब) कथोपकथन, संवाद, बोलना
क) संवाद, वार्तालाप, बातचीत ड) संवाद, कथोपकथन, विवाद

12) उपन्यास विधा की अनुजा ..... विधा को कहा जाता है।
अ) कहानी ब) नाटक क) एकांकी ड) डायरी

13) कहानी को हिंदी पर्यायी शब्द ..... भी है।
अ) गल्प ब) रेडिओ कहानी क) फीचर ड) फेंटसी

14) गल्पसाहित्य को आधुनिकतम रूप प्रदान करनेवाले अमरिका के सुप्रसिद्ध साहित्यकार ..... है।
अ) हेनरी ब) बनार्ड शॉ क) फ्रॉईड ड) एडगर एलिन

15) आधुनिक कहानी ..... से जुडी है।
अ) पुराण ब) आध्यात्म क) आधुनिकता ड) मनुष्य जीवन के यथार्थ

16) आधुनिक हिंदी कहानी पाश्चात्य साहित्य ..... से प्रभावित है।
अ) Drama ब) वन ॲक्ट प्ले क) मोनोलॉग ड) पिकशन

17) कहानी आकार से ..... होती है।
अ) बृहद ब) विस्तारित क) संक्षिप्त ड) मध्यम

18) कहानी में जीवन के किसी एक ..... या ..... का चित्रण होता है।
अ) घटना, अंश या संवेदना ब) प्रारंभ, मध्य, अंत
क) जीवन, मृत्यु, मध्य ड) प्रारंभ, विस्तार, मध्य

19) आधुनिक युग की सर्वाधिक प्रसिद्ध विधा ..... है।
अ) कहानी ब) उपन्यास क) नाटक ड) निबंध

20) आधुनिक काल में 'उपन्यास' शब्द का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य से सर्वप्रथम ..... साहित्य में प्राप्त होता है।
अ) मराठी ब) गुजराती क) बंगला ड) हिंदी

21) बंगाल की पत्रिका ..... में 'उपन्यास' शब्द का प्रथम प्रयोग किया गया।
अ) हंस ब) दर्पण क) बंगदर्शन ड) भारत

22) उपन्यास के लिए अंग्रेजी शब्द ..... का प्रयोग किया जाता है।
अ) वन ॲक्ट प्ले ब) ड्रामा क) मानोलॉग ड) नॉवेल

23) हिंदी साहित्य में उपन्यास सम्राट ..... को कहा जाता है।
अ) बालकृष्ण भट्ट ब) भारतेंदू क) प्रेमचंद ड) जयशंकर प्रसाद

24) उपन्यास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्व..... है।
अ) कथावस्तु ब) संवाद क) देश-काल वातावरण ड) उद्देश्य

25) उपन्यास में चित्रित चित्रण सामान्यत: ..... प्रकार के होते है।
अ) पाँच ब) चार क) तीन ड) छ:

26) उपन्यास में कथोपकथन द्वारा ..... विशेषता दृष्टव्य होती है।
अ) एक ब) दो क) चार ड) तीन

27) आत्मकथात्मक शैली में लेखक ..... को प्रस्तुत करता है।
अ) दूसरों को ब) पात्रों को क) आपबीती ड) समाज

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. एकांकी – एक अंक में पूर्ण होनेवाला नाट्यरूप।
2. संकलन त्रय – स्थल, काल और कार्य की एकता अथवा अन्विती।
3. एकायामिता – एक आयाम होना।
4. विधा – प्रकार / भेद
5. शैली – पद्धति
6. कथोपकथन – पात्रों की आपसी बातचीत, संवाद
7. मितव्ययता – कम शब्दों में सांकेतिक बातों की अभिव्यक्ति

2.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. वन ॲक्ट प्ले	2. विषस्य विषमौषधम्	3. एक घूँट
4. इब्सन	5. एक	6. भारतेंदू
7. सिमित	8. मोनोलॉग	9. कहानी और उपन्यास
10. शॉर्ट–स्टोरी	11. संवाद, वार्तालाप, बातचीत	12. कहानी
13. गल्प	14. एडगर एलिन	15. मनुष्य जीवन के यथार्थ
16. पिकशन	17. संक्षिप्त	18. घटना, अंश या संवेदना
19. उपन्यास	20. बंगला	21. बंगदर्शन
22. नॉवेल	23. प्रेमचंद	24. कथावस्तु
25. तीन	26. चार	27. आपबीती

2.7 सारांश :

- हिंदी एकांकी विधा पाश्चात्य साहित्य प्रकार वन ॲक्ट प्ले से प्रभावित है।
- एकांकी में जीवन के कुछ उद्दिप्त क्षणों का पहलुओं का या किसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन होता है।
- एकांकी रचनातंत्र के अनुसार एक बंधा हुआ, सीमित पात्र और घटनावाला नाट्यरूप है।
- मितव्ययता, संक्षिप्तता, एकायामिता, मार्मिकता और प्रभावान्विती, एकांकी विधा की विशेषताएँ है।
- एकांकी नाट्यवर्ग की विधा होने के कारण एकांकी में रंग संकेत एवं अभिनयेता अपेक्षित होती है।
- संघर्ष और नाटकीयता नाट्य विधा का प्राण है। इसलिए एकांकी नाटक में भी कार्यारंभ और कार्य की समाप्ति में बहुत कम अंतर होता है।
- एकांकी के संकल्पनत्रय में कार्य ऐक्य का होना अनिवार्य है।

- कहानी विधा का प्रारंभिक रूप, मनोरंजन प्रधान, नितीप्रधान और आध्यात्मिक रहा। परंतु इसके पश्चात उसका प्रमुख लक्ष मनोरंजन के साथ-साथ मानव जीवन के यथार्थ को सामने लाना रहा है।
- प्राचीन भारतीय साहित्य में कहानी का मूलरूप, कथा, आख्यान, उपख्यान तथा आख्यायिका के रूप में दिखाई देता है।
- गल्प साहित्य (कहानी) को आधुनिक रूप प्रदान करने का श्रेय पाश्चात्य साहित्यकार एडगर एलिन पो को चला जाता है।
- कहानी मानव जीवन की यथार्थ घटनाओं के एक अंग, एक अंश, एक पहूल तथा एक संवेदना को संक्षिप्त और संशिलष्ट रूप में अभिव्यक्त करती है।
- कहानी की कथा संक्षिप्त होती है। वह इतिहास, पुराण, धर्म, समाज, राजनिती, मनोविज्ञान, दैनिक जीवन की घटनाएँ या कल्पनाएँ से जुडी रहती है।
- कहानी का शीर्षक मोहक एवं आकर्षक होना चाहिए। जो पाठक की उत्सुकता बनाये रखे।
- कहानी के अंत की अवस्था चरमसीमा के बाद तुरंत आती है।
- कहानी में वातावरण तीन प्रकार का कार्य करता है। 1) भावों का उद्दिपन, 2) सौंदर्य की अनुभूति, 3) सहानुभूति निर्माण करना आदि।
- कहानी की भाषा सहज, स्पष्ट, सशक्त और कलापूर्ण होनी चाहिए।
- उपन्यास बृहत आकार की गद्यविधा है। जिसमें मानव जीवन की सुख-दु:खात्मक अनुभूतियों को यथार्थ और कल्पना के मिश्रण से कलापूर्ण कथात्मकरूप में अभिव्यक्त किया जाता है। जिसके लिए उपन्यासकार दो विधियाँ अपनाया है। 1) प्रत्यक्षविधी और 2) अप्रत्यक्षविधी।
- पाश्चात्य आधार पर उपन्यास के छ: तत्त्व है। 1) कथावस्तु, 2) पात्र तथा चरित्र-चित्रण, 3) कथोपकथन या संवाद, 4) देशकाल वातावरण, 5) भाषाशैली, 6) उद्देश्य।
- उपन्यास कथावस्तु वर्णित घटनाओं का वह संग्रह है जिस पर उपन्यास का ढाँचा खडा होता है, जिसके द्वारा उपन्यासकार के विचार सामुहिक रूप में अभिव्यक्त होते हैं।
- उपन्यास में चित्रित घटनाएँ जिनसे संबंधित होती है या जिनको लेकर उन घटनाओं का घटित होना दिखाया जाता है - वे पात्र कहलाते हैं।

2.8 स्वाध्याय :

1) एकांकी का स्वरूप स्पष्ट किजिए।
2) एकांकी के तत्त्वों पर प्रकाश डालिए।
3) कहानी के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

4) कहानी के तत्त्वों पर चर्चा कीजिए।

5) उपन्यास का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।

6) उपन्यास के तत्त्वों का परिचय चित्रण।

2.9 क्षेत्रीय कार्य :

- जगदीशचंद्र माथुर की 'रीढ की हड्डी' एकांकी पढकर उसमें चित्रित सामाजिक समस्याओं को जानने की कोशिश करे।
- प्रेमचंद्र जी की 'कफन' कहानी पढकर कहानी के तत्त्वों के आधार पर उसकी आलोचना लिखने की कोशिश करे।
- प्रेमचंद जी का 'सेवासदन' उपन्यास पढकर भारतीय समाज में नारी की स्थिति पर चर्चा किजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) साहित्य विवेचन – क्षेमचंद्र 'सुमन' योगेंद्रकुमार मल्लिक

2) साहित्यशास्त्र – डॉ. नारायण शर्मा

3) काव्यशास्त्र – डॉ. भगीरथ मिश्र

4) हिंदी एकांकी और एकांकीकार : डॉ. रमा सूद

5) हिंदी एकांकी – सत्येंद्र

6) कहानी और कहानीकार – प्रो. जिज्ञासू मोहनलाल

7) हिंदी उपन्यास कला – डॉ. प्रताप नारायण टंडन

❑❑❑

इकाई 3

गद्य विधाएँ

(रेखाचित्र, आत्मकथा, यात्रावृत्त)

अनुक्रम

3.1 उद्देश्य

3.2 प्रस्तावना

3.3 विषय – विवेचन

3.3.1 रेखाचित्र

3.3.1.1 स्वरूप

3.3.1.2 परिभाषाएँ

3.3.1.3 तत्त्व

3.3.2 आत्मकथा

3.3.2.1 स्वरुप

3.3.2.2 परिभाषाएँ

3.3.2.3 तत्त्व

3.3.3 यात्रावृत्त

3.3.3.1 स्वरूप

3.3.3.2 परिभाषाएँ

3.3.3.3 तत्त्व

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

3.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

3.7 सारांश

3.8 स्वाध्याय

3.9 क्षेत्रीय कार्य

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

3.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप,

1. रेखाचित्र नामक साहित्यिक लेखन प्रकार के बारें में जानेंगे ।
2. रेखाचित्र के विशिष्ट शैली को समझ सकेंगे ।
3. आत्मकथा के द्वारा विभिन्न कालखंडों की समस्याओं से परिचित होंगे ।
4. आत्मकथा की विभिन्न लेखन शैलियों से परिचित हो जायेंगे ।
5. हिंदी आत्मकथा साहित्य का परिचय प्राप्त होगा ।
6. आत्मकथा लेखन के लिए प्रवृत्त होंगे ।
7. यात्रावृत्त ज्ञान और मनोरंजन का अदभूत साधन है ।
8. कथेत्तर साहित्य प्रकारों की शैली, शक्ती और महत्व को समझ सकेंगे ।

3.2 प्रस्तावना :

पद्य की तुलना में गद्य अभिव्यक्ति का सहज माध्यम है। रेखाचित्र अपेक्षाकृत नई साहित्यिक शैली है। जीवन बदलता गया और व्यस्तताएँ बढती रही । सामाजिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण ही रेखाचित्र का विकास हुआ । जब पारंपारिक विधाओं में लेखक अपनी बात करने में असमर्थ होता है, तब नई विधाओं का जन्म होता है । 20 वी सदी में इन विधाओं का विकास हुआ । आत्मकथा याने आत्मा की कथा । आत्मकथा में आत्मासंबंधित उस कथ्य का उदघाटन है । जिसमें स्व की प्रधानता दिखायी देती है । आत्मकथाकार यह कलाकार भी है और मनुष्य भी । लेखक आपबिती को ही व्यक्त करता है । यात्रा मानव जीवन का अभिन्न अंग है । मनुष्य आदिम काल से यात्रा करता आ रहा है । धीरे– धीरे उसका क्षेत्र व्यापक हुआ । नई बातों की जानकारी पाने हेतु उसने यात्राएँ की । यात्रा के द्वारा विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में मानवता को फलने – फूलने का अवसर प्राप्त हुआ । यात्रा करते समय इतिहास का बोध भी आवश्यक होता है।

3.3 विषय – विवेचन :

अब हम रेखाचित्र, आत्मकथा और यात्रावृत्त के स्वरुप, परिभाषा तत्वों पर विचार करेंगे ।

3.3.1 रेखाचित्र : स्वरूप, परिभाषा, तत्त्व :

3.3.1.1 रेखाचित्र का स्वरूप :

इ.स. 1930 के लगभग गिने चुने लेखक ही रेखाचित्र लिख रहे थे । मार्च 1931 में मुंशी प्रेमचंद के सुपुत्र श्रीपतराय ने हंस पत्रिका का रेखाचित्रांक प्रकाशित किया । इस विशेषांक में जो रेखाचित्र प्रकाशित हुए है उनके नायक मूलत: साहित्यिक है। इसमें बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड तथा उर्दु के साहित्यिकों पर भी श्रेष्ठ रेखाचित्र प्रकाशित हुए है।

इस परंपरा को आगे बढाने का कार्य तथा रेखाचित्र विधा के वरिष्ठ लेखक पंडित बनारसीदास चतुर्वदी जी है। उन्होंने सन् 1946 में मधुकर पत्रिका का रेखाचित्रांक प्रकाशित किया । इस पत्रिका में न केवल भारतीय

बल्कि दुनियाभर की रचनाओं को प्रकाशित किया । उनके लेखन में विश्लेषणात्मकता और भावुकता का मनोहर संगम है। उनके हमारे आराध्य, रेखाचित्र, सेतुबध आदि रेखाचित्र है। पंडित श्रीराम शर्मा का नाम शिकार साहित्य लेखन के क्षेत्र में प्रमुख है । शिकारी जीवन से जुड़े हुए चरित्र उन्होंने चित्रित किये हैं । उनके बोलती प्रतिमा, प्राणों का सौदा, जंगल के जीव, वे जीते कैसे है? आदि रेखाचित्र प्रकाशित हुए हैं।

श्री. रामवृक्ष बेनीपुरी स्वाधीनता संग्राम के सेनानी क्रांतिकारी एवं राष्ट्रीय वृत्ति के पत्रकार रहे है । उनके प्रसिध्द रेखाचित्र गेहूँ और गुलाब तथा मील के पत्थर हैं।

महादेवी वर्मा ने काव्य तथा चित्र के माध्यम से अपनी अभिव्यक्ति की । उनके रेखाचित्रों में संस्मरण का मिश्रण है । अतीत के चलचित्र, स्मृति की रेखाएँ, पथ के साथी प्रसिध्द रेखाचित्र हैं।

अन्य रेखाचित्रकारों में आचार्य विनय मोहन शर्मा का रेखा और रंग रेखाचित्र प्रसिध्द है । कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकरजी की शैली बेनीपुरी से तुलनीय है, मानो एक पेड़ की दो टहनियाँ हो । श्रीमती सत्यवती मलिक ने विविध विधाओं के माध्यम से हिंदी साहित्य के भंडार को भरा है । आधुनिक रेखाचित्रकारों में प्रो. प्रकाशचंद गुप्त का योगदान रहा है । श्री. देवेंद्र सत्यार्थी ने रेखाचित्रकार के रुप में नई शैली को जन्म दिया । श्री. रामधारीसिंह दिनकरजीने अमिताभ छदम नाम से रेखाचित्र लिखे हैं । श्री. उपेंद्रनाथ अश्क, हिंदी के मूर्धन्य आलोचक डॉ. रामविलास शर्माजी ने भी अच्छे रेखाचित्र लिखे हैं । रस सिध्दांत के आलोचक डॉ. नगेंद्र ने कवियों के व्यक्तित्वों पर सुंदर रेखाचित्र प्रस्तुत किये हैं । डॉ. प्रेमनारायण टंडन का नाम रेखाचित्र लेखन के संबंध में भी लिया जाता है । नाटक के क्षेत्र में चर्चित श्री जगदीशचंद्र माथुर ने रेखाचित्र लिखे हैं ।

बाबु गुलाबराय, माखनलाल चतुर्वेदी, यशपाल,अज्ञेय, सेठ गोविंददास, सियारामशरण गुप्त, रांगेय राघव, अमृतलाल नागर अदि नाम महत्वपूर्ण है ।

रेखाचित्र आधुनिक युग की उपज है । जो स्थान कला के क्षेत्र में चित्रकला का और चित्रकार का है, वही स्थान साहित्य के क्षेत्र में रेखाचित्र का और रेखाचित्रकार का है। चित्रकार चित्र बनाकर अपनी संवेदनात्मक अनुभूति को तुलिका से रेखाओं द्वारा अभिव्यक्त करता है । रेखाचित्रकार शब्दों के माध्यम से स्वयं अनुभूति को रेखाचित्र या शब्दचित्र में सजीवता प्रदान करता है । वस्तु घटना आदि का यथार्थ वर्णन रेखाचित्र में होता है ।

रेखाचित्र रेखा और चित्र इन दो शब्दों से बना है । उसका शाब्दिक अर्थ है रेखाओं द्वारा अंकित चित्र लेकिन इसका शाब्दिक अर्थ से कोई संबंध नही है । यहाँ केवल साहित्यिक विधी होने के कारण लाक्षणिक अर्थ लेना उचित होगा । रेखा जीवन की अमूर्तता का चित्रांकन करने का कार्य करती है । रेखाचित्र को अंग्रेजी में 'स्केच' कहते है । यह चित्रकला और साहित्य के सुंदर समन्वय से बना हुआ साहित्य का कोमल रुप है। इसलिए रेखाचित्रकार चित्रकार भी होता है । जिसप्रकार चित्रकार अपनी तूलिका के कलामय स्पर्श से चित्रपटल पर अंकित विस्तृत रेखाओं में से कुछ अधिक उभरी हुई रेखाओं को सँवारकर एक सजीव रुप प्रदान करता है। उसी प्रकार रेखाचित्रकार मन पटलपर विस्तृत रुप में से बिखरी हुई स्मृतिरेखाओं में से उभरी हुई रमणीय रेखाओं

को अपनी कला के तूलिका से रचनानुभूति के रंग में रंगकर जिते जागते शब्दचित्र बना देता है । वह शब्दचित्र रेखाचित्र कहलाता है ।

हिंदी साहित्यकोष में रेखाचित्र को इस प्रकार परिभाषित किया है, 'रेखाचित्र किसी, व्यक्ति, वस्तू घटना या भाव का कम से कम शब्दों में मर्मस्पर्शी भावपूर्ण एवं सजीव अंकन है।' अन्य साहित्यिक विधाओं की अपेक्षा रेखाचित्र में लेखक को शब्द योजना और वाक्य विन्यास का विशेष धान्य रखना पडता है । स्थिर प्रकृति होने के कारण रेखाचित्र में सांकेतिकता को महत्व दिया जाता है ।

रेखाचित्र की सीमाएँ निश्चित हैं। उसे गिने चुने कम-से-कम शब्दों में सजीव से सजीव शब्द विधान और छोटे-से छोटे वाक्यों में अधिक तीव्रता से मर्मस्पर्शी भावव्यंजना प्रगट करनी होती है। इसके लिए आवश्यक है लेखक का हृदय संवेदनशील हो । दृष्टि सूक्ष्मपर्यवेक्षणी और मर्मभेदिनी हो । रेखाचित्र का विषय वस्तु, व्यक्ति घटना या संवेदना होती है ।

तात्पर्य रेखाचित्र वस्तु, व्यक्ति, संवेदना या घटना का शब्दों द्वारा निर्मित मर्मस्पर्शी भावमय रुपविधान है। जिसमें कलाकार संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्मपर्यवेक्षण दृष्टि अपना निजीपन उंडेलकर इस विधी का निर्माण करता है ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर रेखाचित्र की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी है ।

3.3.2.1 रेखाचित्र की परिभाषाएँ :

डॉ. भगीरथ मिश्र :

डॉ. भगीरथ मिश्र अपने संपर्क में आये किसी विलक्षण व्यक्तित्व अथवा संवेदना को जगानेवाली सामान्य विशेषताओं से युक्त किसी प्रतिनिधी चरित्र के मर्मस्पर्शी स्वरुप को देखी-सुनी या संकलित घटनाओं की पृष्ठभूमि में इसप्रकार उभारकर रखना की उसका हमारे हृदय में एक निश्चित प्रभाव अंकित हो जाय, वह रेखाचित्र या शब्दचित्र कहलाता है ।

गोविंद त्रिगुणायत :

रेखाचित्र वस्तु व्यक्ति अथवा घटना का शब्दों द्वारा विनिर्मित एवं मर्मस्पर्शी और भावमय रुप विधान है जिसमें कलाकार का संवेदनशील हृदय और उसकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि अथवा निजीपन उंडेलकर प्राण प्रतिष्ठा कर देती है ।

आचार्य उमेश शास्त्री :

कम से कम शब्दों के माध्यम से जीवन का आंतरिक विश्लेषण रेखाचित्र कहलाता है ।

श्री. सत्यपाल चुघ :

साहित्य का वह गद्यात्मक रुप जिसमें एकात्मक विषय विशेष का शब्द रेखाओं से संवेदनशील चित्र, प्रस्तुत किया जाता है वह रेखाचित्र या शब्दचित्र है ।

श्री बच्चन सिंह :

रेखाचित्र मुख्य तथा बाह्य रेखाओं पर आधारित होने के कारण लक्षित चित्रों के रेखाचित्र की अभिधा दी जा सकती है । रेखाचित्रों में आलंबन के रुप सौंदर्य और उसकी चेष्टाओं आदि को अंकित किया जाता है।

इस तरह उपर्युक्त विवेचन से रेखाचित्र के निम्नलिखित तत्व निर्धारित किये है ।

3.3.2.3 रेखाचित्र के तत्त्व :

1) विषय की एकात्मकता ।
2) वास्तविक या यथार्थ वर्णन ।
3) अंर्तमुखी चारित्रिक वैशिष्ट्य ।
4) संवेदनशीलता ।
5) संतुलन और तटस्थता ।
6) विश्वसनीयता
7) सूक्ष्म निरीक्षण और चित्रात्मकता ।
8) उद्देश्य ।
9) शैली ।

1) विषय की एकात्मकता :

रेखाचित्र के लिए उपयुक्त विषय का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण है । चुने हुए विषय के संदर्भ में ही विवेचन आवश्यक है । अवांतर वर्णन अनावश्यक है ।

2) वास्तविक या यथार्थ वर्णन :

सफल रेखाचित्रों का लेखक वही हो सकता है । जिसने जीवन को भोगा हो । सफल रेखाचित्रकार जीवन को करीब से देखता है और उसकी गहराइयों में उतारता है ।

रेखाचित्रकार जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करता है । रेखाचित्रकार के लिए यथार्थ अनुभूति आवश्यक है। रेखाचित्र में कहानी के समान कलात्मक सजावट के लिए स्थान नही होता है । उसमें कथा विस्तार की भी कोई गुंजाईश नहीं होती है । रेखाचित्र तो अपनी स्मृति में अंकित वास्तविक रेखाओं को ही सजीव करता है । रेखाचित्रकार महादेवी वर्मा अपने रेखाचित्रों के संबंध में लिखती है कि, उनके जीवन की परिधि के भीतर बडे होकर चरित्र जैसा परिचय दे पाते हैं। वह बाहर रुपांतरित हो जाता है । फिर जिस परिचय के लिए कहानीकार अपने कल्पित पात्रों को वास्तविकता से सजाकर निकट लाता है उसी परिचय के लिए वे अपने पथ के साथियों को कल्पना का परिचय पहनाकर दुरी की सृष्टि भला क्यों करती?

3) अंर्तमुखी चारित्रिक वैशिष्ट्य :

रेखाचित्र में विवेचित विषय कें संदर्भ में ही चित्रण होता है । अधिकांश रेखाचित्र व्यक्ति विषयक होते

है । उसमें केवल वर्णपात्र की मुद्रा एकाद उक्ति अथवा स्थिती विशेष में व्यक्त की गई प्रतिक्रिया की झलक होती है । वह भी संकेत से व्यक्त की जाती है । प्राय: रेखाचित्र में अंर्तमुखी चरित्र का ही वर्णन होता है।

4) संवेदन शीलता :

रेखाचित्र में विवेचित विषय के लिए सहजता और संवेदनशीलता की आवश्यकता होती है । रेखाचित्रकार अपने परिपार्श्व से जितना ही प्रभाव ग्रहण कर सकेगा, जितनी ही प्रतिक्रिया उसमें होगी उतनी ही वास्तविकता के साथ वह अपने परिवेश को रेखाचित्र में सजीव कर सकेगा । हिंदी के रेखाचित्रकारों ने युग की परिवर्तित मान्यताओं के अनुरुप जाति, धर्म और धन की सीमाएँ लाँधकर उपेक्षितों, निर्धनों और अत्यंत साधारण लोंगो की भी अपनी सहानुभूति प्रधान की है । हिंदी रेखाचित्रों के लिए यह शुभ दिशा है । युग की माँग यही है कि लेखक अपने हृदय की ममता एवं करुणा उन उपेक्षितों को दे जिन्होंने वास्तविक जीवन की अपदाओं को झेला है फिर भी दर - दर की ठोकरें खाने के लिए मजबूर कर दिया गया है । परिस्थितियों का ख्याल और समय का प्रवाह भी जिन्हें खाता रहा है उन लोंगों का चित्रण जरुरी है । दरअसल रेखाचित्र की सफलता और शक्ति संवेदना जगाने में सफल हुआ तो वह रेखाचित्र सफल माना जा सकता है । वास्तव में रेखाचित्र का विषय इतना अनुभूत होता है और उसकी शैली इतनी मर्मस्पर्शी होती है कि वह सीधे पाठक के हृदय का स्पर्श करता है।

5) संतुलन और तटस्थता :

रेखाचित्रकार के लिए संतुलन और तटस्थता एक विशेष गुण है । अतिरंजित निंदा या अतिशयोक्त प्रशंसा दोनों ही बातें रेखाचित्र के लिए बाधक हैं । चित्रण करते समय चरित्र के गुण दोषों पर संतुलित दृष्टि डालना उचित है । रेखाचित्रकार को जादा उल्लेखित घटनाओं का हा चित्रण करना चाहिए । रेखाचित्रकार अपने संबंधों का उल्लेख करता है । यह उल्लेख करते हुए उसे आत्म प्रशंसा से बचना चाहिए । वस्तुत: उसका उद्देश्य तो यही होना चाहिए की जिस चरित्र को वह उठाता है । उसकी विशेषताओं का उदघाटन हो । रेखाचित्रांकन में तटस्थ दृष्टि जरुरी है । रेखाचित्रकार का कार्य किसी चरित्र की आरती उतारना नहीं है बल्की उस चरित्र की उन उजली और काली रेखाओं को उभारना है जिन्होंने उसके अंतर को स्पर्श किया है और जो उसे वास्तविक और सजीवन बनाता है ।

6) विश्वसनीयता :

रेखाचित्र की निर्मिती यथार्थ के धरातल पर एवं समाज में स्थित, व्यक्ति, वस्तु, घटना या संवेदना पर होती है इसलिए आप ही आप रेखाचित्र में विश्वसनीयता आ जाती है । लेखक स्वानुभूति के आधार पर ही उसका निर्माण करता है ।

7) सूक्ष्म निरीक्षण और चित्रात्मकता :

सफल रेखाचित्रों में चित्रण की बारीकी और विश्लेषण की सूक्ष्मता का होना जरुरी है । रेखाचित्र में चरित्र का महत्व सबसे अधिक होता है । अधिकांश रेखाचित्रों में कोई - न -कोई व्यक्ति ही विषय होता है जिसकी चरित्रांकन विशेषताओं को उभारना ही रेखाचित्रकार का लक्ष्य होता है । ऐसी स्थिति में उस चरित्र के बाह्य

रुपरंग उसकी मुद्राओं-चेष्टाओं एवं उसकी मानसिक हलचलों का चित्रण रेखाचित्रकार के लिए आवश्यक है। जिसप्रकार विभिन्न रंगों के अनुपात से तुलिका-चित्र सजीव हो जाता है उसी प्रकार मानव की आकृति, उसके अंग विक्षेप तथा उसके स्वभाव, वैशिष्ट से शब्दों का रेखाचित्र रंगीन हो उठता है । मानव आकृति की किन रेखाओं और मन के किस विकार में उसका व्यक्तित्व अंतर्हित है उन्हें ढूँढकर खींचना रेखाचित्र की सफलता है । सूक्ष्म निरीक्षण रेखाचित्र का प्राणतत्व है । निरीक्षण जितना सूक्ष्म पारदर्शी होगा चित्र उतना ही आकर्षक एवं प्रभावशाली होगा ।

8) उद्देश्य :

रेखाचित्र का प्रमुख उद्देश्य चरित्र को सजीवता से स्पष्ट करके हृदय परिष्कार, धारणा परिवर्तन, उदारता का विकास, लोकहृदय का निर्माण, न्याय के प्रति जागरुकता, चेतना, दुखियों के प्रति करुणा आदि के भाव जगाना है । इस प्रकार से प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण जीवन का आदर्श स्थापित करना और जीवन के वास्तविक रुपों और अनुभवों में रस लेना रेखाचित्र का प्रमुख उद्देश्य है।

रेखाचित्रकार का प्रमुख उद्देश्य अपनी जीवितरेखाओं द्वारा पाठक में संवेदना जागृत करना ही होता है । रेखाचित्रों में उसके अनुभूत जीवन का सत्य व्यक्त होता है जो पाठक के मर्म का संस्पर्श करता है । उसका उद्देश्य तो अंतर मन निहित होता है जो कुल मिलाकर पाठक पर प्रभाव छोड जाता है ।

9) शैली :

गद्य की अन्य विधाओं की तरह रेखाचित्र में भी कथात्मक, वर्णनात्मक, भावात्मक, विचारात्मक आदि शैलियाँ होती है ।

प्रमुख शैलियाँ है :

- वर्णनात्मक शैली
- कथात्मक शैली
- निबंध शैली
- तरंग शैली
- आत्मकथात्मक शैली
- डायरी शैली
- संबोधन शैली
- सुक्ति शैली
- संवाद शैली
- भावात्मक शैली
- विचारात्मक शैली
- व्यंग्यात्मक शैली

रेखाचित्र के प्रकार :

रेखाचित्र के प्रवृत्ति के अनुसार आचार्य उमेश शास्त्री ने निम्नलिखित प्रकार से वर्णन किया है ।

- संवेदनात्मक रेखाचित्र
- मनोप्रवृत्तिप्रधान रेखाचित्र
- प्रकृति सौंदर्यमूलक रेखाचित्र
- तथ्यप्रधान रेखाचित्र
- ऐतिहासिक रेखाचित्र
- राष्ट्रीय भावना समान्वित रेखाचित्र
- व्यक्ति प्रधान रेखाचित्र

3.3.2 आत्मकथा : स्वरूप, परिभाषा, तत्त्व :

3.3.2.1 आत्मकथा का स्वरूप :

आत्मकथा इस शब्द से ही स्पष्ट है कि इसमें लेखक अपने जीवन से संबंधित घटनाओं का वर्णन करता है । जन्म से लेकर जीवन के जिस किसी क्षेत्र में वह सफलता पा लेता है, वहाँ तक के अपने अनुभवो को वह प्रस्तुत करता है ।

यहाँ लेखक अपने बीते हुए जीवन को फिर से एक बार देखता है । यहाँ व्यक्ति के जीवन का ब्यौरा स्वयं व्यक्ति ही देता है ।

यह स्वयं का स्वलिखित इतिहास है । आत्मकथा मूलत: लेखक के जीवन का सातत्यपूर्ण विवरण होता है, जिसमें मुख्य बल आत्मनिरिक्षण और अपने जीवन की सार्थकता पर होता है। आत्मकथा में केवल यथार्थ का ही चित्रण होता है । आत्मकथन पर साहित्य का उद्देश्य होता है । आत्मनिर्माण, आत्मपरीक्षण या आत्मसमर्थन । दूसरा दृष्टिकोन यह भी है कि लेखक के अनुभवों का लाभ अन्य लोग उठा सकें । आत्मकथाकार इस प्रकार अपने पाठकों में जीवन के प्रति आस्था जगाते रहता है । नैतिक मूल्यों के प्रति उनमें निष्ठा जगाने का काम करते रहता है। एक तीसरा कारण यह भी बताया जाता है की आत्मकथा विशुध्द यथार्थ से जुडी हुई विधी है । इसमें कल्पना को कोई स्थान नहीं है । पाठक को जीवन सच्चाइयों के साथ जोडनेवाली यह विधी है ।

आत्मकथाकार एक संवेदनशील व्यक्ति है, इस कारण इन प्रतिक्रियाओं का अत्यंधिक महत्व होता है । उसके जीवन का विकास, उत्कर्ष अथवा विघटन इन्हीं प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है । श्रेष्ठ जीवनमूल्य के प्रति उसका विश्वास, उसके लिए किमत चुकाने की वृत्ति अथवा किये गये समझौते, झेला गया संघर्ष यही उसके व्यक्तित्व को आकार देता है । तब आत्मकथा सार्थक सिध्द हो जाती है । मनुष्य मात्र के प्रति उसकी श्रध्दा और इस श्रध्दा या मूल्य के लिए किया गया संघर्ष ही महत्वपूर्ण होता है ।

आत्मकथा व्यक्ति के जीवन से संबंधित है । व्यक्ति के जीवन में अन्य अनेक व्यक्ति भी आयेंगे । ये अन्य व्यक्ति उसके जीवन को एक नई दिशा देंगे अथवा उसे तकलीफ भी दे सकेंगे । परंतु आत्मकथा में कल्पना का प्रयोग नहीं होता। यह यथार्थ से यथार्थ तक की यात्रा है । आत्मकथा वास्तव में आत्मकथाकार के व्यक्तित्व के बनने – बिगडने की कथा है । उसके व्यक्तित्व निर्मिती की, व्यक्तित्व विकास की, जीवन के उतार – चढाव की यह कथा है । इस कारण उसके व्यक्तित्व को आकार देने में जिनका सहयोग रहा,उसी का एक सीमा तक वह चित्रण करें । फ्रेंच भाषा के प्रख्यात लेखक माँतेन ने आत्मकथा के संबंध में लिखा है – मैं अपने गुण दोष को जग जीवन के सम्मुख रखने जा रहा हूँ। पर स्वभाविक शैली में जो लोकशील से मर्यादित हो । इस वक्तव्य से आत्मकथाकार पर प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रुप से कुछ बंधन आते हैं।

महात्मा गांधीजी द्वारा लिखित 'मेरे सत्य के प्रयोग'' है । डॉ. हरिवंशराय बच्चन हिंदी के कवि तथा आत्मकथाकार है । क्या भूलूँ, क्या याद करुँ प्रसिध्द है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आत्मकथा के निम्नलिखित प्रयोजन सिध्द किये है ।

1) पाठकों तक अपने जीवनादर्शो को पहुँचाने की इच्छा
2) अपने अनुभवों को औरों तक पहुँचाने की स्वभाविक इच्छा
3) आनेवाली पीढी को मार्गदर्शन करने की वृत्ति
4) आत्मप्रचार तथा आत्मप्रदर्शन की वृत्ति
5) आत्मसमर्थन की वृत्ती
6) अतीत को व्यक्त करने की वृत्ति
7) पश्चात्ताप की वृत्ति, मानसिक तनावों से मुक्त होने की वृत्ति
8) वर्ण तथा जाति के कारण दु:खों को भोगने की विवशता

और इस सामाजिक अन्याय को उदघटित करने की वृत्ति ।

आत्मकथा के पठन पाठन के मूल में दूसरों के जीवन रहस्यों को जानने और पहचानने की तीव्र जिज्ञासा होती है । आत्मकथा के दो प्रयोजन होते है । 1) लेखकनिष्ठ प्रयोजन, 2) पाठकनिष्ठ प्रयोजन ।

आत्मा के सहयोग से किया गया वर्णन अथवा मनुष्य के द्वारा व्यक्त की गई स्वयं की कहानी ही आत्मकथा है।

इस प्रकार आत्मकथाकार के संबंध में ऐसी बातों का ज्ञान होता है कि हम उनके द्वारा लेखक की विचारधारा दृष्टिकोन, को किसी हद तक जान पाते हैं । साथ ही लेखक के समकालीन युग और संपर्क में आये व्यक्तियों की भी जानकारी अथवा परिचय प्राप्त होता है ।

3.3.2.1 आत्मकथा की परिभाषाएँ :

आत्मकथा की परिभाषाओं से ही आत्मकथा का स्वरुप निश्चित किया जा सकता है । इसलिए आत्मकथा की विविध परिभाषाओं को प्रस्तुत करेंगे ।

1) इन सायक्लोपिडिया ऑफ ब्रिटानिका :

आत्मकथा व्यक्ति के जिए हुए जीवन का ब्यौरा है, ज्योकि स्वयं उसके द्वारा लिखा जाता है ।

2) पाश्चात्य विद्वान शिपले :

अपने टेक्निकल टर्मस् ऑफ वर्ल्ड लिटरेचर ग्रंथ में कहते हैं – ''आत्मकथा वह है, जिसमें लेखक अपने विशाल जीवन सामग्री की पृष्ठभूमि में से कुछ महत्वपूर्ण बातों को लेकर, उनको व्यवस्थित ढंग से आमने सामने रखता है, या फिर अपनी अर्न्तदृष्टि से उनको संस्मरण रुप मे व्यक्त करता है।''

श्री. गोविंद त्रिगुणायत :

''आत्मकथा लेखक के जीवन की दुर्बलताओं, सबलताओं आदि का वह संतुलित और व्यवस्थित चित्रण है, जो उसके संपूर्ण व्यक्तित्व के निष्पक्ष उदघाटन में समर्थ होता है।''

श्री. राजनाथ शर्मा :

''आत्मकथा उस साहित्य रुप को कहते है, जिसमें कोई व्यक्ति अपने विगत जीवन का विवरण प्रस्तुत करता है।''

''जब कोई व्यक्ति कलात्मक या रसात्मक स्तर पर उठकर अपने निजी व्यक्तित्व के विकास का चित्रण एवं विश्लेषण करता है, तब वह चित्रण एवं विश्लेषण ही आत्मकथा कहलाता है।''

अमृता प्रीतम :

''आत्मकथा लेखक की अपनी आवश्यकता होती है । यथार्थ से यथार्थ तक पहुँचने की यह प्रक्रिया है।''

''उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर कह सकते है कि आत्मकथा कोरी उडान नहीं जबकी वह जीवन का सत्यान्वेष है।''

मनुष्य जीवन प्रवास रोध प्रतिरोधों से पूर्ण है, उसकी वृत्ति कभी आनंद से पूर्ण है तो कभी दु:ख कष्टों से । किंतु योग्य दिशा होने पर वह अपने महत प्रयत्न, आशा, विचार कल्पना को भूल नहीं पाता, जिस समाज ने उसे सर्वश्रेष्ठ बनाया उसी के पास वह अपनी जीवन गाथा देना चाहता है । इस जीवन देने के प्रवृत्ति में उसे आत्मा की साक्ष आवश्यक होती है । आत्मकथा विभिन्न क्षेत्र से संबंधित होती है । इसीकारण उसका वर्गीकरण निम्नप्रकार से किया जाता है ।

1) धार्मिक प्रवृत्तिप्रधान व्यक्तियों की आत्मकथा

2) राजनितिक प्रवृत्ति प्रधान

3) कलाकार के जीवन पर आश्रित

1) धार्मिक प्रवृत्तिप्रधान व्यक्तियों की आत्मकथा :

इस वर्ग की आत्मकथा में सिर्फ धार्मिक क्षेत्र से ही संबंधित व्यक्तियों की आत्मकथा प्राप्त होती है। संसार

में ऐसे अनेक व्यक्ति है, जो अपने प्रारंभिक काल में चंचल ढीले, दिशाहीन रहे है, किंतु किसी विशेष प्रेरणा परिस्थिती संपर्क अथवा संदेश के कारण जीवन की उदासिनता या गतिविधी पूर्णत: बदल गयी और अपने आप में सर्वश्रेष्ठ सिध्द हुए। इन आत्मकथाओं में लेखक आत्मनिवेदन देता है साथ में उस विशेष प्रभाव घटना का उदघाटन करता है जो उसके लिए आत्मस्पर्शी रही है । इसप्रकार की आत्मकथा मे अत्याधिक मार्मिकता से चित्रण प्राप्त होता हैं । जैसे स्वामी दयाल सिंह – प्रवासी की आत्मकथा।

2) राजनीतिक प्रवृत्ति प्रधान :

सर्वाधिक संघर्षपूर्ण वातावरण राजनितिक नेताओं का होता है । इनमें मुख्यत: समर्पण की भावना परिलक्षित होती है । इस वर्ग की आत्मकथाओं में पक्ष, समय, परिस्थिती घटना संघर्ष आदि का चित्रण प्रधान रुप में मिलता है । इस प्रकार की आत्मकथा का मुख्य आकर्षण अथवा सौंदर्य यही है कि इसमे कोई व्यक्ति या राजनेता अपनी उत्थान और पतन की जीवन कहानी पूर्ण सच्चाई के साथ व्यक्त करता है और अपनी अज्ञानता तथा गलतियों को भी स्वीकार कर लेता है । जैसे महात्मा गांधी, पं. नेहरु, डॉ. राजेंद्रप्रसाद की आत्मकथाएँ।

3) कलाकार के जीवन पर आश्रित आत्मकथाएँ :

इस वर्ग की आत्मकथा पाठक को तन्मय करने की सरसता रखती है । इसके विवरणों विश्लेषण से पाठक के हृदय को स्पर्श करती है । इसमें एक ऐसी कला के दर्शन प्राप्त होते है, ज्यों पूर्णत: सौंदर्याकर्षण बढाकर पाठक को अलौकिक आनंद प्राप्त कर लेती है । इसमें संप्रेषणीयता का गुण है, इसी कारण हमें रोचकता और अधिक भा जाती है । कलाकार अपना सारा जीवन भावनात्मकता से व्यक्त करता है, जिससे परिणाम यह होता है की वह सौदर्य प्रेमी पाठक के हृदय को चेतना देना है। इसी कारण भाव स्पर्शता इस वर्ग की आत्मकथा का सौंदर्य सिध्द हो जाता है । जैसे बाबू गुलाबराय हमारी जीवन असफलताएँ।

3.3.2.3 आत्मकथा के तत्त्व :

1) कथानक
2) चरित्र चित्रण
3) देशकाल वातावरण
4) वार्तालाप/संवाद
5) भाषा शैली
6) उद्देश्य

1) कथानक :

आत्मकथा में लेखक कथावस्तु का आधार है। वह कथावस्तु में अपने ही जीवन को व्यक्त करता है । कारण यही की वह अपने विषय में अधिक जानता है । अन्यत्र उसकी अधिक जानकारी नहीं प्राप्त होती । इसमें लेखक के जीवन में घटित सभी क्रियाओं और घटनाओं का चित्रण होता है । विशेषत: उस घटना का जिसका विशेष प्रभाव रहा है और जिसमें जीवन में सर्वश्रेष्ठता प्राप्त हो सकी है । आत्मकथाकार अपने कथानक का मुख्य

विषय है । आत्मकथा की कथावस्तु सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक क्षेत्र में योगदान देनेवाले व्यक्तियों से संबंधित होती है, वैसे आम मनुष्य भी अपनी आत्मकथा लिख सकता है । लेखक के विचार, भावना, व्यंग्य आदि का वर्णन मिलता है । आत्मकथा की कथा वस्तु के लिए यह अनिवार्य है इसमें किया गया वर्णन यह क्रमबध्द रोचकता से युक्त और संवेदनशील हो ।

2) चरित्र – चित्रण :

आत्मकथा में स्वयं लेखक ही नायक होता है जो चरित्र–चित्रण का मुख्य आधारस्तंभ है । आत्मकथाकार (नायक) किन परिस्थितियों में किस प्रकार संघर्ष करता रहा है, किन परिणामों से अपनी दुर्बलता और कष्ट साथ ही किसी अन्य प्रभाव के कारण किस प्रकार वह प्रभावहीन सिध्द की गई और किस प्रकार संकटों, समस्या में निकलकर अपने आपको इच्छित मार्ग पर ला सका आदि का वर्णन चरित्र–चित्रण में किया जाता है । नायक, धीरगंभीरता, धीर प्रशांतता के दर्शन मिलते हैं । आत्मकथा का नायक साधारण मनुष्य से लेकर उच्चभ्रु मनुष्य तक हो सकता है । आत्मकथा के इस तत्व में स्वयं लेखक ही प्रधान प्रात्र है और उसके संपर्क में आये हुए अन्यत्र लोग यह गौण पात्र माने जाते हैं । आत्मकथा में नायक का परिचय स्वयं उसकी वाणी से तो मिलता ही है साथ में उसकी आचार–विचार भावना, सुख–दु:ख, सबलता दुर्बलता का परिचय स्वयं के साथ साथ, अन्य लोगों के (गौणपात्र) वार्तालाप के द्वारा प्राप्त होता है । आत्मकथा में आंतरिकता का वर्णन है, जिसके फलस्वरुप उसके साहस, शक्ती, उत्साह का चित्रांकन करता है ।

3) देशकाल – वातावरण :

किसी भी व्यक्ति की कसौटी देशकाल, वातावरण पर ही निश्चित होती है । आत्मकथाकार अपनी जीवन विषयक कहानी समझा रहा है । उसका कब? कहाँ? और क्यों? आदि से संबंध है । इस तत्व में अपने जन्मस्थान और परिस्थिती का (प्रारंभ से लेकर अब तक का जीवन) उदघाटन करता है । आत्मकथा में नायक अपने सामयिक परिस्थिती से प्रभावित होता है । वह इससे किस प्रकार संघर्ष करता रहा? कैसे अपने आपको सँभाल सका ? कैसे प्रारंभिक कष्ट किए आदि का वर्णन मिलता है । वह धार्मिक राजनितिक, तथा सामाजिक, आर्थिक वातावरण में अपनी भूमिका कायम रख सका, साथ ही उसके दृष्टिकोन, जनता और समय के साथ पनपते रहे आदि का चित्रण मिलता है । सामयिक परिस्थिती के संघर्ष, कष्ट, हास, परिहास का वातावरण जन्य विशेषता समझाता है । विशेषत: वह उस समय का, घटना का, प्रवास का वर्णन करता है । जिसकी प्रभावग्रस्तता के कारण जीवन लक्ष्य, मार्ग, दिशा को पा सका है । साथ ही वह अपने ग्राम्य जीवन, नागरी जीवन की समस्या, चिंताओं को व्यक्त करता है । आत्मकथाकार का क्षेत्र राजनैतिक, सामाजिक (सेवा), धार्मिक, साहित्यिक होता है । और वह उस जीवन का, समय का परिचय देता है। यदि आत्मकथाकार यह राजनेता है, तो वह अपने राजनीतिक वातावरण से अपनी कर्तव्यदक्षता का परिचय पाठक को देता हैं । साथ ही उसके उत्थान और पतन की परिस्थिति को उदघाटित करेगा । इस तत्व में वह कल्पना से अधिक वास्तविक सत्य घटनाओं को व्यक्त करता है ।

4) वार्तालाप या संवाद :

आत्मकथाकार अपनी इस स्व परिचय की रचना में स्वयं के विचार, इच्छा, आकांक्षा, स्वप्न, भावना दृष्टिकोन को संवादो के द्वारा ही व्यक्त करेगा । उसके प्रत्येक संवाद या वार्तालाप से स्वयं का ही परिचय मिलेगा। साथ ही विशेष दृष्टिकोन पर अपने आचार-विचार, भाव सिध्दांत आदि को स्पष्ट करेगा । आत्मकथा के संवाद पाठक से संपर्क स्थापीत करने योग्य हृदयस्पर्शी होने चाहिए । संवाद स्पष्ट और भावनापूर्ण होना अनिवार्य है। साथ ही वे सहज, सरल, छोटे छोटे होने चाहिए । इसी कारण उनका प्रयोग क्रमबध्द और सुसंगत होने अनिवार्य है ।

5) भाषा शैली :

आत्मकथा साहित्य किसी प्रकार का बंधन नहीं मानता इसी कारण हमें स्वैरता का फैलाव व्यक्त आशय में मिलता है । आत्मकथा की भाषा शैली सीधे सीधे पाठक को स्पर्श करती है अर्थात वह प्रभावशाली और आकर्षक होनी अनिवार्य है । इसी कारण वह आत्मकथा साहित्य में रोचकता प्रारंभ से ही विद्यमान रहती है। भाषा भाव विचारों का परिधान है जिसके फलस्वरुप लोकोक्तियाँ, मुहावरे, कहावतो, का आधार लेता है । प्रत्येक आशय यह औचित्यपूर्ण सिध्द करने की कोशिश की जाती है । मुख्य रुप से आत्मकथा की भाषा में संयम, स्पष्टता, हास्य विनोद दिखायी देता है । इसी उद्देश्यों को धान्य में रखकर भाषा यह स्वाभाविक अथवा भावानुकूल होनी चाहिए । इस शैली की अहम विशेषता निष्पक्षता है । जिसकी सहाय्यता से उसके संवाद वृत्ति को बाँधना है ।

6) उद्देश्य :

आत्मकथाकार अपनी स्वयं की कहानी लिखता है, यह लेखक का अपना निर्बोध स्वरुप दर्शन होता है, अत: इसमें यथार्थ एवं सत्य की अधिक रक्षा होती है। वह अपने विगत जीवन शैली को प्रत्यक्ष रुप में व्यक्त करता है, जिसके कारण वह काल्पनिकता को स्थान नहीं देता है । वह पाठक को अपने जीवन संघर्ष, कष्टों को किस प्रकार सहजता से उन्हें पराजित किये और अपना जीवन कैसे आनंदमय बनाया आदि को वह पाठक से साक्षात्कार कराता है । आत्मकथाकार अपनी रचना से स्वयं के आदर्श, विचार, सिध्दांत, संकल्प यथार्थ जीवन में कैसे श्रेष्ठ रहे आदि को समझाते हैं । साथ ही पाठक को सन्मार्ग, आदर्श ही जीवन में सर्वश्रेष्ठ है। यह प्रेरणा भी देते हैं । वह किसी घटना का या संपूर्ण जीवन को ही कलात्मक रुप से दिखलाता है । जिससे पाठक के मन को प्रभावित कर देती है ।

निष्कर्ष रुप में स्पष्ट हो जाता है कि आत्मकथा स्वजीवन का वर्णन है । आत्मकथाकार अपने विषय में समझाते हुए । किसी प्रकार से वह पाठक से संबंध स्थापित करना चाहता है । इसलिए आदर्श जीवन का परिचायक आत्मकथा होती है ।

3.3.3 यात्रावृत्त : स्वरूप परिभाषा तत्त्व :

3.3.3.1 यात्रावृत्त का स्वरूप :

पुराने लोगों ने ज्ञान – प्राप्ति के कुछ साधनों का विचार किया है । पंडितों से मैत्री और सभाओं में संचार के साथ देशाटन – तिर्थाटन या यात्रा का महत्व उन्होंने समझाया है । देश विदेश का बदलता परिवेश और प्रकृति के विविध परिवर्तित रुपों का दर्शन करना आपने आप में एक अनूठा अनुभव है । जन–जन के जीवन की प्रेरणाओं को समझना उनको आस्था और विश्वासों को जानना ज्ञानप्राप्ति का साधन है । यात्रा से ही प्रकृति की नाना रंग गंधमयी छबि का दर्शन होता है ।

मानव का विकास भी यात्रा से संबंध रखता है । यात्रा मनुष्य की प्रगति का सोपान है । यात्रा के कारण मनुष्य को बहुआयामी व्यक्तित्व तथा अनेक अनुभूतियों का गंभीर ज्ञान होता है । अपने जीवन की आवश्कताओं के लिए तथा व्यापार वाणिज्य के निमित्त मनुष्य ने यात्रा की है । यह कभी पैदल, तो कभी वाहनों पर सवार होकर तो कभी विशेष पशुओं की सहाय्यता से की है । कभी गिरी कंदराओं में तो कभी जलते रेगिस्तानों में, कभी पठारों पर तो कभी घनघोर जंगलों में मनुष्य घुमा है । चिलचिलाती धूप हो या झमझम बरसता मेघ या फिर अस्थिभेदक शीत हो । उसके कदम निरंतर चलते ही रहे है । चलते–चलते कहाँ से कहाँ पहुँच गये हैं। यात्रा के अभाव में मनुष्य का जीवन निर्वाह दूभर हो गया है । भ्रमण के द्वारा मनुष्य ने यात्रा क्षेत्र में प्रगति की है । उसने अपना क्षेत्र व्यापक बनाया । दूर–दूर के स्थानों का भ्रमण किया । उसे नयी बातों की जानकारी मिली। उसका बौध्दिक विकास हुआ, उसकी विचारधारा विकसित हुई । मनुष्य जाति का इतिहास उसकी घुमक्कड प्रवृत्ति से संबंधित दिखायी देता है । मनुष्य के मन में सौंदर्य का बोध तो था ही प्रकृति के परिवर्तित तेवरों ने भी उसे प्रभावित किया । मनुष्य की आनंद और उल्हास की भावना पुष्ट हुई । घूमते रहना ही उनके जीवन का परम उद्देश्य बन गया । देश–विदेश के यात्रियों में जैसे फाहियान, हवेनसांग, अलबरुनी, मार्को पोलो, बर्नियर जैसे जगप्रसिध्द यात्रियों ने दुनिया का नया दर्शन कराया है । केवल यात्रा करने से कोई यात्री साहित्यिक नहीं बन जाता । केवल यात्रा के प्रसंग लिखकर यात्रा विषय प्रस्तुत करना यात्रा – साहित्य नहीं है । यात्रियों की आंतरिक प्रेरणा और बाह्य परिवेश का सजग अनुसंधान यात्रा –साहित्य में जरुरी है । यात्रा–साहित्य लिखनेवाले को अपने – अपने समय की सामाजिक राजनैतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक भावनाओं तथा मान्यताओं का भी अध्ययन करना होता है।

यात्रा मानव जीवन का अभिन्न अंग है । मनुष्य आदिम काल से यात्रा करता आ रहा है । कभी जीविकोपार्जन करने के निमित्त उसे भटकना पडा था । धीरे – धीरे उसका क्षेत्र व्यापक हुआ है । नई बातों की जानकारी पाने हेतू उसने यात्राएँ की। यात्रा के कारण विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में मानवता को फलने–फूलने का अवसर प्राप्त हुआ। धर्म और संस्कृति के प्रचारक अनेक ऋषि –आचार्य, साधु–संतो ने भी पर्यटन किया। वे संस्कृति के प्रचार के दूत रहे ।

यात्रा का अर्थ अपनी स्थितियों का विस्तार करना है। सही पता लेन, यात्रा साहित्य वैदिक साहित्य जिनती पुरातन और समृध्द दिखायी देती है । देतरेय ब्राह्मण का चरैवेवेति – चरैवेवेति मंत्र यात्रा पर बल देनेवालों

महामंत्र है । मध्ययुगीन साहित्य में यात्रा विषयक अनेक ग्रंथ मिलते है । भारतेंन्दु युगीन साहित्य में यात्रा वर्णन मिलता है । भारतेंन्दुयुगीन यात्रा साहित्य में रेलयात्रा के कारण वृध्दि हुई । भारतेंन्दुयगीन यात्रा साहित्य की दो विशेषताएँ बताई जा सकती है। एक विदेशी यात्राओं के प्रति बढता आकर्षण और दूसरी विशेषता है तीर्थ यात्राओं के प्रति बढती रुची ।

द्विवेदी युग में अनेक पत्र पत्रिकाओं ने यात्रा विषयक साहित्य का प्रकाशन किया । द्विवेदी युग और छायावाद युग में यात्रा-साहित्य विषयक लेखन की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ ।

3.3.3.2 यात्रावृत्त : की परिभाषा :

पंडित गणेशदत्त शास्त्री :

विजय की इच्छा से राजाओं का जाना, धावा करना या देवता के उद्देश्य से एक प्रकार से उत्सव संपन्न करना माना जाता है।

चतुर्वेदी द्वारिकाप्रसाद शर्मा :

सफर एक स्थान से दूसरें स्थान पर जाने की क्रिया है।

हिंदी विश्वकोशकार श्री नगेंद्र :

विजय इच्छा से कही जाना, चढाई, पर्याय व्रज्या, अभिनिर्माण, प्रस्थान, गमन, प्रस्थिति, दर्शनार्थ, देवस्थानों को जाना, तिर्थाटन, एक स्थान से दूसरें स्थान को जाने की क्रिया है।

अंग्रेजी विद्वान मॅकडोनल :

यात्रा का वास्तविक अर्थ एक स्थान से दूसरे स्थानपर जाने की क्रिया ही अधिक न्यायसंगत और उपयुक्त है।

यात्रा का प्रमुख लक्षण संचरण शीलता है । अर्थात एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना निरंतर स्थान परिवर्तन करना ही यात्रा है । पूरी दुनिया अंतरिक्ष, यात्रा का क्षेत्र है ।

डॉ. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी :

यात्रा का मानव जीवन में बडा गहरा संबंध अत्यंत प्राचीन काल से मनुष्य यात्राएँ करना रहा है । यात्रा के द्वारा ही उसका जीवन व्यापक हुआ है । ज्ञान क्षेत्र में वृध्दि हुई है ।

राहुल सांकृत्यायन :

धुमक्कडी एक रस है । यह रस काव्य के रस में किसी तरह भी कम नहीं है । कठिन मार्गो को तय करने के बाद नये स्थानों में पहुँचने पर हृदय में जो भावोद्रेक पैदा होना है वह एक अनुपम चीज है । उसे कविता के रस से हम तुलनीय मान सकते है । ब्रह्म पर विश्वास करनेवाला उसे ब्रह्म रस समझेगा या फिर ब्रह्मानंद-सहोदर रस समझ सकता है ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि यात्रा साहित्य की परंपरा बहुत प्राचीन है । यात्रा वर्णन दोन प्रकार के है ।

1) साहित्यिक क्षेत्र में प्राप्त ।

2) इतिहास में प्राप्त ।

हिंदी साहित्य में साहित्यिक यात्रावर्णन को प्रमुख स्थान दिया जाता है ।

साहित्यिक यात्रा वर्णन में प्रकृति के विभिन्न, उपादान, सौंदर्य, स्थल, सौंदर्य स्थलों में नदी, पर्वत, प्राकृतिक सुषमा, घाटियाँ खाई आदि का मनोरम चित्रिण चित्रित होता है। लेखक उनका वर्णन तटस्थता से न करते हुए उसके हृदय पर जो प्रभाव अंकित होता है । उस सौंदर्यपूर्ण प्रभाव का रसात्मक, भावात्मक शब्दों में वर्णन करता है । जिसे पढकर पाठक रसविभोर होकर उन यात्राओं का चित्रोपम वर्णन साक्षात अनुभूत करता है । साहित्यकार यात्रा वर्णनों में प्रकृतिगत विशेषताएँ चित्रित करते हुए अपनी धुमक्कडता, मस्ती, उल्हास इनका यात्रा संबंधी विवरण में वर्णन करता है । जिससे वह वर्णन सजीव बनता है । यहीं विशेषताएँ यात्रा वर्णन को साहित्यिकता प्रदान करती है ।

हिंदी का यात्रा साहित्य :

हिंदी में बहुत कम साहित्य लिखा गया है । निम्नलिखित प्रकारों में वह प्राप्त होता है ।

1) सूचना और विवरण प्रधान :

यह यात्रा वर्णन अधिकतर निबंध शैली में लिखा गया है । इसके अंतर्गत उन तमाम स्थानों, व्यक्तियों और वस्तुओं आदि का यथातथ्य वर्णन मिलता है । लेखक जो उसने अपनी यात्रा में देखा सुना है । उसे समझाता है । जैसे – राहुल सांकृत्यायन का किन्नर देश में, गोविंददास, पृथ्वी परिक्रमा।

2) प्रकृति के संपर्क से उद्‌भुत लेखक के हृदय निर्बाध्द उल्लास की अभिव्यक्ति करनेवाला यात्रा साहित्य :

इस यात्रा वर्णन में भिन्न भिन्न स्थानों व्यक्तियों और वस्तुओं के दर्शन से लेखक के हृदय में जो अवर्णनीय आनंद उल्लास समा जाता है उसे वह संस्मरणात्मक शैली में रोचक शब्दों में अभिव्यक्त करता है। जैसे वेणीशुक्ल– लंडन से पॅरिस की सैर। रामवृक्ष बेनीपुरी – पैरों में पंख बाँधकर।

3) जीवन दर्शन का संकेत करनेवाला यात्रावर्णन :

ये यात्रा वर्णन दार्शनिक प्रधान होते हैं । लेखक गंभीर, अध्यात्मिक व्यक्तित्व का होने से भिन्न भिन्न पदार्थो में स्थानों में वस्तुओं में वह अलौकिक सन्ता के संकेत का एहसास करता है । एहसास से प्राप्त अनुभूति को रोचक शब्दों में अभिव्यक्त करता है । उनमें वह अवर्णनीय संदेश की झलक पाता है । उसे ही वह यात्रा वर्णन में प्रतिष्ठित करता है । जैसे देवेंद्र सत्यार्थी का धरती गाती है। रांगेय राघव का – तुफानों के बीच आदि।

4) डायरी के रुप में लिखे गये संस्मरणात्क यात्रा साहित्य :

इनकी रचना डायरी शैली में की जाती है । लेखक यात्रा के दौरान देखी गई, सुनी गई आवश्यक बातों

को संक्षेप में नोट करता है । उनके संदर्भ में अपनी, अपनी विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त करता है । जैसे राहूल सांकृत्यायन का यात्रा के पन्ने।

5) व्यक्तिगत पत्रों के रुप में लिखा गया यात्रा साहित्य :

हिंदी के कुछ लेखकों ने यात्रा साहित्य की सर्जना पात्रों के रुप में की है । इन पत्रों की लेखन शैली सहज सरस और आत्मीय होती है । डॉ. विरेंद्र वर्मा लिखित – यूरोप के पत्र।

इस प्रकार हिंदी में विविध शैलियों में लिखा यात्रा साहित्य मिलता है ।

3.3.3.3 यात्रावृत्त के तत्त्व :

यात्रा के आनंद सब के लिए अनुठा होता है । यात्रा साहित्य को संस्मरणात्मक साहित्य माना जाता है। यात्रा वर्णन के कुछ तत्वों का उल्लेख किया जा सकता है ।

1) प्राकृतिक सौंदर्य :

यात्रा का अर्थ अपने स्थान से हटकर किसी दूसरे स्थान तक पहूँचना है । इसमें थे प्रकृति के विविध रंग–गंधभरी मनभावना स्थितियों से लेखक का साक्षात्कार होता है। प्रकृति सुंदरी हर ऋतु –विशेष में अपने रुप का नया–नया अविष्कार प्रस्तुत करती है । चौडे मैदान, खेती की लहलहाती फसल, आकाश के बदलते रंग, वृक्ष वनस्पती की गंध सब मिलाकार व्यक्ति के मन को समृध्द करते रहते है । लेखन में प्रकृति के इन विविधता भरे रुपों का प्रत्ययकारी वर्णन करने के कारण कविता का आनंद और उल्हास आ जाता है । प्रकृति मनुष्य के लिए माता स्वरुप है । उससे मनुष्य बहुत कुछ सीख सकता है । प्रकृति एक उपदेशक या गुरु, मित्र या सखा के रुप में भी मिल सकती है ।

2) यथार्थ यात्रा :

यात्रा वर्णन यात्रागत अनुभवों को लेकर चलता है । इसलिए यात्राकार का स्वयं यायावर होना अनिवार्य है । कोई व्यक्ति यदि चाहे कि वह किसी दूसरें यात्री की यात्रा के वृत्तांत और अनुभवों को सुनकर उन्हें यात्रा वर्णन में वर्णित कर दे, तो वह ऐसा कर तो सकता है परंतु यात्रा वर्णन के रुप में रचना विश्वसनीय नहीं होगी। क्योंकि उसमें घटनाएँ कल्पना आदि आये बिना नही रहेंगे यात्रा वर्णन की यात्रा तो यथार्थ होनी चाहिए जो स्वयं लेखक के द्वारा संपन्न की गई हो और इस यात्रा में लेखक पूरी तरह सजग रहा हो । यह यात्रा सोद्देश्य और केवल भ्रमणात्मक दृष्टिकोन में से किसी भी आधार पर की गयी हो सकती है । परंतु इसमें स्थूल का दर्शन एक समान ही रहता है । जिसमें प्रकृति परिवेश जलवायू से जूडे सभी पहलु आ जाते हैं ।

3) प्रत्यक्ष अनुभव :

जिस प्रकार यात्रा वर्णन लेखक से भिन्न किसी दूसरें व्यक्ति की यात्रा पर नहीं लिखा जा सकता उसी प्रकार यात्रागत अनुभवों की दृष्टि से भी वह किसी दूसरें के अनुभवों को स्वीकार नहीं करता । इसमें तो प्रत्यक्ष अनुभवों का ही महत्व है । लेखक का स्वयं का अनुभव प्राप्तकर्ता के रुप में संबंध्द स्थान पर उपस्थित होना

अनिवार्य है । यह अनुभव परिवेशात्मक, सांस्कृतिक और घटनात्मक प्रकारों का हो सकता है । परिवेशात्मक में स्थूल वस्तुओं प्रकृति के यथार्थ स्वरुप और उसमें निहित सौंदर्य की पकड आती है और सांस्कृतिक अनुभव में सूक्ष्म सोचविचार से लेकर वहाँ की वर्तमान व्यवस्था से जुडे प्रभावों का अनुभव प्राप्त किया जाता है । घटनात्मक अनुभव ऐसे अनुभव होते हैं जो अप्रत्यक्षित होते हैं परंतु उनमें भी स्थान विशेष के जीवन का कोई न कोई रुप सामने आता है ।

4) व्यापक जीवन :

यात्रा वर्णन से संबधित जीवन लेखक के अपने जीवन परिप्रेक्ष्यों से परे व्यापकत्तर संदर्भीय जीवन होता है । इस जीवन का साक्षात्कार वह भिन्न संस्कृतियों, धर्मो, सभ्यताएँ, जातियों, संप्रदायों, रंगो, आकारों, मूल्यों, मान्यताओं, रिती-रिवाजों भाषाओं औंर व्यवस्थाओं से जुडे लोगो के संपर्क में आता है । इसलिए वह अपने अनुभव जगत को भी विशालता प्रदान करता है । इसी अनुभव में वह मानवता के वैश्विक और विराट स्वरुप का परिचय प्राप्त करता है । इसी जीवन के संपर्क में आने से वह अपने जीवन से तुलना करते हुए आश्चर्यचकित होने की सीमा तक अपने चित्त का विस्तार करता है । इस प्रकार वह नये सौंदर्य और नये सांस्कृतिक संदर्भो तथा मानवीय मूल्यों से संपन्न होकर उन्हें अपनी रचना में प्रस्तुत करता है ।

5) कलात्मकता :

कोई निश्चित प्रबंधात्मक स्वरुप नहीं हो सकता, लेकिन साहित्य मात्र की सभी विधाओं की कलात्मकता ठीक उसी प्रकार स्थान पा सकती है, जिसप्रकार नाटक के संबंध में कहा जा सकता है कि ऐसा योग शिल्प कला इ. नहीं है जो नाटक में स्थान पा सकते हो । वास्तव में यात्रा लेखक के लिए भी सभी कलाओं की सृजनात्मकता का ज्ञान और गीतिकार सी भावूकता, निबंधकार की सी संवादात्मकता, डायरी लेखन की सी गणितीय दृष्टि आत्मकथाकार और जीवनी कथाकार की सी तटस्थता का होना अनिवार्य है। तभी यात्रा साहित्य में कलात्मकता आ सकती है ।

6) इतिहास बोध :

यात्रा वर्णन करते समय इतिहास का अचूक ज्ञान भी आवश्यक है । जिस विशेष प्रदेश की यात्रा हो उस प्रदेश के भूगोल के साथ उसका एक दैदिप्यमान इतिहास भी होता है । उन स्थानों को भूतपूर्व ऐतिहासिक चरित्रों के स्पर्श के कारण एक दिव्य आभा भी प्राप्त हो चुकी होती है । इतिहास का अर्थ केवल राजा महाराजाओं की जानकारी देनेवाला संवत का लेखाजोखा नही है । उन राजाओं की जीवनशैली का सही परिचय पाना और जन-सामान्य जीवन की प्रेरणाओं को समझाना भी जरुरी होती है । विशिष्ट स्थलों पर कोई वास्तु, महल, गढ, किला, सरोवर वृक्ष इन रुपों में भी कोई निशानी हो सकती है । इस इतिहास बोध को समझकर जब यात्रा की जाएगी तब उसके अर्थ और फलितार्थ नये-नये संदर्भ में प्रगट हो सकते हैं ।

7) उद्देश्य :

कोई यात्रा कदापि निरर्थक या निरुद्देश्य नहीं होती है । शिक्षा, अनुभव पाने के लिए यात्रा की परम

आवश्यकता होती है । ज्ञानप्राप्ति के साधनों में बुजुर्गो ने यात्रा को महत्वपूर्ण साधन माना है । कभी कोई निश्चित उद्देश्य सामनें रखकर यात्रा की जाती है । कोई यात्रा औद्योगिक स्थानों की जानकारी प्राप्त करने हेतु की जाती है तो कभी इतिहास ज्ञान बढाने के लिए कभी ज्ञानप्राप्ति हेतु की जाती है । तो कभी केवल मनोरंजनार्थ भी की जाती है । यात्रा का आनंद निरुद्देश्य भी हो फिर भी आनंदलाभ करार ही देता है ।

8) शैली :

यात्रा वर्णन में अतित की स्मृति मुख्य विषय है । अनेक स्मरणीय व्यक्ति, दृश्य मुख्य विषय है । अनेक स्मरणीय व्यक्ति, दृश्य एवं घटनाएँ यात्रा वर्णन में गुंथी हुई रहती है । यात्रा साहित्य में देश-विदेश के प्राकृतिक सौंदर्य, गाँव -शहर, सांस्कृतिक केंद्र, सामाजिक, आर्थिक, राजनितिक एवं साहित्यिक जीवन, स्त्री-पुरुषों का रहन-सहन, विश्वास आदि की झलक मनोरमा शैली में प्रस्तुत की जाती है । यात्रा लेखन की शैली कवित्वपूर्ण और हृदयस्पर्शी होती है । कभी विवरण तो कभी संवाद, कभी संस्मरण तो कभी डायरी, कभी मनोरंजन तो कभी कौतुहलवर्धक, कभी प्राकृतिक तो कभी कथात्मक इस प्रकार से विविध रुपों में यात्रा वर्णन लिखा जा सकता है ।

यात्रा वर्णन के भेंद :

यात्रा के विषयों के आधारपर यात्रासाहित्य के निम्नलिखित प्रकार हो सकते हैं ।

1) स्थलयात्रा

2) जलयात्रा

3) आकाशयात्रा

4) पशु-पक्षियों की यात्रा

5) धार्मिक यात्रा

6) शिकारियों की यात्रा

7) सांस्कृतिक यात्रा

8) साहित्यिक यात्रा

9) ऐतिहासिक यात्रा

10) भौगोलिक यात्रा

11) राजनैतिक यात्रा

12) प्रमोद यात्रा

यात्रा साहित्य के आरंभ में मनोरंजन, सुधार, तीर्थयात्रा अर्थात पुण्यार्जन की प्रवृत्ति प्रमुख थी । धीरे-धीरे विकास हुआ । आज सांस्कृतिक, राजनीतिक आर्थिक एवं साहित्यिक दृष्टि को प्रधानता मिली है । सांस्कृतिक आदान - प्रदान के कारण श्रेष्ठ कोटि के समीक्षक, साहित्यिक, नेता, अभिनेता, कलाकार आदि

देश विदेश की विरासत को संभालकर अभिव्यक्ति देते रहे है । कभी कलात्मकता तो कभी गंभीर, कभी भावुक तो कभी बुध्दिमत्तापूर्ण, कभी सामयिक, कभी विश्लेषणात्मक इस प्रकार की विविध शैलियों में लेखन हुआ। मात्र वर्णन करने की अपेक्षा प्रभाव ग्रहण करने की वृत्ति का विकास हुआ । मात्र प्रतिक्रिया व्यक्त करने की अपेक्षा संवेदनागत आकलन में वृध्दि हुई है ।

3.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) रेखाचित्र ..... का शब्द है।

क) हस्तकला ख) चित्रकला ग) मूर्तिकला घ) पाककला

2) 19 वी सदीं के ..... चरण में भारतेंन्दु का काल आता है ।

क) प्रथम ख) मध्यम ग) अंतिम घ) द्वितीय

3) मलयालम भाषा में रेखाचित्र को ..... कहा जाता है ।

क) तुलिका चित्र ख) चरितलेख ग) शब्दचित्र घ) व्यक्तिचित्र

4) रेखाचित्र में ..... का प्रयोग नहीं होता ।

क) रेखा का ख) शब्दों का ग) रंगों का घ) अर्थो का

5) रेखाचित्र शब्द रेखा और ..... इन शब्दों से बना है ।

क) चित्र ख) शब्द ग) छाया घ) व्यक्ति

6) रेखाचित्र शब्द अंग्रेजी ..... का समानार्थक है ।

क) Sketch ख) Poet ग) Letter घ) Write

7) रेखाचित्रकार ..... भी होता है ।

क)चित्रकार ख) पत्रकार ग) कथाकार घ) साहित्यकार

8) रेखाचित्र में ..... का होना जरुरी है ।

क) गांभीर्यता ख) सरलता ग) तटस्थता घ) आत्मीयता

9) रेखाचित्र में ..... का महत्व अधिक होता है ।

क) पाठक ख) चरित्र ग) लेखक घ) श्रोता

10) रेखाचित्र की ..... निश्चित होती है ।

क) सीमाएँ ख) दोष ग) गुण घ) अमर्याद

11) आत्मकथा ..... के जीवन की कथा है ।

क) व्यक्ति ख) समाज ग) मनुष्य घ) प्राणी

12) आत्मकथाकार यह कलाकार भी है और ..... भी ।

क) मनुष्य ख) चित्र ग) जन घ) समाज

13) आत्मकथा में लेखक .....अपने ही व्यक्तित्व को उदघाटित करता है ।

क) स्वयं ख) परकीय ग) अन्य घ) विदेशी

14) आत्मकथाकार अपने आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व को ..... शैली में प्रस्तुत करता है ।

क) मनोरमा ख) जनसंबंधी ग) चित्रोपम घ) व्यक्ति

15) ..... का परिचायक आत्मकथा ही है ।

क) सहजीवन ख) आदर्शजीवन ग) दुर्बलता घ) संघर्ष

16) आत्मकथाकार अपने जीवन की ..... लिखता है ।

क) उपन्यास ख) निबंध ग) कहानी घ) रिपोर्ताज

17) आत्मकथा में ..... का प्रयोग नहीं होता है ।

क) वास्तव ख)कल्पना ग) तात्पर्य घ) बौध्दिक

18) आत्मकथा स्वयं का स्वलिखित..... है ।

क) भूगोल ख) इतिहास ग) जीवन घ) यात्रा

19) यात्रा से मानव का ..... जुडा है।

क) विकास ख) इतिहास ग) मानस घ) भूगोल

20) यात्रा मानव जीवन का ..... अंश है।

क) अनावश्यक ख) गैर लागू ग) अभिन्न घ) अद्वितीय

21) यात्रा का अर्थ क्षितिजों का ..... करता है ।

क) संकोच ख) विस्तार ग) अध्ययन घ) गतिमान

22) यात्रा वर्णन में ..... कला का उन्मेष होता है।

क) संस्मरण ख) निबंध ग) आलोचना घ) आत्मकथा

23) यात्रा वर्णन में ..... के बोध की आवश्यकता होती है।

क) इतिहास ख) विज्ञान ग) गणित घ) राज्य

24) वास्तविकता तथा विश्वसनीयता ..... में होती है ।

क) संस्मरण ख) आत्मकथा ग) रेखाचित्र घ) यात्रा साहित्य

25) प्रकृति मनुष्य के लिए ..... स्वरुप है ।

क) पिता ख) माता ग) बहन घ) भाई

26) रेखाचित्र के लिए संतुलन और तटस्थता एक विशेष ..... है।

क) गुण ख) दोष ग) रस घ) चित्र

27) संवेदनशीलता रेखाचित्र का ..... है ।

क) आत्मा ख) प्राण ग) भावना घ) कल्पना

28) यात्रा वर्णन में ..... अनुभवों का महत्व है।

क) प्रत्यक्ष ख) परोक्ष ग) संदिग्ध घ) पर्याय

29) पूरी दूनिया अंतरिक्ष ..... का क्षेत्र है।

क) यात्रा ख) पर्यटन ग) साहित्य घ) माना

30) घूमने रहना ..... का उद्देश्य है।

क) यात्रा ख) संस्मरण ग) नाटक घ) कहानी

आ) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक एक वाक्य में लिखिए।

1) रेखाचित्र किन दो शब्दों से बना है?
2) रेखाचित्रकार को क्या कहते है?
3) रेखाचित्र के लिए क्या बाधक होता है?
4) रेखाचित्रकार के लिए क्या आवश्यक है ?
5) रेखाचित्र में उसके कोन से जीवन का सत्य व्यक्त होता है?
6) रेखाचित्र का प्राणतत्व कौन सा है?
7) रेखाचित्र विधा को किस लेखक ने विकसित किया?
8) शिकार साहित्य लेखन में किसका नाम प्रमुख है?

9) किस विधा में संस्मरण का मिश्रण मिलता है?

10) व्यक्ति के जीवन की क्या किसे कहते हैं?

11) आत्मकथा विधा की शुरुवात किसने की है?

12) आत्मकथा में कितने प्रकार का अध्ययंन आवश्यक है?

13) आत्मकथा में किसका प्रयोग नहीं होता?

14) आत्मकथा में क्या आवश्यक होता है?

15) आत्मकथाकार पाठकों के मन में कौन से भाव जगाता है?

16) व्यक्ति के जीवन को आकार कौन देता है?

17) आत्मकथा के प्रयोजन कौनसे है?

18) आत्मकथा साहित्य का उद्देश्य क्या है?

19) आत्मकथा में किसका वर्णन होता है?

20) आत्मकथा में किसके सहयोग से वर्णन किया जाता है ?

21) मनुष्य के द्वारा व्यक्त की गयी कहानी को क्या कहते है?

22) कलाकार के जीवन पर आश्रित आत्मकथा में कौनसा गुण होता है?

23) आत्मकथा में कथावस्तु को आधार कौन होता है।

24) संवाद कैसे होते है?

25) भाषा को क्या कहा जाता है?

26) भाषा कैसी होनी चाहिए?

27) भाषा शैली की विशेषत: कौनसी है?

28) आत्मकथा पाठक को कौनसी प्रेरणा देते है?

29) यात्रा के कारण मनुष्य में कौनसी भावना विकसित हुई?

30) संस्कृति प्रचार के दूत कौन है?

31) ऐतरेय ब्राह्मण का महामंत्र कौनसा है?

32) भारतेंन्दुयुगीन यात्रा साहित्य वृध्दि का कारण बताइंएँ ?

33) भारतेंन्दुयुगीन साहित्य की कितनी विशेषताएँ है ?

34) यात्रा का प्रमुख लक्षण कौनसा है?

35) यात्रा का क्षेत्र कौन सा है?

36) यात्रा वर्णन का मुख्य विषय क्या है?

37) यात्रा साहित्य अनुसंधान के लिए क्या आवश्यक है?

3.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. इकाई – अध्ययन घटक,
2. भ्रमण – घुमना, फिरना
3. परिमार्जन – शुध्दिकरण
4. परिष्कृत – शुध्द
5. बहुमुखी – अनेक प्रकार से
6. अनुमान – प्रमाण
7. अनुभूति – अनुभव
8. आपद – संकट
9. विधा –साहित्य का प्रकार
10. मुर्धन्य – श्रेष्ठ
11. प्रवर्तक – संस्थापक
12. शैली – पध्दति
13. अभिन्न – जो भिन्न न हो
14. उत्थान – विकास

3.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

अ) उचित पर्याय

1. चित्रकला	2. अंतिम	3. तुलिका चित्र
4. रंगों का	5. चित्र	6. Sketch
7. चित्रकार	8. तटस्थता	9. चरित्र
10. सीमाएँ	11. व्यक्ति	12. मनुष्य
13. स्वयं	14. चित्रोपम	15. आदर्श जीवन
16. कहानी	17. कल्पना	18. इतिहास
19. विकास	20. अभिन्न	21. विस्तार
22. संस्मरण	23. इतिहास	24. यात्रा साहित्य
25. माता	26. गुण	27. प्राण

28. प्रत्यक्ष 29. यात्रा 30. यात्रा

आ) एक वाक्य में उत्तर।

1) रेखाचित्र रेखा और चित्र इन दो शब्दों मे बना है ।

2) रेखाचित्रकार को चित्रकार भी कहते है ।

3) रेखाचित्र के लिए आतिरंजित निंदा और प्रशंसा बाधक है ।

4) रेखाचित्रकार के लिए तटस्थता गुण आवश्यक है ।

5) रेखाचित्र में उसके अनुभूत जीवन का सत्य व्यक्त होता है ।

6) सुक्ष्म निरीक्षण रेखाचित्र का प्राणतत्व है ।

7) पंडित बनारसीदास चतुर्वेदीजी ने रेखाचित्र विधा को विकसित किया।

8) शिकार साहित्य लेखन में पंडित श्रीराम शर्मा प्रमुख है ।

9) रेखाचित्रों में संस्मरण का मिश्रण मिलता है ।

10) आत्मकथा को व्यक्ति के जीवन की कथा कहा जाता है ।

11) आत्मकथा विधा की शुरुवात बनारसीदार जैन ने की है ।

12) आत्मकथा में दो प्रकार अध्ययन आवश्यक है ।

13) आत्मकथा सें कल्पना प्रयोग नहीं होता है ।

14) आत्मकथा में कलात्मकता की आवश्यकता होती है ।

15) आत्मकथाकार पाठकों के मन में कौनसे भाव जगाता है।

16) व्यक्ति के जीवन को आकार आत्मकथा देती है ।

17) आत्मकथा के 1) लेखकनिष्ठ प्रयोजन 2) पाठकनिष्ठ प्रयोजन होते हैं ।

18) आत्मकथा का उद्देश्य आत्मनिर्माण, आत्मपरिक्षण या आत्मसमर्थन होता है ।

19) आत्मकथा में स्वयं लेखक का वर्णन होता है ।

20) आत्मकथा में आत्मा के सहयोग से वर्णन किया जाता है ।

21) मनुष्य के द्वारा व्यक्त की गयी कहानी आत्मकथा है ।

22) कलाकार के जीवन पर आश्रित आत्मकथा में संप्रेषणीयता गुण होता है ।

23) आत्मकथा में कथा वस्तु का आधार लेखक होता है ।

24) संवाद स्पष्ट और भावपूर्ण होते हैं ।

25) भाषा को भाव विचारों का परिधान कहा जाता है ।

26) भाषा स्वाभाविक और भावानुकूल होनी चाहिए ।

27) निष्पक्षता भाषाशैली की विशेषता है ।

28) आदर्श जीवन ही सर्वश्रेष्ठ है यही आत्मकथा प्रेरणा देती है ।

29) यात्रा के कारण मनुष्य में आनंद और उल्हास की भावना विकसित हुई ।

30) संस्कृति प्रचार के दूत ऋषि आचार्य साधुसंत है ।

31) ऐतरेस ब्राह्मण का महामंत्र चेरेवेती चरैवेवेती है ।

32) भारतेंन्दुयुगीन यात्रा साहित्य की वृध्दि रेलयात्रा के कारण हुई ।

33) भारतेंन्दुयुगीन साहित्य की दो विशेषताएँ है।

34) यात्रा का प्रमुख लक्षण संचरण शीलता है।

35) पूरी दुनिया या अंतरिक्ष यात्रा का क्षेत्र है।

36) यात्रा वर्णन में अतित की स्मृति मुख्य विषय है ।

37) यात्रियों की आंतरिक प्रेरणा और बाह्य परिवेश अनुसंधान के लिए आवश्यक है ।

2.7 सारांश :

- रेखाचित्र अपेक्षाकृत नई साहित्यिक शैली है । नया गद्य लेखन प्रकार है । जीवन बदलता गया। व्यस्तताएँ बढती गयी । इस परिवेश नये गद्य प्रकारों का निर्माण हुआ । सामाजिक परिस्थितियों के बदलाव के कारण भी रेखाचित्र का विकास हुआ । वीसवी सदी के तीसरे दशक में रेखाचित्र विधा का विकास हुआ।
- रेखाओं से बनाये गये चित्र के लिए रेखाचित्र शब्द का प्रयोग किया जाता है। मलयालम भाषा में रेखाचित्र को तुलिका चित्र कहा जाता है । रेखाचित्र के लिए हिंदी में व्यक्तिचित्र, चरितलेख, शब्दचित्र कहा जाता है । लेकिन रेखाचित्र शब्द ही अधिक उपयुक्त, सार्थक और प्रचलित है ।
- रेखाचित्र आधुनिक युग की उपज है । साहित्य में प्रयुक्त 'रेखाचित्र' शब्द अंग्रेजी का समानार्थक है ।
- रेखाचित्र किसी एक व्यक्ति, स्थान, घटना या दृश्य उपादान का वस्तुगत वर्णन होता है । बाह्य विशेषताओं के वर्णन में ही आंतरिक गुणों को भी समन्वीत कर लेता है । 'रेखाचित्र' सरल, लघु तथा वर्णन प्रधान होता है ।
- 'रेखाचित्र'' का प्रमुख उद्देश्य चरित्र को संजीवता से स्पष्ट करके हृदय परिष्कार, धारणा, परिवर्तन, उदारता का विकास, लोकहृदय का निर्माण न्याय के प्रति जागरुकता, चेतना, दु:खियों के प्रति करुणा आदि के भाव जगाना है ।
- अधिकांश रेखाचित्रों का प्रधान वर्ण्य विषय कोई न कोई व्यक्ति ही होता है । उसकी चरित्रगुण विशेषताओं को उभारना रेखाचित्रकार का उद्देश्य होता है । बाह्य चरित्र के साथ आंतरिक हलचलों का भी सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

- मानव आकृति की किन रेखाओं और मन के किस विकार में उसका व्यक्तित्व अंतर्हित है उन्हें ढूँढकर खींचना रेखाचित्र की सफलता है।
- आत्मकथा स्वयं का स्वलिखित इतिहास है । वह मूलत: लेखक के जीवन का सातत्यपूर्ण विवरण होता है । जिसमें मुख्य बल आत्मनिरीक्षण और अपने जीवन की सार्थकता पर होता है । आत्मकथा में केवल यथार्थ का ही चित्रण होता है ।
- आत्मकथाकार पाठकों में जीवन के प्रति आस्था जगाने का काम करता है और वह विशुध्द यथार्थ से जुडा हुई विधा है । इसमें कल्पना को कोई स्थान नहीं । पाठको को जीवन सच्चाईयों के साथ जोडनेवाली यह विधा है ।
- आत्मकथाकार एक संवेदशील व्यक्ति है, इस कारण इन प्रतिक्रियाओं का अत्यांधिक महत्व है । उसके जीवन का विकास, उत्कर्ष अथवा विघटन इन्ही प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है ।
- आत्मकथा में परिवेश का अपना महत्व होता है। क्योंकि यही परिवेश उसके व्यक्तित्व को बिघाडता या आकार देता है । इस परिवेश का यथार्थ और सूक्ष्म चित्रण आत्मकथा में अपेक्षित है।
- आत्मकथा एक साहित्यिक विधा है । इस कारण उसमें कलात्मकता की आवश्यकता होती है । यह कलात्मकता दो स्तरों पर होती है । 1) चयन के स्तर पर 2) अभिव्यक्ति के स्तर पर
- मानव का विकास यात्रा से संबंधित है । यात्रा मनुष्य की प्रगति के सोपान है । यात्रा के कारण मनुष्य को बहुआयामी व्यक्तित्व तथा अनेक अनुभूतियों का गंभीर ज्ञान होता है ।
- भ्रमण के द्वारा मनुष्य ने यात्रा क्षेत्र में प्रगति की है । उसने अपना क्षेत्र व्यापक बनाया दूर-दूर के स्थानों का भ्रमण किया । उसे नई बातों की जानकारी मिली । उसका बौध्दिक विकास हुआ। विचारधारा विकसित हो गई ।
- यात्रा मानव जीवन का अभिन्न अंग है । मनुष्य आदिम काल से यात्रा करता आ रहा है । यात्रा के द्वारा विश्व के प्रत्येक क्षेत्र में मानवता को फलने फूलने का अवसर प्राप्त हुआ । धर्म और संस्कृति के प्रचारक अनेक ऋषि आचार्य साधु संतों ने भी पर्यटन किया । वे संस्कृति के प्रचार के दूत रहे ।
- यात्रा का अर्थ अपनी स्थितियों का विस्तार करना है । आपने आप को विकसित करने की दृष्टि से लोगों ने यात्रा की । मनुष्य का, उसके व्यक्तित्व का सही पता जेल, खेल और रेल अर्थात यात्रा में लगता है।
- यात्रा वृत्तांत न निबंध है, न आत्मकथा, न संस्मरण है, न रिपोर्ताज है । किसी अन्य विधा में इसे समाविष्ट नहीं किया जा सकता । एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि भोगी हुई स्थितियों की आत्मानुभूति की अभिव्यंजना ही यात्रा वृत्तांत है।
- यात्रा विषयक साहित्य का विचार करते समय यह विध वैदिक साहित्य जितना पुरातन और समृध्द है । ऐतरेय ब्राह्मण का चरैवेवेति चरैवेवेति मंत्र यात्रा पर बल देनेवाला महामंत्र है ।

- हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में यात्रा साहित्य के लेखन की गति और भी तीव्र हुई। रचना, परिमाण, परिणाम और भावाभिव्यंजन। इन चारों कोणो सें यात्रा साहित्य विकसित हुआ । इस युग में लेखन के विषय और शैली दोनों दृष्टियों से विविधता दिखायी देती है ।
- यात्रा साहित्य का उद्देश्य साहित्य के प्रयोजन से भिन्न नहीं है । श्री राहूल सांकृत्यायन ने कहा है कि घुमक्कडी एक रस है । यह रस काव्य के रस से किसी तरह भी कम नही है । ब्रह्मपर विश्वास करनेवाला उसे ब्रह्मसर समझेगा या फिर ब्रम्हानंद सहोदर रस समझ सकता है ।
- वास्तविकता तथा विश्वसनीयता यात्रा साहित्य में होती है। यात्रा वर्णन करते समय हमें इतिहास का बोध होना भी सबसे महत्वपूर्ण माना जाता है।

3.8 स्वाध्याय :

1) रेखाचित्र की परिभाषा देकर स्वरुप पर प्रकाश डालिए?
2) रेखाचित्र की विशेषताओं की चर्चा किजिए?
3) आत्मकथा का स्वरुप बताइए?
4) आत्मकथा की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?
5) यात्रावृत्त का स्वरुप बताते हुए परिभाषा विशद कीजिए?
6) यात्रावृत्त की परिभाषा देकर तत्वों की चर्चा कीजिए?
7) आत्मकथा का स्वरुप बताते हुए तत्वों पर प्रकाश डालिए?
8) रेखाचित्र की परिभाषा देकर तत्वों की समीक्षा कीजिए?

3.9 क्षेत्रीय कार्य :

- अपने घर के पुराने नौकर का रेखाचित्र लिखिए?
- हिंदी तथा मराठी रेखाचित्रों की तुलना कीजीए?
- पालतु पशु या पक्षी का रेखाचित्र प्रस्तुत कीजीए।
- हिंदी तथा मराठी रेखाचित्रों के नाम बताइएँ?
- अपने संपर्क में आनेवाली प्रतिष्ठित व्यक्ती के जीवन में घटित घटनाओं से आत्मकथा लिखने का प्रयास किजिए?
- स्वयं की आत्मकथा अपने शब्दों मे लिखिए।
- किसी तीर्थक्षेत्र की यात्रा कीजिए।
- माखनलाल चतुर्वेदी तथा चित्रा मुदगल के रेखाचित्रों को पढिए।
- रामवृक्ष बेनीपुरी और आचार्य विनयमोहन शर्मा के रेखाचित्रों की तत्वों के आधारपर चर्चा कीजिए।

3.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र विविध आयाम – डॉ. मधु खराटे

2) क्या भूलूँ, क्या याद करूँ – हरिवंशराय बच्चन

3) रामवृक्ष बेनीपुरी – माटी की मूरतें।

4) निर्मल वर्मा – चींडो पर चाँदनी ।

5) अज्ञेय – एक बूँद सहजा उछली ।

6) माटी के मूरते – रामवृक्ष बेनीपुरी

7) क्या भूलूँ क्या याद करूँ – हरिवंशराय बच्चन

8) अतीत के चलचित्र – महादेवी वर्मा

9) काव्यशास्त्र – डॉ. भगीरथ मिश्र

❑❑❑

इकाई 4

आलोचना : स्वरूप, गुण, प्रकार

अनुक्रम

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 विषय – विवेचन

4.3.1 आलोचना : स्वरूप

4.3.2 आलोचक के गुण

4.3.3 आलोचना के प्रकार

4.3.3.1 व्याख्यात्मक आलोचना

4.3.3.2 तुलनात्मक आलोचना

4.3.3.3 मनोवैज्ञानिक आलोचना

4.3.3.4 ऐतिहासिक आलोचना

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

4.6 स्वयं अध्ययन प्रश्नों के उत्तर

4.7 सारांश

4.8 स्वाध्याय

4.9 क्षेत्रीय कार्य

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

4.1 उद्देश्य :

प्रस्तुत इकाई के अध्ययनोपरांत आप

1. आलोचना एवं उसके पर्यायवाची शब्दों से परिचित होंगे ।
2. आलोचना के स्वरूप से अवगत होंगे ।
3. आलोचक के लिए आवश्यक गुणों से परिचित होंगे।
4. आलोचना के कुछ प्रमुख प्रकारों से परिचित होंगे।
5. किसी भी साहित्य कृति की आलोचना करने की क्षमता प्राप्त करेंगे।
6. साहित्य की अन्य विधाओं का अध्ययन करने की प्रेरणा प्राप्त करेंगे।

4.2 प्रस्तावना :

जीवन और साहित्य के साथ आलोचना का घनिष्ठ संबध है। यदि हम साहित्य को जीवन की व्याख्या माने,तो आलोचना को उस व्याख्या की व्याख्या मानना होगा। साहित्य के क्षेत्र में आलोचना से अभिप्राय है, किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरिक्षण। आलोचना के अंतर्गत किसी कृति का प्रभाव, आस्वाद, उसकी व्याख्या और उसका शास्त्रीय तथा नैतिक मूल्यांकन आदि सभी बाते आ जाती हैं। आलोचना से संबधित जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम आलोचना का अर्थ, स्वरूप, आलोचक के गुण तथा आलोचना के कुछ मुख्य प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

4.3 विषय – विवेचन :

'आलोचना' शब्द संस्कृत के 'लोच्' धातु से बना है, 'लोच्' का अर्थ है – देखना अत: आलोचना का अर्थ है 'देखना'। किसी वस्तु या कृति की सम्यक व्याख्या, उसका मूल्यांकन आदि करना ही आलोचना है। आलोचना के लिए हिंदी में अनेक शब्द प्रचलित हैं – विवेचना, समीक्षा, समालोचना आदि स्थूल दृष्टि से इन तीनों शब्दों को समानार्थक कहा जा सकता है किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने से तीनों कुछ अपना अलग–अलग अर्थ व्यंजित करते प्रतीत होते हैं । साहित्य के क्षेत्र में पहले 'आलोचना' शब्द का प्रचार अधिक था किंतु अब कुछ दिनों से समालोचना और समीक्षा शब्द अधिक प्रचलित हो चले हैं । आलोचना में पहले सम उपसर्ग जोड़ने से 'समालोचना' शब्द बनता है । अत: समालोचना का अर्थ है – संतुलित दृष्टि से किसी रचना के गुण–दोषों का कथन करना किंतु विद्वानों को इतने से भी तुष्टि नहीं हुई तो समालोचना के लिए 'समीक्षा' शब्द का प्रयोग करना प्रारंभ कर दिया। समीक्षा में कृति के बाह्य गुण – दोष कथन से आगे बढ कर कृतिकार के अंत: पृकृति की छानबीन होती है।

4.3.1 आलोचना का स्वरूप :

साहित्य के क्षेत्र में 'आलोचना' से अभिप्राय है,किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरिक्षण । लेकिन कुछ लोग रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त साहित्य से संबधित अन्य समस्त बातों को आलोचना का हिस्सा

समझते हैं । वे अनुसंधान, काव्य का इतिहास और काव्यशास्त्र एवं काव्यसिद्धांतों को भी आलोचना के अंतर्गत सम्मिलित करते हैं । परंतु आलोचना का स्वरूप इनसे भिन्न है जिसे हम निम्न रूप में स्पष्ट करेंगे ।

अनुसंधान और आलोचना :

अनुसंधान का मुख्य कार्य अज्ञात तथ्यों की खोज अथवा ज्ञात तथ्यों की नवीन व्याख्या है । जब तक तथ्यों या दृष्टिकोन संबधी नवीनता न हो, तब तक उसे अनुसंधान की कोटि में नहीं रखा जा सकता । परंतु आलोचना का कार्य किन्ही मानदंडो के आधार पर विशेषताएँ बताना, व्याख्या करना अथवा मूल्यांकन करना है । अत: अनुसंधान की समस्त कृतियाँ आलोचना नहीं हो सकती और न ही आलोचना की समस्त कृतियाँ अनुसंधान हो सकती हैं ।

इतिहास और आलोचना :

साहित्येतिहास और आलोचना भी एक नहीं है । इतिहास का प्रमुख धेय कालक्रम में लेखक और कृति की व्यवस्था और उसका स्थूल परिचय है । तो आलोचना ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ध्यान रखती हुई लेखक के महत्त्व का प्रकाशन, कृति की मूल्यांकन संबधी विवेचना, कृति की व्याख्या और उसकी विशेषताओं का स्पष्टिकरण करती है । ऐतिहासिक आलोचना इतिहास की पृष्ठभूमि ग्रहण करती है । पर वह इतिहास नहीं है। इतिहास तथ्यों के अनुसंधान के अनुसार अपनी व्यवस्था और मान्यताओं में परिवर्तन और संशोधन करता है।

काव्यशास्त्र और आलोचना :

काव्यशास्त्र या काव्यसिद्धांत समस्त काव्य में व्याप्त उसके स्वाभाव, सौंदर्य प्रक्रिया, प्रभाव आदि से संबधित नियमों और सिद्धांतों का विश्लेषण और विवेचन करता है । तो आलोचना उन सिद्धांतों और नियमों को मानदंड या कसौटी के रूप में स्वीकार करती है । आलोचना निराकार नियमों और सिद्धांतो की खोज नहीं करती, बल्कि कवि की कृति की व्याख्या का मूल्यांकन करती है ।

आलोचना की परिभाषाएँ :

विद्वानों ने आलोचना की परिभाषाएँ निम्नानुसार की हैं–

रिचर्ड्स : "To set up as a critic is to set up as a judge of values." अर्थात् आलोचक की नियुक्ति करना निर्णायक की नियुक्ति करना है।

कार्लाइल : "Literary criticism is nothing and should be nothing but the recital of one's personal adventures with a book." अर्थात् आलोचना पुस्तक के प्रति उद्भृत आलोचक की मानसिक प्रतिक्रिया का परिणाम है।

डॉ. शामसुंदर दास : ''साहित्य क्षेत्र में ग्रंथ को पढ़कर उसके गुणों और दोषों का विवेचन करना और उसके संबंध में अपना मत प्रकट करना आलोचना कहलाता है।''

डॉ. गुलाबराय : ''आलोचना का मूल उद्देश्य कवि की कृति का सभी दृष्टिकोणों से आस्वाद कर पाठकों

को उस प्रकार के आस्वाद में सहायता देना तथा उनकी रूचि को परिमार्जित करना एवं साहित्य की गति निर्धारित करने में योग देना है।''

उपरोक्त परिभाषाओं का ध्यान से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि विद्वानों ने आलोचना संबंधी अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप ही उसके स्वरूप की व्याख्या की है।

4.3.2 आलोचना के गुण :

आलोचक समाज का प्रतिनिधि बन कृति को देखता है, समाज को उसके मूल्यतम तथ्यों से परिचित कराता है और लोकहित की दृष्टि से उसका मूल्यांकन कर लेखक को भी दिशा-निर्देश करता है। आलोचक, लेखक और पाठक के बीच में दुभाषिए-जैसा-सा काम करता है तथा समाज और कलाकारों को पारस्परिक संपर्क में लाकर नए विचारों और भावों के आदन-प्रदान में सहयोग प्रदान करता है। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि आलोचक को आलोचना कर्म में निरत होते समय विषय-बोध, व्याख्या-विश्लेषण तथा मूल्यांकन या निर्णय प्रतिपादन के साथ-साथ तटस्थ एवं निष्पक्ष रहना भी नितांत अपेक्षित है। अत: विद्वानों ने आलोचक के कुछ आवश्यक गुणों का निर्धारण किया है जो निम्नानुसार हैं-

1) सहृदयता :

सहृदयता आलोचक का आवश्यक गुण है क्योंकि भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार कोई भी व्यक्ति बिना सहृदय हुए काव्य का रसास्वादन नहीं कर सकता । सहृदय होने से ही वह कृति का सही विवेचन कर सकता है । मुक्त हृदय से काव्य कृति में तन्मय होकर, गुणों पर रीझता हुआ जो आलोचक अपनी आलोचना प्रस्तुत कर सके, वह सहृदय आलोचक है । आलोचक के मन में रचनाकार तथा रचना के प्रति श्रद्धा, सहानुभूति एवं आदर की भावना होनी चाहिए ।

2) विस्तृत ज्ञान :

यदि आलोचक को आलोच्य विषय तथा लोक और शास्त्र का व्यापक एवं सूक्ष्म ज्ञान होगा,तो वह वर्ण्य विषय की बारीकियों को समझ ही न पाएगा; उनमें गुणदोष निकालना तो दूर की बात है । आलोचक का इतिहास, दर्शन, काव्यशास्त्र, समाजशास्त्र आदि का विस्तृत ज्ञान ही उसे आलोचना की विविध भूमियाँ प्रदान कर सकता है और कृति की विशेषताओं का विवेचन करने में सहायक हो सकता है । अत: विषय का सांगोपांग विवेचन करने के लिए आलोचक का ज्ञान विस्तृत होना आवश्यक है ।

3) प्रतिभा :

काव्य का मूल कारण प्रतिभा है और यह प्रतिभा व्युत्पत्ति और अभ्यास के सहारे प्राप्त की जा सकती है । हमारे यहाँ प्रतिभा को काव्योत्पादन और काव्यालोचन दोनों में बहुत महत्त्व दिया गया है । प्रतिभा के दो भेद मने गए हैं कारयत्री और भावयत्री। कारयत्री प्रतिभा का संबंध कवि से होता है और भावयत्री प्रतिभा का संबंध भावक से ।

4) अंतरदृष्टि :

आलोचक में अंतदृष्टि का होना बहुत जरुरी होता है । अंतरदृष्टि की विशेषता बहुत कुछ जन्मजात कही जा सकती है किंतु शिक्षा और अभ्यास आदि से आलोचक की यह विशेषता विकसित हो सकती है । आलोचक अपनी इसी विशेषता के कारण सच्ची आलोचना में समर्थ हो सकता है, क्योंकि आलोचक का कर्तव्य है कि कवि के द्वारा की गई जीवनाभिव्यक्ति पाठकों तक पहुँचा दे ।

5) निष्पक्षता :

आलोचक का निष्पक्ष होना बड़ा जरुरी होता है । यदि आलोचक में यह गुण वर्तमान न हो तो आलोचना दूषित हो सकती है । क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जीवन में किसी न किसी प्रकार के राजनीतिक,धार्मिक या सामाजिक पक्षपातों से प्रेरित रहता है । आलोचना करते समय यदि वह तनिक भी इन प्रेरणाओं से प्रभावित हो गया तो उसका निर्णय दूषित हो जाएगा । दूषित निर्णय साहित्यिक पाप होने के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टि से भी हेय समझा जाएगा अतएव आलोचक को निष्पक्ष होना चाहिए ।

6) वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का होना :

वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक ज्ञान आज की आलोचना के आवश्यक उपादान है । वैज्ञानिकता का अर्थ है वस्तुओं का निष्पक्ष भाव से विश्लेषण । इस प्रकार का विश्लेषण तभी संभव हो सकता है जब आलोचक में सच्चाई और निष्पक्षता हो । यह दोनों गुण आलोचक में तभी आ सकते हैं जब वह स्वाभाव से वैज्ञानिक हो । वैज्ञानिकता के साथ-साथ मनोविज्ञान का ज्ञान भी आलोचक के लिए नितांत आवश्यक है ।

आलोचक पाठकों को इस प्रकार का आनंद और प्रेरणा तभी प्रदान कर सकता है जब उसे मानव-मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञान हो, क्योंकि साहित्य मानव जीवन की अभिव्यक्ति है ।

7) दार्शनिक वृत्ति का होना :

आलोचक में दार्शनिक वृत्ति का होना भी आवश्यक माना है, क्योंकि वैज्ञानिक वृत्ति केवल वर्गीकरण आदि की ओर प्रेरित करती है, किंतु दार्शनिक वृत्ति के सहारे आलोचक सत्य और असत्य के बीच विभेद भी स्थापित करने में समर्थ होता है ।

8) शिक्षा :

मम्मट ने काव्योत्पत्ति हेतुओं का परिगणन करते हुए लिखा है कि कवि को लोकशास्त्र ज्ञान तथा काव्यशिक्षा अभ्यास भी होना चाहिए । अतएव आलोचक को भी उसी के समान शिक्षित होना चाहिए । जेम्स स्टाक के मतानुसार आलोचक को उसी भूमिका तक पहुँचना चाहिए जिस भूमिका पर कवि रहता है । यह तभी संभव हो सकता है जब कि आलोचक भी कवि के सामान शिक्षित हो ।

आलोचक को आलोचना करते समय नवीनतम ज्ञान की खोज कर पाठकों तक पहुँचा देना चाहिए । इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भी आलोचक का सर्वशास्त्र पारंगत होना नितांत आवश्यक होता है । इसके लिए उसे शिक्षा और गूढ़ अध्ययन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

9) व्यक्तित्त्व :

आलोचक को साहित्य-सृष्टा कहा जा सकता है । साहित्य पर व्यक्तित्व का मौलिक प्रभाव पड सकता है । हडसन ने कहा है विशिष्ट व्यक्तित्व से हमारा अभिप्राय कुछ विशेष बातों से है व्यक्तित्व भी प्राय: दो प्रकार के होते हैं । एक वे जो दूसरों से स्वयं प्रभावित होते हैं, दूसरे वे जो दूसरों को स्वयं प्रभावित करते हैं। आलोचक का व्यक्तित्व वास्तव में इन दोनों के मध्य कोटि का होना चाहिए । उसका दृष्टिकोण विस्तृत हो, स्वभाव गंभीर हो,विचार उदार हो, साथ-साथ सहानुभूति भी हो।

10) सहानुभूति :

सहानुभूति आलोचक का आवश्यक कर्तव्य है । लौंगफ़ेलो ने इस बात का समर्थन किया है । किसी ने ठीक ही कहा है-

''गुणदोषो बुधौ ग्रहणन इन्दुवद महेश्वर:,
शिरसा श्लाघते पूर्व परकण्ठे नियच्छति''

अर्थात् शिवाजी की भांति बुधजन गुण और अवगुण दोनों ग्रहण करते हैं किंतु चंद्रमा की भांति गुणों को सीर पर रख कर प्रकाशित करते हैं और दोषों को विष की भांति गले के भीतर ही रखते हैं । इस लक्ष्य तक आलोचक तभी पहुँचा सकता है जब उसमें सहानुभूति का विशेष गुण हो।

11) प्रेषणीयता :

आलोचक में अपनी अनुभूति को दूसरों तक प्रेषित करने की क्षमता होनी चाहिए । उसका कार्य केवल यह नहीं है कि वह स्वयं किसी कलाकृति का आनंद ले; अपितु उस आनंद को पाठकों तक प्रेषित करे । कैलेट ने कहा है परिष्कृत रूचि और मनोविज्ञान के साथ-साथ आलोचक में भावप्रेषण की क्षमता भी होनी चाहिए।

12) युग विधान करने की शक्ति :

साहित्यकार युग का सृष्टा ही नहीं होता, नवयुग का प्रवर्तक भी होता है । नवयुग प्रवर्तन का यह कार्य केवल कवि का ही नहीं होता । इसका उत्तरदायित्व आलोचक और पाठक पर भी होता है । आलोचक भविष्य निर्माण करने की क्षमता रखता है अतएव उसमें युगविधान करने की शक्ति होनी चाहिए।

13) औचित्य ज्ञान :

आलोचक को किसी रचना के गुण दोषों के विवेचन में औचित्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । आ. क्षेमेंद्र ने काव्य के औचित्य को बहुत ही महत्त्व दिया है वास्तव में उसका महत्त्व आलोचना में भी कम नहीं है । औचत्य-ज्ञान उसी समालोचक में हो सकता है,जो सत्यप्रिय और इमानदार है, जिसमें धीरता और स्थिरता आदि स्वाभाविक गुण हैं

14) छिद्रान्वेषी प्रकृति का निरीक्षण :

यद्यपि काव्य की समालोचना के लिए जब समालोचक प्रवृत्त होता है, उस समय सम्यक विवेचन के लिए

गुणों के साथ-साथ दोषों को भी प्रदर्शित करता है; पर इसमें सुधार भावना होनी चाहिए, न कि छिद्रान्वेषी प्रवृत्ति। टी. रायमर ने कहा है, ''किसी श्रेष्ठ कलाकार के दोषों का प्रदर्शन और गुणों पर परदा अच्छे आलोचक का गुण नहीं ।''

15) निर्णयात्मक शक्ति :

आलोचक का कर्म निर्णय प्रधान होता है । अत: उसका यह सर्वोपरी गुण है कि वह स्पष्ट और सही निर्णय ले सके । सही विषय-बोध, अपने व्यक्तित्व की सशक्तता एवं अभिव्यक्तित्व की स्पष्टता से ही समालोचक सही निर्णय ले सकता है।

सारांश :

इससे स्पष्ट होता है कि एक सफल समालोचक होने के लिए उपरोक्त सभी गुणों का होना आवश्यक है। साथ ही आलोचक में कुछ तो स्वभावगत शक्तियाँ और विशेषताएँ होनी चाहिए और कुछ अभ्यासमूलक और प्रयत्नज विशेषताएँ होनी चाहिए।

4.3.3 आलोचना के प्रकार :

आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया जाता है। सैद्धांतिक आलोचना और व्यावहारिक आलोचना । सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत काव्यशास्त्रीय मूल्यों का निर्धारण तथा साहित्य की विभिन्न विधाओं का निरूपण समाहित है; अत: इसे काव्यशास्त्रीय समीक्षा भी कह सकते हैं । व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत शास्त्रीय आलोचना इसी सैधांतिक आलोचना पर निर्भर होती है । किंतु वर्तमान समय में आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तियाँ विकसित हो चुकी हैं । इनमें से पाठ्यक्रम में निर्धारित केवल व्याख्यात्मक, तुलनात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक आलोचना पद्धतियों का ही समावेश किया गया है, जो निम्नानुसार है-

4.3.3.1 व्याख्यात्मक आलोचना :

व्याख्या आज की समालोचना का मुख्य गुण है । आज का समालोचक आलोच्य वस्तुओं को समझने के लिए उसकी व्याख्या करने के लिए जितना उत्सुक रहता है, उतना उसके गुण-दोषों के कथन के लिए नहीं यह आलोचना पद्धति सभी आलोचनाओं का मूल भी है । इस संदर्भ में डॉ. श्यामसुंदरदास ने लिखा है - ''व्याख्या के बल पर हम किसी कृति के महत्त्व का निर्णय कर सकते हैं । भावमयी समालोचना करने के लिए भी प्रस्तुत रचना का स्वरूप ज्ञान वांछनीय है जो कि व्याख्या से ही प्राप्त होता है।''

मैथ्यू अर्नाल्ड ने व्याख्यात्मक आलोचना का स्पष्टीकरण देते हुए कहा है कि किसी भी रचना की आलोचना करते समय आलोचक को साधारण बुद्धि वाले मनुष्य को दृष्टिकोन में रखना चाहिए । यदि साधारण मनुष्य आलोचना के भाव को समझ जाता है तो समझना चाहिए कि आलोचक अपने कर्तव्य के निर्वाह में सफल हुआ है ।

व्याख्यात्मक आलोचना के संबध में मोल्टन ने भी विस्तार से विचार प्रकट करते हुए इसके तीन भेद माने हैं -

i) व्याख्यात्मक आलोचना आलोच्य वस्तुओं में किसी प्रकार का उत्तम–मध्यम भेद स्वीकार नहीं करती।

ii) व्याख्यात्मक आलोचना निर्णयात्मक आलोचना के सामान निश्चित नियमों के पालन में विश्वास करती है और निश्चित कसौटी पर कसी जाती है।

iii) व्याख्यात्मक आलोचना नियमों को परिवर्तनशील मानती है।

हिंदी में व्याख्यात्मक आलोचना के सबसे बड़े प्रचारक आचार्य रामचंद्र शुक्ल हैं, परंतु उनकी आलोचना में व्याख्या के साथ मूल्य का प्रश्न लगा हुआ है । लोक–संग्रह के आधार पर ही उन्होंने तुलसी, सूर और जायसी को श्रेणीबद्ध किया है व्याख्यात्मक आलोचना के अंतर्गत आलोचक सहृदयता पूर्वक कवि की अंतरात्मा में प्रवेश करता है; उसके भावों को समझने के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करके उन्हें हृदयंगम करने में विशेष सहायक होता है । इस प्रक्रिया में वह व्याख्याता ही नहीं स्रष्टा भी बन जाता है । यथा– ''प्रबंधकार कवि की भावुकता का सबसे अधिक पता यह देखने से चलता है कि वह किसी आख्यान के अधिक मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचान सका है या नहीं । रामकथा के भीतर के स्थल अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं – राम का अयोध्या त्याग और पथिक के रूप में वन गमन, चित्रकूट में राम और भरत का मिलन, शबरी का आतिथ्य, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर राम का विलाप, भरत की प्रतीक्षा । इन स्थलों को गोस्वामी जी ने अच्छी तरह पहचाना है । इसका उन्होंने अधिक विस्तृत और विशद वर्णन किया है ।''– (आचार्य रामचंद्र शुक्ल, तुलसीदास पृष्ठ 79)

इसी क्रम में शुक्ल जी उपर्युक्त दृश्यों की क्रमशः सहृदयतापूर्ण व्याख्या करते हैं, जिससे कि तुलसीदास जी का काव्य–कौशल्य पाठकों के समक्ष अपने आप प्रकट हो जाता है । हिंदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल, श्यामसुंदरदास, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि इसी आलोचना प्रकार में विश्वास करते हैं ।

4.3.3.2 तुलनात्मक आलोचना :

इस प्रकार की आलोचना को अंग्रेजी में 'Comparative Criticism' कहा जाता है । इसका प्रादुर्भाव जोसेफ एडिसन की आलोचना से हुआ । तुलनात्मक मूल्य निर्धारण ही इस आलोचना का लक्ष्य होता है । साहित्य के सामाजिक तथा ऐतिहासिक महत्त्व की प्रतिष्ठा की दृष्टि से भी इसका महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इस प्रकार की आलोचना के अंतर्गत एक ही विषय के दो कवियों की व्यापक रूप से तुलना कर दोनों की विशेषताओं का उद्घाटन किया जाता है अथवा कभी–कभी एक कवि की विभिन्न कृतियों की तुलना की जाती है । एक ही विषय के छंदों का तुलनात्मक अध्ययन पं. पद्मसिंह शर्मा की बिहारी सतसई तथा कवियों की तुलना कृष्ण बिहारी मिश्र की देव और बिहारी कृति में मिलती है।

इस आलोचना पद्धति में आलोचक अपने विषय के प्रतिपादनार्थ दोनों की रचनाओं का अध्ययन कर उसके विविध अंगों पर प्रकाश डालता है । इस कोटि की आलोचना में मूल्य निर्धारण की भावना विद्यमान रहती है। साधारणत: तुलनात्मक दृष्टि आलोचना में तभी श्रेयस्कर सिद्ध होती है, जब कि वह पूर्ण वैज्ञानिक हो और आलोचक अनासक्त भाव से दोनों पक्षों की सामान सहानुभूति से समीक्षा करें।

यह पद्धति उन स्थलों पर उपयोगी होती है, जहाँ हमें तुलनात्मक दृष्टि से किसी को छोटा या या बड़ा

सिद्ध नहीं करना होता, वरन एक ही प्रकार की विषेशताओं, नियमों और सिद्धांतो के प्रभाव को स्पष्ट करना होता है । इस तथ्य का ध्यान न रखने पर प्रय: इस अलोचना का परिणाम कटू विवाद होता है । हिंदी में बिहारी और देव की आलोचना और उस संबंध में उत्पन्न विवादास्पद स्थिति इसका ज्वलंत उदाहरण है । शांतिप्रिय द्विवेदी और शशीरानी गुर्टू के कुछ लेख इस आलोचना के भीतर आते हैं । पंडित पद्मसिंह शर्मा की आलोचना भी इसी प्रकार की है ।

इसके अतिरिक्त बाबू गुलाबराय की निम्नलिखित पंक्तियाँ तुलनात्मक समीक्षा का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करती है–

''सूर और तुलसी के उपासना भेद से उनकी भक्ति–भावना में भी अंतर था । सूर ने अपने भगवान के माधुर्य पक्ष को अपनाया था तो तुलसी ने अपने इष्टदेव के ऐश्वर्य पक्ष को । सूर ने नियम और मर्यादा की अपेक्षा प्रेम को प्रधानता दी, तुलसी ने नीति और मर्यादा को सूर ने भगवान के लोकरंजक रूप पर अधिक बल दिया तो तुलसी ने उसके लोकरक्षक रूप को । दोनों ने भगवान की शरणागत वत्सलता पर विश्वास किया, दोनों ने भी भगवत् कृपा का आश्रय लिया है । दोनों में समानताएँ आवश्य हैं किंतु दोनों के दृष्टिकोण में भेद है ।'' (अध्याय और आस्वाद पृष्ठ 207)

4.3.3.3 मनोवैज्ञानिक आलोचना :

इस आलोचना पद्धति के अंतर्गत आलोचक का उद्देश्य रचनाकार के मन: स्तरों का अध्ययन करना होता है । इसमें आलोचक द्वारा लेखक के व्यक्तित्व तथा परिवेश का सम्यक अध्ययन किया जाता है और उसकी रचना की विशेषताओं का उद्घाटन करने के लिए समकालीन वातावरण का पृष्ठभूमि के रूप में उपयोग किया जाता है । इस विषय में यह ध्यातव्य है कि मनोविज्ञान मानव की मानसिक प्रक्रियाओं का विश्लेषण करनेवाला शास्त्र है और इसके अनुसार साहित्य अथवा कला मानसिक – ग्रंथियों की अभिव्यक्ति है । फ्रायड, एडलर–युंग तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति, हींन ग्रंथियों से विमुक्ति तथा प्रबल जिजीविषा ही मानव की मूल प्रवृत्तियाँ हैं । इन्होंने इन्हीं को साहित्य की मूल प्रेरणा स्वीकार किया है । यह आलोचना प्रणाली पूर्ण रूप से कुंठाओं या दमित वासनाओं पर आधारित होने के कारण एकांगी है।

इस आलोचना पद्धति का मुख्य दोष यह है कि, यह आलोचक की व्यक्तिगत रूचि को प्रश्रय देती है और दूसरी ओर स्रष्ठा के जीवन की व्यक्तिगत घटनाओं का उद्घाटन करके समाज में संभ्रम उत्पन्न करती है । हिंदी में इलाचंद्र जोशी तथा अज्ञेय प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आलोचक हैं । कुछ स्थलों पर डॉ. नगेंद्र ने भी इस प्रवृत्ति को अपनाया है । यथा– ''हिंदी का छायावाद अनेक प्रकार की सामाजिक कुंठाओं की सृष्टि है, जिसमें मुख्यतम है कुंठित श्रृंगार भावना।''

यह आलोचना बहुत कुछ व्याख्यात्मक ही होती है । इसका मूल ध्येय यही रहता है कि आलोच्य कृति के मूल भावों तथा प्रेरणाओं का विश्लेषण, कृतिकार के मन का अध्ययन करते हुए करना । इसमें बाह्य परिस्थितियों से भी अधिक आतंरिक भावप्रतिक्रिया का विशेष रूप से अध्ययन किया जाता है । कवि या लेखक

की मन:स्थिति, सामाजिक परिस्थिति, उसका स्वाभाव आदि बातों का परिपूर्ण विचार करके निष्कर्ष निकला जाता है । आजकल हिंदी में भी मनोवैज्ञानिक आलोचना की जाने लगी है । इसमें प्रमुखता से कृतिकार की रूचि अंतप्रवृत्ति तथा परिस्थिति आदि बातों का विश्लेषण रहता है । बच्चन पर की गई इसी प्रकार की आलोचना का उदाहरण दृष्टव्य है – ''बच्चन का कवि, जीवन के उल्लास से भी उल्लासित हुआ है और विषाद से विषण्ण। उनकी रचनाओं में जीवन के परिस्थितिमूलक चित्र अनेक भरे पड़े हैं । अपनी प्रिय पत्नी के देहांत के बाद कवि की वृतियाँ जीवन और जगत की नश्वरता पर प्रहार करने लगी और एकांत संगीत तथा निशा–निमंत्रण के रूप में उनकी सारी वेदना मुखर हुई।''

4.3.3.4 ऐतिहासिक आलोचना :

इस आलोचना प्रकार में कवि का मूल स्रोत ऐतिहासिक और सामाजिक परिस्थितियों में खो जाता है। जब किसी कृति की आलोचना कृतिकार की युगीन परिस्थितियों के पारिप्रेक्ष्य में की जाती है, तब उसे 'ऐतिहासिक आलोचना' की संज्ञा दी जाती है । इसका तात्पर्य यह है कि साहित्य की प्रवृत्ति विशेष में लेखक के योगदान का ऐतिहासिक विकास क्रम के अनुसार विश्लेषण किया जाता है । इसमें इस तथ्य की खोज की जाती है कि युग और साहित्य परस्पर किस रूप में सम्बद्ध हैं और एक दूसरे को किस रूप में प्रभावित करते हैं । इस प्रकार ऐतिहासिक आलोचना में युगचेतना की पृष्ठभूमि को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया जाता है ।

ऐतिहासिक आलोचना का सूत्रपात फ्रांसीसी टेन (Hippolyte Taine) से हुआ । उसने यह बतलाया कि कवि या लेखक अपनी जाति (Race), परिस्थिति (Milieu) तथा काल (Moment) की उपज होता है । हिंदी आलोचना के इस वर्ग में मुख्यत: आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. भगीरथप्रसाद मिश्र प्रभृति आते हैं । आ. द्विवेदी ने अपने 'हिंदी साहित्य की भूमिका', 'हिंदी साहित्य का आदिकाल', 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास', आदि ग्रंथों द्वारा हिंदी साहित्य के विकास पर नूतन आलोक प्रसारित करते हुए अनेक नूतन स्थापनाएँ स्थापित की । विशेषत: संत साहित्य एवं वैष्णव भक्ति आंदोलन के संबंध में उन्होंने अनेक नए तथ्यों का उद्घाटन किया । डॉ. रामकुमार वर्मा ने हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास में आदिकाल एवं भक्तिकाल का विवेचन अत्यंत विस्तार से किया है तथा अनेक कवियों का मूल्यांकन साहित्यिक शैली में प्रस्तुत किया है । डॉ. भगीरथप्रसाद मिश्र ने 'हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास' एवं 'हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास' के द्वारा हिंदी के विकास को स्पष्ट किया है।

प्रस्तुत उदाहरण ऐतिहासिक आलोचना का ज्वलंत उदाहरण है – ''हिंदू और मुसलमान यद्यपि अलग–अलग बने रहें,परंतु उनमें भावों और विचारों की एकता अवश्य स्थापित हुई। ... कबीर ने मेल की बड़ी प्रेरणा दी थी । उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों को यह समझाने का प्रयत्न किया कि हमको उत्पन्न करनेवाला परमात्मा एक ही है, केवल नाम भेद से अज्ञानवश हम उसे भिन्न–भिन्न समझा करते हैं । धार्मिक विवाद व्यर्थ हैं, सब मार्ग एक ही स्थान को जाते हैं।'' (श्यामसुंदरदास – हिंदी भाषा और साहित्य, पृष्ठ– 165)

आधुनिक आलोचक किसी कवि की आलोचना करते समय उन तमाम परिस्थितियों का ऐतिहासिक विवरण देते हैं जिनमें पड़कर कवि ने अपनी कृति लिखी होगी । साथ ही साथ परंपरा निर्देश की ओर भी सच्चे

आलोचक का ध्यान रहता है क्रोचे ने भी अपने दार्शनिक सिद्धांत के विवेचन में इतिहास को बहुत अधिक महत्त्व दिया है।

इस प्रकार हिंदी आलोचना का विकास विभिन्न क्षत्रों में नये-नये रूप से हो रहा है।

4.4 स्वयं अध्ययन के लिए प्रश्न :

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए गए पर्यायों में से उचित पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) ..... की समस्त कृतियाँ आलोचना नहीं हो सकती।
(अ) अनुसंधान (ब) इतिहास (क) काव्य (ड) कथा

2) ..... के अनुसार आलोचक की नियुक्ति करना निर्णायक की नियुक्ति करना है।
(अ) कार्लाइल (ब) रिचर्ड्स (क) मोल्टन (ड) ड्राइडन

3) सहृदय होने से ही आलोचक कृति का सही ..... कर सकता है।
(अ) पठन (ब) निर्धारण (क) निरिक्षण (ड) विवेचन

4) काव्योत्पत्ति हेतुओं का परिगणन ..... ने किया है।
(अ) अभिनव गुप्त (ब) मम्मट (क) रुद्रट (ड) वामन

5) ..... के मतानुसार व्याख्यात्मक आलोचना नियमों को परिवर्तनशील मानती है।
(अ) हडसन (ब) मोल्टन (क) एडिसन (ड) फेलेट

6) तुलनात्मक आलोचना का प्रादुर्भाव ..... की आलोचना से हुआ।
(अ) काडवेल (ब) वर्डस्वथ (क) क्रोचे (ड) एडिसन

7) हिंदी में 'बिहारी सतसई' नामक कृति की आलोचना ..... ने की है।
(अ) पं. पद्मसिंह शर्मा (ब) रामकुमार वर्मा (क) रामचंद्र शुक्ल (ड) नामवर सिंह

8) 'बिहारी और देव' की आलोचना ..... आलोचना की कोटि में आती है।
(अ) व्याख्यात्मक (ब) मनोवैज्ञानिक (क) तुलनात्मक (ड) ऐतिहासिक

9) आलोचक की व्यक्तिगत रूचि को ..... आलोचना प्रश्रय देती है।
(अ) व्याख्यात्मक (ब) मनोवैज्ञानिक (क) तुलनात्मक (ड) ऐतिहासिक

10) ..... आलोचना में युगचेतना की पृष्ठभूमि को सर्वोपरि महत्व प्रदान किया जाता है।
(अ) व्याख्यात्मक (ब) मनोवैज्ञानिक (क) तुलनात्मक (ड) ऐतिहासिक

4.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ :

1. धातु – क्रिया का मूल रूप
2. उद्भूत – उत्पन्न
3. परिमार्जित – सुधरा या सुधरा हुआ, प्रशस्त
4. उपादान – प्राप्ति, मिलना
5. बुधजन – विद्वत जन
6. जिजीविषा – जीने की इच्छा
7. प्रभृति – इत्यादि, वगैरह
8. प्रतिभा – बुद्धि, समझ
9. छिद्रान्वेषी – दोष ढूंढनेवाला
10. उपसर्ग – वह उपशब्द जो किसी शब्द के पहले लगकर उसमें किसी अर्थ की विशेषता लाता है।

4.6 स्वयं–अध्ययन प्रश्नों के उत्तर :

1. (अ) अनुसंधान	2. (ब) रिचर्ड्स	3. (ड) विवेचन
4. (ब) मम्मट	5. (ब) मोल्टन	6. (ड) एडिसन
7. (अ) पं.पद्मसिंह शर्मा	8. (क) तुलनात्मक	9. (ब) मनोवैज्ञानिक
10. (ड) ऐतिहासिक		

4.7 सारांश :

- आलोचना के लिए हिंदी में अनेक शब्द प्रचलित हैं – विवेचना, समीक्षा, समालोचना आदि स्थूल दृष्टि से इन तीनों शब्दों को समानार्थक कहा जा सकता है किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने से तीनों कुछ अपना अलग–अलग अर्थ व्यंजित करते प्रतीत होते हैं।
- साहित्य के क्षेत्र में आलोचना से अभिप्राय है, किसी साहित्यिक कृति का सांगोपांग निरिक्षण । आलोचना के अंतर्गत किसी कृति का प्रभाव, आस्वाद, उसकी व्याख्या और उसका शास्त्रीय तथा नैतिक मूल्यांकन आदि सभी बाते आ जाती हैं।
- कुछ लोग रचनात्मक साहित्य के अतिरिक्त साहित्य से संबधित अन्य समस्त बातों को आलोचना का हिस्सा समझते हैं। वे अनुसंधान, काव्य का इतिहास और काव्यशास्त्र एवं कव्यसिद्धांतों को भी आलोचना के अंतर्गत सम्मिलित करते हैं। परंतु आलोचना का स्वरूप इनसे भिन्न है।
- आलोचना की परिभाषाओं का ध्यान से अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि विद्वानों ने आलोचना संबंधी अपने दृष्टिकोणों के अनुरूप ही उसके स्वरूप की व्याख्या की है।
- एक सफल समालोचक होने के लिए आलोचक के व्यक्तित्व में – सहृदयता, विस्तृत ज्ञान, प्रतिभा, अंतरदृष्टि, निष्पक्षता, वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, दार्शनिक वृत्ति, शिक्षा, व्यक्तित्व, सहानुभूति,

प्रेषणीयता, युग-विधान की शक्ति, औचत्य ज्ञान, छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति, निर्णयात्मक शक्ति आदि सभी गुणों का होना अनिवार्य है । साथ ही आलोचक में कुछ तो स्वभावगत शक्तियाँ और विशेषताएँ होनी चाहिए और कुछ अभ्यासमूलक और प्रयत्नज विशेषताएँ होनी चाहिए।

- व्याख्यात्मक आलोचना निर्णयात्मक आलोचना के सामान निश्चित नियमों के पालन में विश्वास करती है और निश्चित कसौटी पर कसी जाती है । तुलनात्मक मूल्य निर्धारण ही तुलनात्मक आलोचना का लक्ष्य होता है । मनोवैज्ञानिक आलोचना का मूल ध्येय यही रहता है कि आलोच्य कृति के मूल भावों तथा प्रेरणाओं का विश्लेषण, कृतिकार के मन का अध्ययन करते हुए करना । जब किसी कृति की आलोचना कृतिकार की युगीन परिस्थितियों के पारिप्रेक्ष्य में की जाती है, तब उसे ऐतिहासिक आलोचना की संज्ञा दी जाती है।

4.8 स्वाध्याय :

निम्नलिखित विषयों पर टिप्पणियाँ लिखिए।

1. आलोचना का स्वरूप
2. व्याख्यात्मक आलोचना
3. तुलनात्मक आलोचना
4. मनोवैज्ञानिक आलोचना
5. ऐतिहासिक आलोचना
6. आलोचक के गुण

4.9 क्षेत्रीय कार्य :

- विभिन्न समिक्षकों की समीक्षाओं का अध्ययन कीजिए और देखिए कि उन्होंने किन किन समीक्षा पद्धतियों का उपयोग किया है?
- हिंदी के किसी ग्रंथ को पढ़कर उसकी समीक्षा करने का प्रयास कीजिए।

4.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए :

1) काव्यशास्त्र - डॉ. भागीरथ मिश्र
2) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत - डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
3) भारतीय काव्यशास्त्र के सिद्धांत - डॉ. कृष्णदेव झारी
4) काव्य के रूप - बाबू गुलाबराय
5) भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ. मानवेंद्र पाठक
6) भारतीय साहित्यशास्त्र - डॉ. बलदेव उपाध्याय
7) साहित्यशास्त्र - डॉ. चंद्रभान सोनवणे
8) भारतीय काव्यशास्त्र - डॉ. योगेंद्र प्रताप सिंह
9) हिंदी आलोचना के बीज शब्द - डॉ. बच्चन सिंह
10) भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र - डॉ. त्रिलोकनाथ श्रीवास्तव, डॉ. गंगासहाय प्रेमी

❑❑❑